॥ अथ आदिपुराणं भाषाटीकोपेतं प्रारभ्यते ॥

भाषाटीकासहित आदिपुराणकी विषयानुक्रमणिका।

भाषाटीकासहित आदिपुराणकी विषयानुक्रमणिका समाप्त ।

[illegible]गणेशाय नमः ॥ नारायण, नरोत्तम, नर और देवी सरस्वतीको प्रणाम कर जयका उच्चारण करना चाहिये ॥ १॥ जो [illegible] रजोगुणका और प्रलयके समयमें तमोगुणका आश्रय करते हैं, सूर्य और चन्द्रमा यह दोनों नेत्र जिनके दिनरात खुले रहकर सम्पूर्ण लोकोंके पाप और पुण्योंको देखते रहते हैं, चिन्मात्ररूप परात्मरूप ॥ १ ॥ शास्त्रोंमें जिसके चिदंशको ब्रह्मरूपी कहा है, जो मायेश्वर अपने अंशसे पुरुषरूप धारण करता है, जो प्राणोंसे अधिक

श्रीगणेशाय नमः ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥ रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमस्पृशे ॥ रवीन्दुनेत्राय च लोकसाक्षिणे चिन्मात्ररूपाय परात्मरूपिणे ॥ १ ॥ ब्रह्मेति यस्य निगमैर्विवृतश्चिदंशो मायेश्वरः पुरुषरूपधरो यदंशः ॥ प्राणोदको बलधियां परमो विशुद्धः आनन्दसत्यवपुषे प्रणमामि तस्मै ॥ २ ॥ जीवो रहस्येव विधाय पापं न निष्कृतिं प्रैति हि विश्वमूर्त्तेः ॥ सदात्मरूपोऽन्तरतो हि शश्वत् पापं च पश्यत्यथ पुण्यकृत्यम् ॥३॥ पापात्मभिस्तन्निभृते कृतेऽपि पापेऽनुतापानलतस्त एव ॥ दग्धा भवेयुः सततं नु येन नमामि तं सत्पुरुषं परेशम् ॥ ४ ॥

बुद्धियोंमें बलका प्रेरक है, परम विशुद्ध है उस आनन्द सत्यशरीरवालेको प्रणाम करता हूँ ॥ २॥ यदि मनुष्य छिपकर भी पाप कर ले तो विश्वमूर्त्तिसे उसका उद्धार किसी प्रकारसे नहीं हो सकता. कारण कि, जो अन्तरमें अन्तरात्मारूपसे विराजमान होकर प्रतिदिन सबके पाप और पुण्योंको देखता है ॥ ३॥ इसी कारण वह पापात्मा छिप[illegible] [illegible]ल अग्निमें सर्वदा जलता रहता है, छपा करनेवाले उसी परात्पर परम

---

१ जय [illegible] जीतनेके [illegible] [illegible]न्दका उच्चारण करना कहा है।

पुरुष नारायणको नमस्कार है॥४॥हे अज्ञानमें लिप्तहुए प्राणियो ! यह प्राण जाने न किस समय तुम्हारे शरीरसे बाहर हो जायँगे इसकी कुछ स्थिरता ही नहीं है ॥५॥ इसके ऊपर हमारे सूर्य प्रतिदिन उदयसे अस्ततक अनेक प्रकारके ताप दान करते हैं उनके परितापोंसे यह क्षीण आयु और भी क्षीण होती जाती है ॥६॥ इसकारण भगवान् नारायणके अमृतके समान परमपवित्र चरित्रोंका पान करो, जिससे यह आयु क्षणमात्रमें ही सार्थक

अविद्यान्धा अरे जीवाः प्राणवायुः कदा तु वः ॥ निर्गमिष्यति सहसा नास्ति तस्य विनिश्चयः ॥ ५ ॥ आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं च यन्नविः ॥ असदालापतापैश्च क्षीणं क्षीणं प्रतिक्षणम् ॥६॥ अतो भगवतो विष्णोः पुण्यश्लोकस्य पावनम् ॥ साफल्यमायुषः कुर्य्यात्पीत्वा तु चरितामृतम् ॥ ७ ॥ अज्ञानान्धजनानां यो मोहान्धतमसं मुनिः ॥ निराचिकीर्षुर्वासव्यां व्यासरूपेण गर्भतः ॥ ८ ॥ पवित्रे रत्नगर्भाया अवतीय युगे युगे ॥ वेदमंत्रपुराणादिपूर्णेन्दुं काशयत्युत ॥ ९ ॥ कवीश्वरं तं हि वन्दे प्रवरं वै तपस्विनाम् ॥ तत्त्वज्ञानवतां श्रेष्ठं कृष्णद्वैपायनं मुनिम् ॥ १० ॥ वेदवृक्षं प्रविभज्य स्वशिष्येभ्यः प्रदाय च ॥ इतिहासं तदन्तःस्थं समुद्धृत्य मनीषया ॥ ११ ॥

हो जाय इस विषयमें मन वचन कमसे यत्न और चेष्टा करो ॥ ७ ॥ जिन्होंने अज्ञानसे अन्ध हुए समस्त मनुष्योंको मोहके अन्धकारसे छुटानेकी इच्छासे युग युग में व्यासरूप धारण कर ॥८॥ रत्नगर्भा सत्यवतीके पवित्र गर्भमें अवतार लेकर पुराणादिमें विविधचरित्रोंसे शास्त्ररूप पूर्ण चन्द्रमाको प्रकाशित किया ॥ ९ ॥ उन्हीं कवियोंके गुरु तपस्वियोंमें श्रेष्ठ [illegible]

कर अपने शिष्योंको देते हुए और उसमें स्थित इतिहासको अपनी बुद्धिसे उद्धार कर ॥ ११॥ उन पुराणार्थ विशारदने पुराणसंहिता की और उसके अर्थ निर्णयके लिये ब्रह्मसूत्रकी रचना की, उसका भाष्यभूत पुराण भागवत है, ऐसा पण्डितजन कहते हैं ॥ १२॥ उनमें आदिपुराण सबका सारभूत है जिसको परमात्माके अंश सनातन व्यासजीने कहा है ॥ १३॥ इसके सब आख्यान वेदसम्मत हैं. मनुष्योंको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थोंकी प्राप्ति और दोनों लोकोंकी शान्ति प्राप्त होती है, अर्थात् वेदके साथ मिलाकर इस लोक और परलोकमें मंगल साधनेकी इच्छासे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष

पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः॥तदर्थानां निर्णयाय ब्रह्मसूत्रमकल्पयत्॥तद्भाष्यभूतं पुराणं भागवतं वै विदुर्बुधाः॥१२॥तत्सर्वं सारभूतं हि पुराणं त्वादिसंज्ञितम्॥विदधे परमेशांशः व्यासरूपी सनातनः॥१३॥आख्यानं चात्र विवृतं सर्वं हि वेदसम्मितम्॥ उभलौकिकशान्त्यर्थं नृणां धर्मादिवर्गयुक् ॥१४॥ यदधीत्य हि लोकानां ज्ञानविज्ञानमेव च ॥ वर्द्धते चोपजायेत सन्मार्गायण वृत्तिता ॥१५॥ आयासेन विनान्तेऽथ पुरुषार्थागमो भवेत् ॥ पठनेन भवेत्सद्यः कोऽप्यपूर्वो हि नन्दथुः ॥ १६॥ तीव्रेण भक्ति योगेन पुराणं प्रपठेन्नरः ॥ श्रद्धयामर्षरहितः व्यासादेशेन मुक्तिभाक् ॥ १७ ॥

इन चारों पदार्थोंके विषयमें विविध प्रकारके इतिहास और आख्यान वर्णित हैं ॥१४॥ जिनके पाठ करनेसे मनुष्योंके ज्ञान बढते हैं और सम्पूर्ण इंद्रियें उत्तम मार्गपर चलती हैं ॥१५॥ और अन्तमें परमपद पुरुषार्थ वा परमार्थको प्राप्त करता है, पाठ करनेके समय उत्तम विषय और विविध प्रकारके चरित्रोंसे हृदयमें शीघ्र ही अपूर्व प्रीति और अत्यन्त आनन्दका उदय होता है ॥१६॥ इस कारण पवित्र चित्त होकर श्रद्धासहित प्रतिदिन पुराणका पाठ

करना योग्य है, यही तीनों कालके जाननेवाले महार्षि व्यासदेवका आदेश और उपदेश है ॥१७॥ सम्पूर्ण धर्मोंके बीचमें अहिंसा और अभयदान जिस प्रकारसे श्रेष्ठ है, सम्पूर्ण प्यार पदार्थोंके बीचमें आत्मा जिस प्रकार प्रधान है ॥१८॥ समस्त सुख स्पर्श द्रव्योंके बीचम पुत्र जिस प्रकार श्रेष्ठ है, सम्पूर्ण इन्द्रियोंमें जैसे मन और समस्त गुणोंके बीचमें विनय जिस प्रकार उत्तम है ॥१९॥ समस्त सात्त्विक भावोंके बीचमें श्रद्धा जिस प्रकार प्रधान है, पृथ्वीके बीचमें समस्त पवित्र तीर्थ और तीर्थोंकी अपेक्षा नैमिषारण्य भी उसी प्रकार श्रेष्ठ है ॥२०॥ कारण कि, जब यह मन चक्रके समान प्रबल वेगसे

धर्माणां च यथाऽहिंसाऽभयदानं वरेण्यकम्॥समस्तप्रियवस्तूनां श्रेष्ठ आत्मा यथा स्वकः॥१८॥सुखस्पर्शेषु द्रव्येषु गरीयांश्च यथात्मजः ॥ इन्द्रियेषु मनो वर्य्यं गुणेषु विनयो यथा ॥ १९ ॥ सात्त्विकेषु च भावेषु यथा श्रद्धा गरीयसी ॥ भूरिपावन तीर्थेषु क्षेत्रेषु नैमिषं तथा ॥ २०॥ घूर्णन्मनोमयं चक्रं शीर्य्यतेऽस्मिन्नरण्यके॥अतः पूतं विष्णुवनं नैमिषं चेति विश्रुतम्॥२१॥ प्रशस्तं तपसः स्थानं शौनकाद्यैः समाश्रितम् ॥ कलिमागतमाज्ञाय यज्ञाय कृतमानसैः ॥ २२ ॥ शान्तेरुदयतो यद्वद्धृदयं राजते नृणाम् ॥ विनयस्योदयेनैव शोभन्ते सद्गुणा यथा ॥ २३ ॥

घूमता२इस अरण्यमें जाकर पहुँचा तो उसी समय उसकी यह वासनारूपी धार खुटली होगी, इसी कारणसे इस पवित्र विष्णुवनका नाम नैमिषारण्य हुआ है॥२१॥ फलतःयह तपस्या करनेके निमित्त परम पवित्र स्थान है;इसी कारणसे शौनकादि कुलपति महर्षियोंने तप सिद्धिकी अभिलाषासे ऊपर कहे हुए परम पवित्र नैमिषक्षेत्रमें तपस्या करनेके निमित्त परमपवित्र आश्रमको बनाया था, कलिको आया हुआ देख यज्ञ करनेकी अभिलाषासे वहाँ विश्राम किया ॥२२॥ शान्तिके उदय होने [illegible] होती है [illegible]के उदय होनेसे जिस प्रकार सद्गुणोंमें प्रीति होती है ॥ २३ ॥

अथवा सत्यके उदय होनेसे धर्मका मान जिस प्रकार बढ़ता है, [illegible] उत्पन्न होनेसे प्रवृत्ति जिस प्रकार गौरवयुक्त होती है ॥२४॥ ऊपर कहे हुए ऋषियोंके समागमसे उपरोक्त नैमिषक्षेत्र भी उसी प्रकारसे अपनी शोभाको बढ़ाया ॥२५॥ छाया जिस प्रकारसे मनुष्यकी अनुगामिनी होती है उसी प्रकारसे उत्तम गुण सद्गुणोंके साथ चलते हैं, सैकड़ों जलाशय होनेपर भी समस्त नदियें एकमात्र समुद्रमें ही जाकर गिरती हैं ॥२६॥ पृथ्वीपर भांति २ ज्योति (प्रकाशमान) पदार्थ होते हैं, परन्तु कुमुद तो एक चन्द्रमाको ही देखकर प्रफुल्लित होता है ॥२७॥ इसका क्या कारण है ! इसका सारांश यह

नीतेरुदयतो यादृक् प्रवृत्तेर्गौरवं भवेत् ॥ सत्यस्योदयतो धर्मो यथा स्याद्गौरवान्वितः ॥२४॥ एतेषामृषिमुख्यानां पूर्वोक्तानां समागमात् ॥ तथैव नैमिषक्षेत्रं गतं शोभासमृद्धिताम् ॥२५॥ छाया लोकमिवान्वेति सद्गुणैश्चैव सद्गुणः ॥ नद्योऽब्धिं यान्ति वै हित्वा शतशोऽन्यजलाशयान् ॥ २६ ॥ ज्योतिष्वन्येषु बहुषु वर्त्तमानेषु कैरवम् ॥ कथं विकाशं नाप्नोति नैव दृष्ट्वा कलानिधिम् ॥२७॥ इत्याकृष्यत एवेह मनो नृणां महात्मभिः॥सामान्यानां यथा लौहमयस्कान्तेन सत्वरम् ॥ महात्मानः परेशांशा ईशशक्तिसमन्विताः ॥ २८ ॥ तदेकधा महाभागः प्रकृत्याशेषसद्गुणः ॥ महर्षिकल्पः सूतस्तु व्यासशिष्यः स्वतृप्तये ॥ २९ ॥

है कि उत्तम और सरल स्वभाववाले महानुभाववाले पुरुष नानाप्रकारसे मनुष्योंके मनको आकर्षण करते हैं, लोहेमें लगानेसे चुम्बकपत्थरमें जिस प्रकारकी आकर्षण शक्ति है उसी प्रकारसे महात्माओंकी भी और मनुष्योंके ऊपर आकर्षण शक्ति है, वह साक्षात् ही ईश्वरके अंश हैं, स्वयं ईश्वरने ही उनको उस प्रकारकी शक्ति दी है ॥२८॥ इस कारण स्वभावके वशीभूत हो असीम गुणोंके आधार और पक्षपाती महाभाग महर्षिकल्प व्यासजीके शिष्य सूतजी

अपनी आत्माकी तृप्तिकी इच्छासे एक समय घूमते हुए महर्षि कुलपति शौनकजीके दर्शनके निमित्त उनके आश्रमको गये ॥२९॥३०॥ वहां जाकर देखा कि,जहाँ सर्वदा ही उत्तम प्रसंग और उत्तम अनुष्ठानके साथ धर्मकी चर्चा हो रही है,उस स्थानमें इस प्रकारके अलौकिकताके चरित्रोंका होना क्या कुछ असंभव है सो इस आश्रममें तो उस विषयके किसी अंशका भी अभाव नहीं था॥३१॥ इसके पीछे महर्षि शौनकजी इस स्थानमें बारहवर्षमें पूर्ण होने वाले यज्ञका अनुष्ठान कर ऋषियोंके साथ साक्षात् तपस्या और शांतिके समान मूर्तिमान् बैठे हुए थे॥३२॥सूतजी वहां जाकर हाथ जोड़ उन महामुनिको

पक्षपाती गुणस्यासञ्शौनकस्य यदृच्छया ॥ अगात् कुलपतेः सद्म दर्शनाय मुनेः सुधीः ॥३०॥ सत्प्रसंगानुवृत्तिभ्यां धर्मचर्चा यतः सदा ॥ तत्रालौकिकता यादृक् तथैव शौनकाश्रमे ॥३१॥ महर्षिरथ यत्रासौ द्वादशाब्दिकसत्रतः ॥ ऋषीणां समितावास्ते साक्षाच्छान्तिस्तपोऽथवा ॥ ३२॥ सूतस्तत्रोपसङ्गम्य कृताञ्जलिपुटस्तदा ॥ पादयोः प्रणिपत्याथ ववन्दे च महामुनिम्॥३३॥ इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे वैयासिके अनुक्रमणिकाभिधेयः प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ अशेषशेमुषीविद्याविशिष्टे ज्ञानदिद्धरे ॥ व्यासान्तेवासिनि सूते परिविज्ञानशालिनि॥१॥यथाविधि प्रणम्येति साक्षाद्विनयभक्तिवत्॥स्थितं तमवलोक्याथ जाताह्लादो महामुनिः ॥ २ ॥ शौनको बह्वृचः शान्तः स्वस्वभावगुणेन हि ॥ प्रददावभिवाद्यास्मै सूतायासनमासितुम् ॥३॥

प्रणाम कर चरणवन्दना करने लगे॥३३॥इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे वैयासिके श्यामसुन्दरलालत्रिपाठिकृत–भाषाटीकायामनुक्रमणिकाविधेयः प्रथमोऽध्यायः॥१॥ अशेष ज्ञानसम्पन्न असामान्य विद्या बुद्धि विशिष्ट और परमविज्ञानी व्यासजीके शिष्य सूतजी ॥१॥ साक्षात् विनय और भक्तिके समान इस प्रकार यथोचित प्रणाम करके खड़े हो गये तो शौनकजी उनको देखते ही अत्यन्त प्रसन्न हो ॥२॥ अपने स्वभावसे ही विनय और गौरव

की रक्षाके अर्थ आसनसे कुछेक उठकर उसी समय अत्यन्त प्रीति और आदरसे उनके बैठनेके निमित्त पवित्र आसन दिया॥३॥शौनकजीको ऐसा करते देखकर अन्य महर्षियोंने भी उन्हींके समान सूतजीका यथोचित आदर सत्कार किया॥४॥ इस प्रकार साधुओंके समागमसे यथोचित सम्मान और शिष्टाचारको पाकर सूतजी भक्ति और विनयके आसनको ग्रहणकर एक ओर बैठ गये॥५॥ शांतिके उदयसे जिस प्रकार सम्पूर्ण सन्ताप दूर होजाते हैं,विनयके उत्पन्न होनेसे जिस प्रकार सम्पूर्ण ऊधम नाश होजाते हैं॥६॥ उत्तम बुद्धिके उत्पन्न होनेसे समस्त निकृष्ट प्रवृत्तियें जिस प्रकारसे

अन्ये च ऋषयश्चतद्दृष्ट्वा तुल्यसमादरैः॥ सूतस्य सत्कृतिं, चक्रुर्यथोचितविधानतः॥४॥सूतोऽपि प्रतिजग्राह विनयेनाभिवाद्य च॥प्रीत्या भक्त्या समानन्द्य तस्मिन्नुपविवेश वै॥५॥शान्तेरुदयतो यद्वत्सन्तापोऽपसरेत्खलु॥विनयोपचयाद्याद्दगौद्धत्यं याति संक्षयम्॥ ६॥ सद्बुद्धेरुदये न स्याद्दुष्प्रवृत्तिर्यथा हता॥ तिरो भवेद्यथा मोहतमः सज्ज्ञानसम्भवात्॥ ७॥ भक्तिप्रेमोदयादन्तर्मलं चोपरमेद्यथा॥ दूरमस्येद्दुरदृष्टं सदाचारचितिर्यथा॥८॥आत्मशुद्ध्युदयाद्याद्दक्पापं याति पराभवम्॥ विज्ञानोदयतो यद्वदसन्तोषोऽवधूयते॥९॥ अन्तर्दध्याद्यथाज्ञानं विद्याया उदयेन च॥ऋषिदेवमिष्टदेवं वीक्ष्यैव शौनकं तथा॥१०॥

हत हो जाती हैं, सद्ज्ञानके उदय होनेसे मोहका अन्धकार जैसे दूर हो जाता है॥७॥ भक्ति और प्रेमके हृदयमें उत्पन्न होनेसे जिस प्रकारसे मलीनता दूर हो जाती है,उत्तम आचारके उत्पन्न होनेसे जिसप्रकार दरिद्रता चली जाती है॥८॥आत्मशुद्धिके उपाय होनेसे जिसप्रकार सम्पूर्ण पाप धुल जाते हैं,विज्ञानके उदय होनेसे समस्त असंतोष जिस प्रकार नष्ट हो जाते हैं॥९॥ विद्याके उत्पन्न होनेसे जिसप्रकारसे अज्ञानका नाश हो जाता है,उसी प्रकारसे

साक्षात् अभीष्टदेव शौनकजीके दर्शन करनेसे ही ॥ १० ॥ बुद्धिमान् सूतके शीघ्र ही समस्त श्रम समस्तक्लेश और सर्व ग्लानियें दूर हो गयीं, उन्होंने क्षण कालमें ही अत्यन्त विश्रामके सुखको प्राप्त किया ॥ ११ ॥ और वे एकाग्र चित्तसे यह प्रतीक्षा करने लगे कि मुझे कुछ आज्ञा दें? महाभाग शौनकजीकी ओर हाथ जोड़े हुए देखते रहे ॥ १२ ॥ यह देखकर कुलपति शौनकजी इनका बहुत सा मान बढ़ाकर मधुरवचनोंसे अत्यन्त प्रीति दिखाते हुए कहने

सूतस्य धीमतः सद्यः ग्लानिश्चैव श्रमः क्लमः ॥ सर्वं दूरमगाद्दुःखं शान्तिं स परमां गतः ॥ ११ ॥ अथ तद्गतचित्तोऽसौ यथैव तन्निदेशकृत् ॥ शौनकाभिमुखं दृष्टिः कृताञ्जलिरवस्थितः ॥ १२ ॥ तं तथाविधमालक्ष्य शौनकोऽथ महामुनिः ॥ सम्मानयन्व्यासशिष्यं गिरा सूनृतया ब्रुवन् ॥ १३ ॥ सूत सूत महाभाग तत्त्वज्ञानैकभाजन ॥ यथा श्रमफलं लोके सुखमेव सनातनम् ॥ १४ ॥ लोकानुरागसम्प्राप्तिर्विनयस्य फलं यथा ॥ सारल्यस्य फलं यद्वद्विश्रम्भो विश्वतन्त्रकः ॥ १५ ॥ निरहंकाररूपस्य मैत्र्यलाभः फलं यथा ॥ आत्मोन्नतिर्ज्ञानफलं चेष्टा सिद्धिफला यथा ॥ १६ ॥ प्रतिपत्तिः फलं साध्वी शिष्टाचारस्य सर्वतः ॥ संसारे च यशोऽवाप्तिः सत्कार्यस्य फलं यथा ॥ १७ ॥

लगे ॥ १३ ॥ कि हे महाभाग सूतजी! तुम तत्त्वज्ञानके पात्र हो, हमने लोकमें सुना है कि परिश्रमका फल जिस प्रकार नित्य सुख है ॥ १४ ॥ विनयका फल जिस प्रकार लोकोंमें अनुरागका संग्रह करना है, सरलताका फल जिस प्रकारसे ईश्वरमें विश्वास है ॥ १५ ॥ अहंकारके त्यागनेका फल जिस प्रकारसे सबोंमें मित्रताका प्राप्त करना है, ज्ञानका फल जिसप्रकारसे आत्मोन्नति है, चेष्टाका फल जिसप्रकारसे सिद्धि है ॥ १६ ॥ शिष्टाचारका फल

जैसे प्रतिष्ठा है, उत्तम कार्यका फल जैसे उन्नति है, सत्कार्यका फल जिस प्रकारसे संसारमें यशकी प्राप्ति है ॥१७॥ और शांतिका फल जिस प्रकारसे मुक्ति है, तपस्याका फल जैसे तुम्हारे समान ज्ञान विज्ञानके जाननेवाले विश्वदर्शी महाभाग पुरुषका सहवास, अथवा साक्षात्का होना है ॥१८॥ समस्त प्राणियोंके बीचमें दुपाया उत्तम है और दुपायोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है, ब्राह्मणमें ज्ञानवान् श्रेष्ठ है और ज्ञानियोंसे विज्ञानी श्रेष्ठ है ॥ १९ ॥ और तुम्हारे समान भगवद्भक्तिके प्रेमीपुरुष ये सभी श्रेष्ठ हैं, इस कारण आज तुम्हारे दर्शन होनेसे मैंने अपनी चिरकालसे संचित की हुई तपस्याका अभीष्ट फल

यथा मोक्षफला शान्तिस्तपस्यायाः फलं यथा ॥ भवादृशस्य संसर्गः साक्षात्कारश्च पुण्यदः ॥ १८ ॥ प्राणिनां द्विपदः श्रेष्ठो जीवेषु ब्राह्मणस्तथा ॥ विप्राणां ज्ञानिनः श्रेष्ठा विज्ञानी च ततः परः ॥१९॥ भगवद्भक्तिरसिकं भवन्तं प्रविलोक्य वै ॥ चिराज्जिततपः पुण्यफलमद्य ममागतम् ॥ २० ॥ नराणां सन्ति सर्वेषां नेत्रादीनीन्द्रियाणि हि ॥ तानि येषां न सार्थानि नरास्ते मृन्मयाः परम् ॥२१॥ विद्या च विद्यते येषां ज्ञानं नो विद्यते पुनः ॥ धनानि दानहीनानि शक्तिश्च कार्य्यतो विना ॥२२॥ तेषां विडम्बनार्थाय सर्वाणि विफलानि वै ॥ भवादृशास्तु विद्याद्यैर्लेभिरे फलतां शुभाम् ॥ २३ ॥

प्राप्त किया ॥२०॥ विचार कर देखो कि मनुष्यमें दो हाथ, दो पैर, दो नेत्र, दो कर्ण और घ्राण रसना अन्तःकरण आदि सभी हैं परन्तु जो इन सबका उचित कार्य नहीं करते हैं उनमें और काठकी पुतलीमें क्या विशेषता है ? इस कारण जो इनका उचित व्यवहार करते हैं वे ही वास्तवमें मनुष्य हैं, इसके विपरीत करनेवाले मनुष्य जड़के समान हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥२१॥ और जिनके पास विद्या है परन्तु ज्ञान नहीं, धन है पर पुण्य नहीं, शक्ति है किन्तु उसका कार्य नहीं किया जाता ॥२२॥ उनकी स्थिति विडम्बनामात्र है और उनके सर्व कार्य विफल हैं, परन्तु आपके समान जिन

मनुष्योंने विद्याका फल ज्ञान, धनका फल दान और शक्तिका फल लोककी रक्षा इत्यादि शिक्षाका अभ्यास किया है ॥ २३ ॥ उन्हीं पर भगवान्की साक्षात् कृपा है, इस कारण तुम्हारा सहवास, तुमसे वार्तालाप और तुम्हारा दर्शन यह जीवन सफल पुण्यका उत्पन्न करनेवाला है ॥ २४ ॥ इस समय अब सन्ध्या उपस्थित हो गयी है, हमें अग्निगृहमें उपासनाके अर्थ जाना होगा ॥ २५ ॥ यह देखो! जो समस्त मनुष्योंको सन्ताप और दुःख देते हैं उनको जल्दी अस्त होना होता है, यही दिखानेके लिये ये सूर्यभगवान् दिनभर संसारको सन्ताप देकर अस्त हो जाते हैं, जिनकी प्रकृति स्वभावसे ही कोमल है,

भगवत्करुणाभाजां भवतां दर्शनादिकम् ॥ करोति जन्म सफलं जीवितं च पुनाति हि ॥ २४ ॥ इदानीमागता सन्ध्या कार्य्यं चोपासनादिकम् ॥ गमिष्यामो वह्निगृहं पश्य कालगतिं पुनः ॥ २५ ॥ अस्तं गच्छति वै काले परान्सन्तापयन्रविः ॥ नलिनीको मलमतिर्विषण्णास्ते सरोवरे ॥ २६ ॥ महात्मानो न त्यजन्ति स्वभावं पतनेऽपि हि ॥ इति दर्शयितुं पश्य भास्करो भास्कर च्छविः ॥ २७ ॥ महतोऽस्तमनं साक्षाद्विश्वस्यामङ्गलं परम् ॥ अन्धकारसमाच्छन्ना धरित्री रविणा विना ॥ २८ ॥ कृतज्ञा मृग पतगाः स्वोपकारांश्च चिन्तयन् ॥ प्रकाशयन्ति दुःखानि रावैरस्तमने हरेः ॥ २९ ॥

दूसरेके दुःख देखनेसे वे अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं, यही दिखानेके निमित्त ये सम्पूर्ण कमल सरोवरोंमें सूर्यके अस्तके समय मलिनता धारण कर लेते हैं ॥ २६ ॥ महात्माओंका तो यही स्वभाव है कि विपत्तिके समय भी अपने उत्तम स्वभावको नहीं छोड़ते इसी कारणसे भगवान् सूर्यदेव भी देखो अस्त होनेके समय उज्ज्वल मूर्तिको धारण करते हैं ॥ २७ ॥ महात्माओंकी मृत्युका होना संसारका साक्षात् अमंगल है, सूर्यके अस्तके समय संसार अन्धका रसे ढक जाता है इसके समान अमंगल और क्या है ॥ २८ ॥ कृतज्ञ मनुष्योंका हृदय कभी भी उपकारोंको नहीं भूलता और उपकार करनेवाले

माननेवाले मनुष्योंको इसी कारणसे अमंगलकी व्यथासे पीड़ित होना नहीं पड़ता है. देखो सम्पूर्ण पक्षी सूर्यको उदय होता हुआ देखकर अपने दिनभरके निमित्त भोजनकी सामग्रीको इकट्ठा करके जिस उपकारको प्राप्त हुए हैं उसीको स्मरण कर सूर्यको अस्त होता हुआ देख चिल्लाते हुए दुःखप्रकाश करते हुए अपने घोंसलोंको जा रहे हैं ॥२९॥ उन्नति पर अवनति है और अवनति पर उन्नति है इस रीतिसे यह संसारचक्र भ्रमण करता है ॥३०॥ इस निमित्त किसीकी उन्नति वा अवनतिको देखकर व्याकुल वा अधीर होना योग्य नहीं ॥३१॥ यही दिखानेके निमित्त यह सन्ध्या धीरे २ आग

पतनात्परमुत्थानमुत्थानात्पतनं तथा ॥ इत्थं संसारचक्रस्य भ्रमणस्य विधिर्भवेत् ॥ ३० ॥ नावसीदेदथो लोको नाधीरो वा भवेदतः ॥ अन्यस्यावनतिं दृष्ट्वा पतनं च तथैव हि ॥ उपदेष्टुमिवेत्येव सन्ध्या धीरं समागता ॥ ३१ ॥ यथा पापात्मनां स्वान्तमज्ञानतमसावृतम् ॥ लीयन्तेऽह्नानि सर्वाणि तमसि क्रमशस्तथा ॥३२॥ तपस्यानन्तरं शान्तेरुदयेन सुसङ्गवत् ॥ सन्ध्यागमे समीरश्च वाति शीतं सुखङ्करः ॥ ३३ ॥ तपसोऽन्ते सिद्धिलाभे मुखकान्तिर्यथा सतः ॥ कुमुदिन्यस्तथा फुल्लाः सुधाकरसमागमे ॥३४॥ दुःखस्यासह्यतां वृक्षाः प्रदर्शयितुमेव वा ॥ प्रतीक्षन्ते स्पन्दहीना अन्धकारं सुदारुणम् ॥ ३५ ॥

मन करती है. देखो ! पापीका हृदय जिस प्रकार अज्ञानरूपी अन्धकारसे ढका हुआ है ॥३२॥ सम्पूर्ण दिशायें भी उसी प्रकार क्रम२से अन्धकारसे छिप जाती हैं, शांतिके उदय होनेसे जिस प्रकार समस्त सन्ताप नष्ट हो जाते हैं, मीठा सहवास जैसे सुखदायी है ॥३३॥ संध्याके आगमनसे उसी प्रकार पवन सुखका देनेवाला और शीतल मंद युक्त होकर वहन करता है, विचारो कि बहुत तपस्याके पीछे अभिलषित सिद्धि प्राप्त होनेपर मधुर मुख जिस प्रकार सज्जनोंका प्रफुल्लित होता है ॥३४॥ चन्द्रमाके समागमसे सब बबूले भी उसी प्रकारसे खिल जाते हैं, (या अपने समान दूसरोंकी

अवनतिको देख जिसप्रकारसे ईर्षा हृदयमें प्रफुल्लित होती है,सब बबूले भी अपनी जाति कमलकी अवनतिको देखकर उसी प्रकार खिल जाते हैं) दुःखका पहला वेग अत्यंत ही असहनीय है,इस कारण व्याकुल न होकर धैर्यको धारण कर उस वेगको सहन करनेका यत्न करना योग्य है।इसीको दिखानेके निमित्त यह संपूर्ण वृक्ष पवनहीन होकर रात्रिके घोर दारुण अन्धकारके आनेकी बाट देख रहे हैं ॥३५॥ जो मनुष्य अपने स्वामीकी भली प्रकारसे सेवा कर अपनेको सेवक मान जीवनको व्यतीत करते हैं वे ही इस प्रकार सर्वदा शंकित और दुःखित होते हैं,प्राणी शंकित हो सुखके निमित्त घरोंमें आते हैं ॥३६॥ सूर्यके अस्तमें कोई क्षीण और कोई वर्द्धित होते हैं, कोई प्रसन्न कोई विरस कोई स्तम्भित और कोई शब्द करते हैं।॥३७॥ दिवाचारी

नियतं प्रभुसेवायां यापयन्तः स्वजीवनान्॥प्राणिनः शङ्कितोद्विग्ना आश्रयन्ते गृहान् सुखम्॥३६॥सूर्य्यस्यास्तमने लोकाःक्षीणाः केचित्सुवर्द्धिताः॥प्रफुल्ला विरसाः केचित्स्तम्भिताः शब्दिताः परे॥३७॥दिवाचरा निशाकाले सुविषण्णा भवन्ति हि॥निशाचरा निशालोके जाताह्लादा विधेर्गतिः॥३८॥सूत लोकालयान्पश्य रुचिभिन्नक्रियापरान्॥निशागमे नरा नार्यः स्वस्वकार्यव्रते रताः२९॥

रातमें दुःखी होते हैंऔर निशाचर रात्रिके होनेसे प्रसन्न होते हैं, यह विधाताकी गति है ॥३८॥ हे सूत ! लोकोंको देखो जो भिन्न रुचिसे भिन्न२ कार्य करते हैं(अर्थात् संध्याको आती हुई देखकर दिनमें चरनेवाले प्राणी उस प्रकारसे शंकित और दुःखित होकर स्थान ढूँढ़नेके निमित्त इधर उधर जाते हैं.क्या सम्पत्ति,क्या विपत्ति,सभी अवस्थाओंमें क्षुद्र चित्त और दुर्बल प्रकृतिवाले मनुष्य ही चंचल और अधीर हो जाते हैं; पक्षियोंका एक दृष्टान्त है, कि वे सूर्यको जिस समय उदय होते हुए देखकर चंचल हो शब्द करते हैं और चरते हुए फिरते हैं, उसी प्रकार सूर्यके उदय न होनेसे अन्धकारको देख व्याकुल होकर शब्द करते हैं,आलसी मनुष्यकी विद्या जिस प्रकारसे प्रतिदिन क्षय होती जाती है.सूर्यके उदय और विरहसे दीन मुख

वालोंके अनुराग उसी प्रकारसे क्षीण हो जाते हैं, स्वाधीन मनुष्यकी तेजश्री जिस प्रकारसे प्रतिदिन बढ़ती जाती है. सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, ये किसीके भी अधीन नहीं हैं, इस कारण इनकी इस प्रकार दिनपर दिन वृद्धि होती है, अविद्याके अन्तमें पवित्र ज्ञानका प्रकाश होता है, उसके प्रभावसे सम्पूर्ण दुष्प्रवृत्तियें कुलाहल करती हुई हृदयमें समा जाती हैं, सन्ध्याके उदयसे यह सम्पूर्ण संसारका कुलाहल क्रमर से बन्द हो जाता है, यह चकवा चकवी आर्तस्वरसे चिल्लाकर स्पष्टभावसे यह कह रहे हैं कि किसीका सुख सर्वदा रहनेवाला नहीं है और जहां संयोग है वहां वियोग है. किसी २ समय सुखके पहले दारुण दुःखका आगमन होता है, इसीको दिखानेके निमित्त यह आकाशमें महाअन्धकार छा रहा है, परन्तु थोड़े ही समयमें अब तारा गणोंसे शोभित होकर नक्षत्रमालाओंके सहित, चन्द्रमा उदय होकर अपनी पूर्णकलाको विस्तार करेगा, जो लोग स्वभावसे ही ऊँचे चित्तके हैं व दूस

सुखानुध्याननिरता जीवा मायाविमोहिताः ॥ यथार्थसुखहेतुं न ध्यायन्ति जगदीश्वरम् ॥ ४० ॥
इत्युक्त्वा शौनकः सूतं विश्रामाय नियोजयन् ॥ प्रविवेशाग्निशरणं सायंकृत्यं समाहितुम् ॥ ४१ ॥

रोंके धनको देखकर अत्यन्त प्रफुल्लित होते हैं, यह देखो रात्रिकी समृद्धिको देखकर सम्पूर्ण फल खिल जाते हैं) ॥ ३९ ॥ हे महाबुद्धिमान् सूत! इस समय संसारमें जाकर क्या देखा जायगा कि घरकी स्त्रियें संध्याकालके घर सजानेमें लग रही हैं, कोई दीपक जला रही है, कोई अपनी शय्या तैयार कर रही है, और कोई अपने२ बालक बालिकाओंको सावधान कर रही है, कोई२ स्त्री बीती हुई रात्रिकी क्लेशमयी शय्याको स्मरण कर२ बारंबार अपने गालोंको फुला लेती है और अपने प्रेमीके प्रति ईर्षा कोप और अभिमान प्रकाश करनेकी चेष्टामें अनेकप्रकारके उपाय खोज रही है, कोई२ अपने स्वामीकी बीती हुई रात्रिके समान आजकी रात्रिमें अपने प्रीतमको भली प्रकारसे प्रीतिके बंधनमें बांधने और क्रीड़ामृग करनेकी चेष्टामें गाढ़ निमग्न हो रही

हैं और विरहिणी स्त्रियें दूसरी बार संध्याको देखकर वध करनेकी भूमिमें लाये हुए मनुष्यके समान अत्यन्त ही व्याकुल होकर चिन्ता कर रही हैं, और संयोगिनी स्त्रियें दूसरी रात्रिके अपार आनन्दको याद कर कर केवल यही चिन्ता कर रही हैं कि हमारे इस सुखका कभी अंत नहीं होगा और तस्कर (चोर) लोग अन्धकारको देखकर उलूकके समान संसारके नाश करनेकी बाट जोह रहे हैं, अपने स्वामीकी सेवा करनेवाले सेवक लोग हलसे छूटे हुए बैलके समान सारे दिन परिश्रमको करनेसे थककर पराधीन हो धीरे धीरे जा रहे हैं; और कोई२ अपने स्वामीके क्रोध और प्रीतिकी चिन्ता करके "दूसरे दिन हमारे भाग्यमें क्या होगा यह चिन्ता कर रहे हैं" हे सूत! इस संसारमें मनुष्य होकर जिसने मनुष्यकी उपासनासे अपने जीवनको व्यतीत किया है, वह हतभागी और संसारमें भूला हुआ है. मैं नहीं कह सकता कि उसको विधाताने सृष्टिमें क्यों जन्म दिया और क्यों नहीं उसको पशु, पक्षी, वृक्ष, लता इत्यादिमें जन्म दिया. हे सूत! ऐसे हतभाग्योंके लिये ही मेरा मन अत्यंत व्याकुल हो रहा है, अथवा मनुष्योंके चित्तकी वृत्ति स्वभावसे ही दूषित है, देखो ! यह सन्ध्याका समय उस परमपुरुष भगवानकी उपासना करनेका है, इस समय साधुओंका मन स्वभावसे ही कोमल और हरिकी ओर होकर उस परम पुरुषार्थरूपी भगवान्‌के ध्यानमें मग्न हो जाता है, परन्तु मनुष्य और ध्यानमें मग्न होकर अन्य कार्य करने लगते हैं, उपासनामें बैठकर विषयकी चिन्ताके हाथसे उद्धार नहीं पा सकता, इसके समान दूषित हृदयका स्पष्ट प्रमाण और क्या हो सकता है. जिसने ज्ञान दिया है; बुद्धि दी है और जिसने प्रतिदिनके लिये भोजनकी सामग्री देकर जनक जननीके समान पालन किया है, हाय! मोहसे ढके हुए मनुष्य तुम किस कारणसे और किस साहससे उस दयामय विधाताको एक बार दिनके अंतमें स्मरण करनेमें सन्नद्ध नहीं होते इसके समान तुम्हारे नर्कका द्वार, अभाग्यताका कारण और क्या हो सकता है ? कोमल चित्तवाले पवित्रबुद्धि महाशय शौनकजी इस प्रकारके वचन कहकर अत्यन्त ही उदासीनसे कुछ समयके लिये मौन हो गये,

फिर बुद्धिमान सूतको आदर सहित संबोधन कर कहने लगे कि, हे तात! तुम मार्गके परिश्रमसे अत्यंत ही क्लेशित हो गये हो इस कारण तुम थोड़ी देरके लिये विश्राम करो मैं अग्निगृहमें जाता हूं फिर आकर तुम्हारे साथ वार्तालाप कर चित्तको सुखी करूंगा. यह कहकर ये उसी समय अग्निगृहको चले गये, तब ऐसा बोध होता था कि मानो अग्निके साथ अग्नि मिल गया हो ॥४०॥४१॥ इसके उपरांत और महर्षियोंने भी संध्याके कृत्य करने प्रारंभ किये, तब तपोवनमें एक दिव्य भाव उपस्थित हुआ चारों दिशायें पुण्यमय वेदध्वनिसे गुंजार उठीं, पवित्र होमकी सुगंधिसे दिशायें सुगंधित होने लगीं, नाना प्रकारके मनोहर स्तुतिके पाठ करनेवाले अभ्यागतोंकी ध्वनिसे अमृतकी धारा वर्षने लगी, ध्यान, समाधि और प्रणायाम ये सभी वहांपर उपस्थित थे, सब क्रियायोग, ज्ञानयोग और मुक्तियोग ये प्रत्यक्ष ही दृष्टि आने लगे, भगवती सावित्री देवी भी गायत्रीके साथ मूर्तिमती होकर वह

अन्ये च मुनयः सर्वे सन्ध्योपासनतत्पराः ॥ वेदमन्त्रैस्तदारण्यं देवक्षेत्रमकल्पयन् ॥ ४२ ॥

विराजमान हुई, सम्पूर्ण देवता भी अग्निको आगे कर उस स्थानपर प्राप्त हुए, अधिक क्या कहें वेदके प्रतिपाद्य विधाता भी वहां आकर प्रत्यक्ष प्रकट हुए। भक्ति, श्रद्धा, अनुराग, प्रेम, भाग्य, वैराग्य, उपशम और उपरति ये भी वहां साक्षात् प्रकट हुए, तब ऐसा बोध होता था कि, मानो स्वयं ब्रह्मलोक इस तपोवनमें उतर आया है, अथवा वहां धर्म, सत्य, शान्ति इन सबके एकत्रित होनेसे सतयुग मानो स्वर्गके साथ मिल गया है, तत्काल ही यह भी यहां आकर प्रकट हुआ वैसे ही वहांपर आत्मा, परमात्मा और प्रकृति ये तीनों ही प्रधान विषय दृष्टि आने लगे और उसके साथ ज्ञान, विज्ञान और शम दमादिके अभ्यासकी शिक्षा होनेसे वहांपर सर्वदा ही सतयुग, स्वर्ग और ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, प्रकट होते हैं इसमें संदेह नहीं ॥ ४२ ॥

यह देख और सुनकर भगवान्‌के भक्त वैष्णवोंमें प्रथम गिननेयोग्य बुद्धिमान् सूतजी भावभरे गद्गद वचनोंसे अवश होकर कुछ कालके निमित्त मौन हो गये. तब ऐसा जाना जाता था कि, मानो कोई चित्रकी पुतली बैठी है, इसके उपरान्त और मौन न रहकर भगवत्‌के प्रेममें मग्न हो निरन्तर आंसुओंकी धाराको बहाते हुए गद्गद वचन हो मधुर स्वरसे ईश्वरके नामके संकीर्तन करनेमें प्रवृत्त हुए, उनका वीणारूपी तंत्रके मधुर स्वरके समान मनको हरनेवाला स्वर आकाश और पातालमें पूर्ण आनंदसे पूर्ण करता हुआ चारों दिशाओंको कंपायमान करने लगा। यह देखकर सम्पूर्ण तपोवन कुछ कालके निमित्त शब्दहीन हो गया, पक्षी कलोलैं कर रहे थे, वे उसी समय वहांसे झुंडके झुंड इकट्ठे होकर उस स्थानपर आये, हिरन और हिरनियें चंचल होकर सूखे हुए पत्तोंपर मर्मर शब्द करते हुए फिर रहे थे वे उसी समय धीर भावको धारण कर उस स्थानपर आकर उपस्थित हुए, व्याघ्र और सिंह

तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुतान्तरः सूतो हि संकीर्त्तनरागसङ्गतान् ॥ चराचरांस्तारकनामगानकैस्तुतोष वै तापसवृन्दवर्द्धितैः ॥४३॥ इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे वैयासिके शौनकसूतसङ्गमे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तथा पशु पक्षी अपनी२ स्त्रियोंके साथ शयन करनेका उपाय कर रहे थे, वे भी उसी समय उसको छोड़कर वहां आये, ऋषियोंमें भी बहुतसे ऐसे थे, कि जिनका आधा जप भी न होने पाया था वे भी विना तप पूर्ण किये शीघ्र ही आये, स्वयं शौनकजी भी होमकी विधिको विना समाप्त किये वहांसे आकर उनके साथ योग देने लगे, इसीका नाम संकीर्तन है, यही अपार और अनुपम माहात्म्य है, जिससे पत्थर भी पिघल जाय। शौनकजीके समान प्राकृत भगवत् रसिककी वार्ता और क्या कहें, समस्त ऋषि उनके नामके संकीर्तनको सुनकर जड़के समान मौन हो गये, और वहांसे एक पग भी न चल सके, किसीको भी इस प्रकारसे साहस और सामर्थ्य न रहा, इस रीतिसे सम्पूर्ण तपोवन मौन और एकाग्रचित्त होकर उस मधुर नामके संकीर्तनको सुनने लगा ॥ ४३ ॥ इति श्रीआदिपुराणे सूतशौनकसंवादे भाषाटीकायां संध्यावर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इसके उपरांत संकीर्त्तन समाप्त हुआ, सब अपने २ आसनोंपर बैठ गये सूतजी भी विधिपूर्वक अपने आसनपर बैठे तब ऐसा बोध होता था, कि मानों तपोवनमें देवताओंकी सभा हो रही है. अथवा धर्म, सत्य, न्याय, शांति, श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, पूजा, समाधि, प्राणायाम और निष्ठा इत्यादि पारमार्थिक वृत्ति ये सब साक्षात् प्रकट होकर मिले हुए बैठे हैं. सारांश यह है कि, एक २ ऋषि एक २ वृत्तिके अवतार थे, उनके बीचमें शौनकजी साक्षात् परमार्थ स्वरूपसे बैठे हुए सूतजीसे बोले ॥१॥ कि हे तात ! हम लोग जो सर्वत्यागी होकर बहुत क्लेश और बहुत यत्नके साथ इस दुःसाध्य यज्ञके करनेको प्रवृत्त हुए हैं, संसारका उपकार करना ही इसका उद्देश्य है॥२॥ देखो ! संसारमें अपने प्रति, दूसरोंके प्रति और ईश्वरके प्रति यह तीन प्रकारके

सूते निवृत्ते ऋषिभिः सह सात्त्विकवृत्तिभिः ॥ भगवत्तत्त्वरसिके प्रोवाच शौनकस्तदा॥१॥ संन्यासिनो वयं तात यज्ञेऽस्मिंस्तु सुदुष्करे ॥ बह्वायासेन कष्टेन लोकानां शर्म्मकाम्यया ॥२॥ लोकेऽस्मिन्नात्मनि यथा ईश्वरे च तथा परे ॥ त्रिविधं साधनं दृष्टं साधूनाममलात्मनाम्॥३॥ अयं हि शास्त्रसिद्धान्तो मुनीनां चानुमोदितः ॥ आत्मार्थं परिपालानां स्वार्थसिद्धेरधोगतिः ॥४॥

कर्तव्य कार्यसाधन करनेमें होते हैं॥ ३॥ पहले बृहस्पति आदि आचार्योंका यही उपदेश और अभिप्राय है, एक मात्र दूसरोंके पवित्र और अकपटके उपकारसे सर्वकर्तव्य कार्यसाधन करने योग्य हैं, इस कारण जो मनुष्य आत्माको ही प्रधान जानकर उसके उपदेशसे दूसरोंके उपकार करनेमें प्रवृत्त हो उसीको आंशिक स्वार्थपर कहते हैं, स्वार्थपरता नरकका द्वार और महापाप है, आप लोगोंमें जिस प्रकारसे अपकार और अवनतिकी सम्भावना है उसी प्रकार स्वार्थपरता इसके बीचमें प्रधान हैं, इसको जानकर ही गुरुदेव बृहस्पतिजीने इस प्रकारसे उपदेश किया है, गुरुकी आज्ञाको पालन करना

शिष्यका अवश्य कर्तव्य है, ऐसा न करनेसे घोर अधर्म होता है ॥ ४ ॥ विशेषकर यह घोर कलियुग आ पहुंचा है, मनुष्योंमें कलियुगके बढ़ने पर अधर्मका विस्तार होगा ॥ ५॥ और कलियुगके प्रभावसे परस्पर मोह ही दृष्टि आवेगा, धर्मका आदर और अनुराग जाता रहेगा ॥ ६ ॥ शिलाकी शालिग्रामकी मूर्तिको मानपिंड अर्थात् बाट बनाकर तराजूके ऊपर व्यापार निर्वाह करनेको अनेक प्रकारके उपाय करते देखा जायगा, कुकर्मी और नास्तिकोंकी संख्या दिन २ बढ़ती जायगी, इसी कारणसे माताकी भक्ति पिताकी भक्ति पृथ्वीतलसे भागनेका उपाय कर रही है ॥७॥

विशेषतः समायातो घोरः कलियुगोऽप्ययम् ॥ अधर्मः प्रबलो यत्र जनानां कलिवर्द्धके ॥५॥ अधुनैव कलिबलं दृश्यते लोकमोहनम् ॥ तथाऽऽदरो न धर्म्मस्य नानुरागोऽस्ति देहिनः ॥६॥ शालग्रामो मानपिण्डः सर्वे नास्तिकवृत्तयः॥ पितृभक्तिर्मातृभक्तिर्गता दूरतरं कलौ॥७॥ पाण्डित्यमानिनो मूढास्तथा धार्मिकमानिनः ॥ कुकर्म्मणि समासक्ताः सदाऽधर्मपरायणाः॥८॥ वरं द्विजेभ्यश्चाण्डालो यत्र धर्म्मः प्रदृश्यते ॥ ब्राह्मणा ब्राह्मण्यहीना लोभोपहतचेतसः ॥ ९ ॥ नराः शिश्नोदरपरा योन्याहारविधिच्युताः॥ इन्द्रियाणां वशीभूताः स्त्रीणां क्रीडामृगा इव ॥ १० ॥

जिसने अपनेको पण्डित कहकर अभिमान किया, और धार्मिक कहकर लोगोंको अपना परिचय दिया उनके समान कुकर्मी और कोई नहीं ॥८॥ चाहे धर्मको चांडालके समीप भी स्थान मिल जाय परंतु तो भी ब्राह्मणके घर उसका आदर नहीं हो सकता, इस समय ब्राह्मणोंमें केवल यज्ञोपवीत ही ब्राह्मणताका चिह्न है, इसके अतिरिक्त ब्राह्मणोंमें और किसी प्रकारके आचार व्यवहार नहीं हैं ॥ ९ ॥ कौवे कुत्तोंके समान संसारमें बहुधा शिश्नोदर ही सर्वस्व हुआ है इसी कारणसे आचार विचार और योनिविचारमें प्रायः नाममात्र ही देखा जाता है, इंद्रियोंके दास होकर केवल

॥ ९ ॥

एक स्त्रीके ही "क्रीड़ामृग हों" यही लोग अभिलाषा करते हैं॥१०॥देवताके दिये हुए द्रव्यको भी बेचकर अपने विलास मन्दिर बनानेमें त्रुटि नहीं करेंगे, बालक और बालिकायें भी चतुरोंके समान व्यवहार करना प्रारंभ करेंगे; गुरुके वचनमें कुछ भी श्रद्धा न रहेगी, बरन् उनकी निन्दा करेंगे, फिर जवानोंकी तो बात ही क्या है ॥११॥ धनसे प्राप्त हुई विद्याके होनेसे यथार्थज्ञानका व्यवहार बहुधा थक जायगा, मनुष्योंमें बहुधा विद्या पुस्तकोंमें देखी जायगी। उत्तम आचार्यका अभाव होनेसे लक्ष्मी अदृश्य होनेका उपाय करने लगेगी ॥ १२ ॥ यथार्थ ज्ञानका विचार न होनेसे सरस्वतीका भी वंश नहीं बढ़ेगा, धर्म अनाथ, सत्य निराश्रय॥१३॥ दया विधवा, शान्ति अवीरा न्याय स्थानसे भ्रष्ट और सरलता मानो उपवास

देववित्तेन कुर्वन्ति विलासं मन्दिरं सुखम्॥बालका वृद्धसदृशा युवका गुरुनिन्दकाः॥११॥विद्या चार्थकरी जाता ज्ञानं दूरतरं गतम् ॥ पुस्तकस्था भवेद्विद्या लक्ष्मीश्चादृश्यतां गता ॥१२॥ सरस्वती नाकगता धर्म्मोऽधर्मगतिं गतः ॥ सत्यं निराश्रयं धर्मश्चानाथ इव दृश्यते ॥१३॥ दया च विधवारूपा शान्तिः पतिसुतैर्विना ॥ स्थानभ्रष्टो भवेन्न्यायः सारल्यं मृत्युनिश्चयम्॥ ॥ १४ ॥ रोगशोकपरीतापबन्धनव्यसनानि च ॥ प्रवलानि भवन्त्यत्र नृणां शक्तिर्विनश्यति ॥ १५ ॥ वसुन्धरा पापपूर्णा प्रयातीव रसातलम् ॥ सर्वे पापरताश्चेष्टा दूरं सिद्धिकरी गता ॥ १६ ॥

करके मरनेके लिये सन्नद्ध हो रही है ॥ १४॥ दिन २ रोग, शोक, बन्धन और जुआ चोरी इत्यादि बढ़ेगी, मनुष्योंका बल बुद्धि शक्ति सामर्थ्य और परमायु इत्यादि कान्तिहीन और दुर्बल होकर निस्तेज हो जायँगे॥१५॥ पृथ्वी पापसे पूर्ण होकर समुद्रमें पवनसे कांपी हुई नौकाके समान थर २ कांपने लगेगी, शोकके ऊपर शोक, दुःखके ऊपर दुःख उत्पन्न होंगे, एक विपत् बीतने न पावेगी कि इतनेमें ही दूसरी और आकर; उप

स्थित हो जायगी, चेष्टाका फल सिद्धि इसीको सब जानेंगे। परन्तु पापसे मिली हुई चेष्टा कोई भी फलवती नहीं होती ॥ १६ ॥ इस कारण अज्ञानी और ईश्वरकी निन्दा करनेवाले तथा झूंठ बोलनेवालोंकी दिन २ अधिकता होती है और पुरुषार्थसे श्रद्धाको हटाकर केवल एक ईश्वरके ही ऊपर भरोसा रखते हैं और पुरुषार्थको ही नष्ट कर दिया॥१७॥आलस्य करनेसे दुःखका अभाव नहीं होता,परन्तु ज्ञानके अभाव और गिर जानेसे सुखके लोभसे कालधर्मके वशवर्ती होकर लोग प्रायः आलस्य और कर्महीन तथा जड़के समान होकर सैकड़ों दुःखोंसे बँधे हुए पड़े हैं, अलक्ष्मी जिनके घर२में नृत्य कर रही है,जहां अविद्या द्वार२में घूम रही है, अज्ञान देह२ में जिनकी क्रीडा करके मनुष्योंको भ्रम युक्त कर रहा है,अविवेक

अतो मूढा नास्तिकाश्च अदृष्टवादिनो जनाः ॥दिनेदिने गता वृद्धिं पौरुषं प्रलयं गतम्॥१७॥आलस्यं दुःखदं नृणां समायाति भयङ्करम्॥अज्ञानावृतमोहान्धा जना वृद्धिं गताः कलौ॥१८॥उपदेशे स्त्रियः शक्ताः श्यालका गुरुरूपिणः॥स्त्रीबान्धवा गृहे देवाः प्रभवो भृत्यदुःखदाः ॥१९॥ भृत्याश्च प्रभुसम्मानं न कुर्वन्ति कलौ सदा॥ वृक्षा यथाऽगुरुफलाः पुत्राश्च गुरुतर्ज्जकाः॥२०॥

हृदयमें हृदयके बंधुके समान आलिंगन करके सबको मोहकी डोरीसे बांध रहा है॥१८॥ हे सूत ! इस कलियुगमें स्त्री तो उपदेश देनेवाली होंगी, शाले आचार्य होंगे,स्त्रीके बंधु,श्वशुर ये घरके देवता होंगे,और उनके कुटुम्बी लोग ही केवल एकमात्र प्रीतिके पात्र होंगे,घर२में इस रीतिसे योनि सम्पर्कका प्रबल प्रचार होगा;अनर्थके अधिक प्रकट होनेसे स्वामी भलीभांतिसे कार्य कराके भी नौकरोंको तनख्वाह देनेमें सम्मत नहीं होगा॥१९॥ नौकर भी तनख्वाहको लेकर यथाविधानसे कार्य नहीं करेंगे, पिता तो पुत्रका शासन क्या करेगा बरन् पुत्र ही पिताको शिक्षा देनेके लिये तैयार

होगा, वृक्षके सम. न फलोंका अधिक भार होगा ॥२०॥ स्त्री पुरुषोंसे ही मनुष्योंमें गृहस्थी होती है। फलतः जिस घरमें स्त्री और पुरुषके मनमें मिलनरूप सद्भावोंका लेश नहीं है उस घरमें किसी प्रकारसे भी कल्याण नहीं होगा, परन्तु कलिके प्रकट होनेसे घर घर में स्त्री पुरुषोंमें सद्भाव नहीं होगा. स्वामीने तो यह जाना कि, स्त्री दासी है इससे भली प्रकार सेवा करावें यह विचार कर उस पर अपना शासन चलाने लगे और उस पर अत्याचार करने लगे, स्त्रीने भी समझा कि, मैं दासी हूं मेरा काम सेवा करनेका है सो वह भी किसी प्रकारसे स्वामीकी आज्ञानुसार चलनेकी अभिलाषिणी न हुई। स्त्रियोंका आदर उनकी शिक्षा और स्थिति यथार्थ नहीं है, अपनी स्त्रीकी प्रशंसा प्रायः सभी करते हैं परन्तु उसमें प्रशंसा करने योग्य क्या वस्तु है

गृहाः सुखविहीना हि स्त्रियश्च कलहप्रियाः॥स्त्रीणां समादरो नास्ति नैव शिक्षा तथा स्थितिः॥२१॥पुरुषाः कुकर्मनिरताःशास्त्राचारविवर्जिताः॥ कापट्यं प्रणये सत्ये नादरं हि ससंशयम्॥२२॥व्याघातो लोकयात्रायाः सर्वत्रैव विशृङ्खला॥न किञ्चिदपि पुण्याय न धर्माय यथायथम्॥२३॥वृत्तिर्लोकानां यशस आचार्या ज्ञानवर्जिताः॥अर्थो वा परमार्थो वा पुरुषार्थो न दृश्यते॥२४॥

उसको नहीं जानते इसी कारणसे घर२में प्रायः स्त्रियोंकी ही प्रधानता बढ़ती जाती है॥२१॥जिसको प्रेममें विश्वास नहीं है वह पुरुष कुकर्ममें रत शास्त्राचारसे वर्जित है, कपट प्रेम होनेसे आदर नहीं होता, जिसको प्रेममें विश्वास नहीं है उसका शत्रुके समान नाममें अन्तर है, हमारा यह विश्वास स्थिर रहनेवाला नहीं यह बालककी चपलताके समान है, किन्तु कलिके संसर्गसे सभी स्थानोंमें इस प्रकारसे कपटमें प्रेम स्थित होकर प्रकट होता है ॥ २२ ॥ इस कारण लोगोंमें केवल विश्वासघात और झगड़ा उत्पन्न होने लगा है, यथार्थ पुण्य वा धर्मके उपदेशसे प्रायः कोई कार्य भी अनुष्ठित नहीं होता॥२३॥ केवल यशके निमित्त वा नामके लिये ही किसी कार्यके करनेको मनुष्य प्रवृत्त हो जाते हैं जो आचार्य ज्ञानसे वर्जित हैं, जिनसे उपदेशके निमित्तपर पर-

मार्थ और पुरुषार्थ इन तीनोंकी उन्नति वा रक्षा न हो॥२४॥उसको किसी प्रकारसे भी उपदेश नहीं कहते,किंतु कलियुगके छू जानेसे ही उसके समान उपदेशमें अधिकता होती है,पिता पुत्रको किसी प्रकारसे उपदेश देनेमें त्रुटि न करेगा,हम लोगोंके इस प्रकारके अनुष्ठान करनेसे स्वर्गादि साधन पुण्य वा सुकृत इकट्ठे नहीं होंगे, उसको कभी अनुष्ठान नहीं कहते, परंतु कलियुगके प्रारंभमें ऐसे अनुष्ठानमें लोगोंकी मति देखी जायगी ॥२५॥ अथवा जो शास्त्रकी आलोचनासे धर्म,अर्थ,काम और मोक्ष ये चारों वर्ग इकट्ठे न हों उसको कभी शास्त्र नहीं कहेगा। परंतु कलिके आगमनसे उसके समान अप्राकृत असत्य शास्त्र ये सभी प्रधान हुए हैं ॥ २६॥ मनुष्य सुवर्णको फेंककर आंचलमें धूल बांधनेको तैयार हो रहे हैं, संमुख अमृत है उसको

उपदेशे च यस्मिस्तु नोपदेशः स वै भवेत्॥अस्वर्गफलकानि किमनुष्ठानानि कर्हिचित् ॥२५॥ यच्छास्त्रं हि भवेन्नैव चतुर्वर्गप्रदं भुवि ॥ न तच्छास्त्रं कलौ किन्तु तत्तच्छास्त्रत्वमागतम् ॥२६॥सुवर्णादि परित्यज्य पांशूनामादरः कृतः॥अमृतं हि परित्यज्य कृतं विषनिषेवणम् ॥२७॥ रत्नबुद्ध्या भस्म मुष्टचां करोति सञ्चयं जनः ॥ तीर्थस्थानं परित्यज्य कदर्य्यस्थानसेवनम्॥२८॥ ईशपूजां परित्यज्य मानवानामुपासनम् ॥ नास्ति यज्ञो न वा दानं न मानो देवतार्चनम् ॥ २९ ॥

तो देखते नहीं परंतु विष भक्षण करनेके निमित्त सन्नद्ध हुए हैं॥२७॥ रत्न जानकर भी भस्म राशिको इकट्ठा कर इस लोक और परलोक इन दोनों लोकोंसे वञ्चित रहनेके अभिलाषी हैं गंगा इत्यादि पवित्र तीर्थोंको त्यागकर छोटे छोटे तालाबोंमें स्नान करते हैं ॥ २८ ॥ शालग्रामकी मूर्तिका परित्याग कर भट्टे बँबई इत्यादिकी पूजा करना ही एकमात्र श्रेष्ठ मानते हैं,स्वर्गीय ईश्वरकी पूजाको जलांजलि देकर लौकिक ईश्वर(अर्थात् धनी और अपने स्वामीके प्रति)की पूजासे ही निःशंक चित्त हो पुरुषका भरोसा कर एकमात्र दैव ही पर निर्भर हो कार्यसिद्धिको ही जड जानकर

यत्न और चेष्टा करनेमें रत हो पहले मनोरथोंको त्यागकर सुवर्ण और रज इत्यादि धातुओंसे अर्थको जानकर उनके संग्रह करनेमें यत्न कर रहे हैं ये यज्ञ, मान, दान और देवताका पूजन नहीं मानते॥२९॥हे सूत ! सुखकी इच्छा यशकी इच्छा और धनकी इच्छा अधिक होगी, कलिके प्रारम्भमें ही ये सब दारुण उपद्रव प्रकट होंगे॥३०॥तब इनकी बढ़तीके समयको न जानकर ये सम्पूर्ण उपद्रव बहुत ही अधिक हो जायँगे. गुरु देवने कहा है कि कीलकी पूर्ण अवस्थामें ॥३१॥ मनुष्य इन्द्रियोंमें आसक्त हो पशुके समान होंगे, तेजस्वी तेजशून्य और मनुष्य लुप्तबुद्धि होंगे ॥३२॥ सूर्य पृथ्वीको धर्षण करेंगे, पृथ्वी प्राणहीन हो जायगी और पृथ्वीमें क्षय करनेवाली महामारी फैल जायगी अर्थात् इन्द्रिय और विषय इकट्ठे होकर केवल

सुखलिप्सा यशोलिप्सा धनलिप्सा पदे पदे॥कलेरस्य समारम्भ ईदृशश्चैद्विपर्य्ययः॥३०॥काले किं वा भविष्यन्ति हरिर्जानाति तत्त्वतः॥श्रुतं गुरुमुखात्सूत भविष्यन्ति कलाविह ॥३१॥ इन्द्रियादिसमासक्ता मानवाः पशुभिः समाः॥तेजस्विनस्तेजःशून्या नरो लुप्ताः प्रभञ्जनाः॥३२॥भक्ष्यन्ति लोकानादित्याः प्राणहीना वसुन्धरा ॥ महामारी धरण्यां हि भविष्यति क्षयङ्करी॥३३॥

प्रभुत्वके लिये ही प्रकट होंगे, मनुष्य और मनुष्यके लिये नहीं होंगे,उनके हाथ पैर और बुद्धि विचार इत्यादि ये नाम मात्र होंगे,वे उस समय पुतलीके समान सूखे हुए भावको धारण किये हुए होंगे,बहुत कालके पीछे सूर्यसे जले हुए काष्ठके समान एकबार ही सूखकर कड़ा हो जायगा, पशु और पक्षियोंके समान इतर स्वभाव और इतर वृत्ति हो जायगी, मंडेरके समान घृणित व्यवहार प्रकट होंगे, विकार और रोगग्रस्त होकर रोगीके समान ज्ञान चैतन्य शून्य होकर भूतसे ग्रसे हुएके समान मोह और आनंद थकित हो जायगा; इस प्रकारसे विधाताकी मनुष्यसृष्टि एकबार ही लोप हो जायगी. हे सूत ! यह देखो ! मनुष्योंके पाप करनेसे आकाशके चन्द्रमा और सूर्य मलिनता धारण कर सन्तापित हो रहे हैं,इस कारण सूर्यके

तेजमें पहलेके समान वृद्धि और चन्द्रमाकी शीतलता दूर हो गयी है, और पहलेके समान दोनोंमें कान्ति नहीं है, अग्नि पहलेके समान कुछ दिन पीछे प्रज्वलित नहीं होगा वह एकबार ही निर्वाण हो जायगा, और क्रोधमें भरकर भयंकर मूर्तिको धारण कर प्रज्वलित हो एकबार ही समस्त संसारमें प्रलय लीला विस्तार करेगा, तब ये हतभाग्य मनुष्य निरुपाय होकर अपने दोषोंसे पिता, पुत्र, स्त्री इन सभीका नाश करेंगे, क्या कहें ? मनुष्य जानबूझकर भी दिन २ इस प्रकारके पाप करते हैं, इससे इस संसारमें प्राणवायु और नहीं चलेगी; और क्रोधित हो प्रलयकालके समान वहन करेगी, इस प्रकारसे दोनों ओरसे मनुष्योंके प्राणोंके नाश होनेकी सम्भावना है. सारांश यह है कि, पवनके रोगी होनेसे श्वास और प्रश्वासके अभावमें जो जिस जगह होगा वह उसी स्थानपर मृतक हो जायगा; इस प्रकारसे घरमें, द्वारमें, वनमें, जंगलमें, इस स्थानमें, उस स्थानमें, मृतकोंके शरीरसे समस्त पृथ्वी ढकी हुई होगी; घोर मांसको भक्षण करके शृगाल और गिद्दड़ कुत्ते इत्यादि इनमें व्याधि और अजीर्ण उत्पन्न होगा, हाय ! देखो मनुष्यके पाप

दृष्ट्वा श्रुत्वा जायते च मनसि विषमा व्यथा ॥ मोक्षकर्त्री परप्रीतिः कुत्रापि तु न लक्ष्यते ॥ ३४ ॥

से ये पक्षी भी दुःखी होंगे। हे सूत ? मैं अपने दिव्य नेत्रोंसे देखता हूँ कि कलियुगके अन्तमें; ये सब भय, शोक, घृणा, लज्जा, अत्यन्त ही दुःखदायी व्यापार इकट्ठे होंगे, अधिक क्या कहूं कि घर २ में श्मशान भूमि हो जायगी, किसी रोगका किसी शोकका और किसी विपत्तिका अभाव नहीं होगा, अन्नके अधिक होनेसे भी मनुष्य दारुण क्षुधासे व्याकुल होकर आपसमें मनुष्योंका भक्षण करने लगेंगे, उपाय होते हुए भी निरुपाय होकर हाहाकार करते हुए इधर उधर दौड़ते फिरेंगे, कोई किसीकी रक्षा नहीं करेगा, सभी अपनी २ रक्षा करेंगे, और दया तथा मायाको छोड़कर राक्षसवृत्ति और पिशाचवृत्तिका अवलम्बन करेंगे. महामारी, महानिद्रा, महा भय, महाक्षुधा, महातन्द्रा, महाविपत् और महा मोहका प्रचार होकर कलियुगके अन्तमें इस प्रकारसे नाश हो जायगा ॥ ३३ ॥ परन्तु देखो कैसे दुःखका विषय है कि यह मोहान्ध मनुष्य इसको एकबार भी नहीं विचारता, इन्हीं सब

विचारोंको देख सुनकर मेरा मन मनुष्यके लिये अत्यंत ही चिन्तित और व्याकुल हो रहा है कारण कि, मोक्षकी करनेवाली प्रीति कहीं नहीं लब्ध होती ॥ ३४ ॥ नहीं कह सकता कि इनका किस प्रकारसे उद्धार होगा. हे तत्त्वज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ! इस कलियुगमें क्या उपाय है सो कहो ॥ ३५ ॥ हे सूत ! ऐसा सुना है कि, आत्मप्रेम और भगवद्भक्ति ही उद्धारका उपाय है परन्तु कौन इनको इसका उपदेश दे ? सब पण्डित धर्मके तत्त्वको गुप्त कहते हैं ॥ ३६ ॥ भगवत्की कृपासे आपने ही साक्षात् नारायणस्वरूप व्यासजीके समीपमें लोकोपकारक अवश्य जाननेके योग्य इतिहास, पुराण प्रयोजनीय

कथं वाऽस्य नृलोकस्य भविष्यति शुभं परम्॥ तदुपायं कलौ चास्मिन्ब्रूहि तत्त्वविदां वर ॥ ३५॥ सूत जानासि भद्रं ते त्वं हि द्वैपायनप्रियः॥ वदन्ति पण्डिताः सर्वे धर्मतत्त्वं सुगोपितम्॥ ३६॥ व्यासादवगतः सम्यक्त्वं हि धर्मविदां वरः ॥ त्वया खलु पुराणानि सेतिहासानि चानघ ॥ ३७॥ आख्यातान्यप्यधीतानि धर्मशास्त्राणि यान्युत ॥ यानि वेदविदां श्रेष्ठो भगवान्बादरायणः ॥ ३८॥ अन्ये च मुनयः सूत परावरविदो विदुः ॥ तेभ्यः सारं समुद्धृत्य गोपीकान्तकथाश्रयम् ॥ ब्रूहि भद्राय भूतानां येनात्मा सुप्रसीदति ॥ ३९ ॥ कथासु तत्कथा श्रेष्ठा यच्छ्रुत्वा न ह्यलं मतिः ॥ यच्छृण्वतां रसज्ञानां भक्तिर्मुक्तिः करस्थिता ॥ ४० ॥ इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे वैयासिके कथारम्भो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

विषय सीखे हैं ॥ ३७ ॥ और दूसरे आख्यान तथा धर्मशास्त्रोंका भी अध्ययन किये हैं, जिनको वेद जाननेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् व्यासदेव जानते हैं ॥ ३८ ॥ हे सूत ! और भी परावरज्ञाता मुनि जिसको जानते हैं उनके शास्त्रोंका सार लेकर कृष्णकी कथायुक्त कल्याणकारी चरित्र कहो जिससे आत्माका कल्याण हो वह कथा कहो जिस श्रेष्ठ कथासे आत्माका मंगल हो ॥ ३९ ॥ जिसके सुननेसे रसज्ञोंको भुक्ति मुक्ति दोनों ही प्राप्त हों अर्थात् शिक्षाका

यथार्थ फल भी बुममें दृष्टि आता है, इस कारण जिस उपायसे मनुष्यका उद्धार हो सके सो आप यथार्थ रीतिसे कहिये, मनुष्योंके दुःखसे दुःखी हुए ये सब ऋषि उस उपायके सुननेके लिये अत्यंत ही उत्कंठित हो रहे हैं, ये लोग इसको सुनकर फिरते हुए मनुष्योंकी सभामें सभी स्थानोंमें इसका प्रचार और उपदेश करेंगे ॥ ४० ॥ इति श्रीआदिपुराणे शिवपार्वतीसंवादे भाषाटीकायां कथारम्भो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ महर्षि शौनकजीके इस प्रकार कहनेपर महर्षि दालभ्यजी उनके वचनोंकी प्रशंसा कर कहनेकी इच्छा करते हुए बोले कि हे महाभाग सूत! ॥ १ ॥

निवृत्ते शौनके इत्थं दालभ्यो मुनिसत्तमः॥प्रतिपूज्य वचस्तस्य प्रवक्तुमुपचक्रमे॥१॥दालभ्य उवाच ॥ सूतसूत महाभाग परितुष्यति यया मनः॥उन्नतिं च भजेत्सम्यगात्मा बुद्धिस्तथैव च ॥२॥ सत्कथा चोच्यते सैव तया शोको विनश्यति॥औत्सुक्यं जायते तस्मादुक्तया तन्मे निवारय ॥३॥ गृत्सपाद उवाच ॥ दानेनोपासनेनैव शास्त्रस्याध्ययनेन च ॥ दिनं नराणां सफलं शेषं च द्विविधं भवेत् ॥४॥ गुरोः सम्यगध्ययनं तथा साधुजनाच्छ्रुतम् ॥ अतो भवन्मुखाच्छ्रोतुमौत्सुक्यं हृदि जायते ॥ ५ ॥

जिससे आत्मा, मन और बुद्धि ये तीनों ही तृप्त होकर उन्नतिको प्राप्त हों ॥२॥ उसीको सत्कथा कहते हैं, सत्कथाके कहने तथा सुननेसे आयुकी वृद्धि और शोकका नाश होता है, इस कारण इसके सुननेको हम सब लोग अत्यन्त ही अभिलाषी हुए हैं सो कहकर हमारी उत्कंठा निवारण करो ॥३॥ महातपस्वी गृत्सपादजी बोले कि, हे बुद्धिमन्! दान, अध्ययन और भगवान्‌की पूजा इन तीनोंसे ही मनुष्योंका समय सफल होता है, इन तीनोंके बीचमें अध्ययन प्रधान है और दो प्रकारका है ॥४॥ पहला तो सद्गुरुके निकटसे उत्तम शास्त्रका पढ़ना और दूसरा आपमें अपने सद्विषयोंको

देखना वा औरोंके समीपसे उसका सुनना इस कारण तुम्हारे मुखसे उसके सुननेकी हमें अत्यन्त ही इच्छा हुई है ॥ ५ ॥ परमतेजस्वी वात्स्यायनजी बोले कि हे वत्स ! जो लोग उत्तम उपदेशके देनेसे वा सत्कथाके प्रचारसे लोकोंका यथार्थ उपकार साधन करते हैं। तुम्हारे समान वे सभी महा पुरुष धन्य हैं और सत्कथाका सुनना धन्य है॥६॥ संचय जिस प्रकार गृहस्थीका भूषण है, पतिमें भक्ति करनी जिस प्रकार स्त्रियोंका भूषण है, नम्रता और विनय जैसे युवा अवस्थाका भूषण है, विषयोंको त्यागना जिस प्रकार वृद्धताका भूषण है और विद्या जैसे मनुष्योंका भूषण है, सत्कथाका सुनना भी

वात्स्यायन उवाच ॥ उपदेशप्रदानेन उपकुर्व्वन्ति ये जनाः॥भवादृशाः साधवस्ते सत्कथाश्रवणं वरम् ॥६॥पतिभक्तिरबलानां गृहस्य भूषणं धनम्॥विनयो हि यौवनस्य त्यागो वृद्धस्य भूषणम् ॥ विद्या च नरलोकस्य तथा साधुवचः परम्॥७॥ शततपा उवाच ॥ सत्कथा पुष्पमालेव नृणां मानसहारिणी॥सत्प्रवृत्तिसमा सापि आत्मनः शुभदायिनी॥८॥स्थूलशिरा उवाच ॥यत्र यत्र हरिकथा सा सा तीर्थसमा मता ॥ साधुवादरतानां हि हरिर्देहं समाश्रयेत ॥ ९ ॥

उसी प्रकारसे श्रवणेन्द्रियका भूषण है ॥ ७ ॥ महातपस्वी शततपाजी बोले कि हे सुत ! संसारमें जितने प्रकारके सुख हैं उनके बीचमें उत्तम कथाका सुनना ही प्रधान है, उत्तम कथा मालतीमालाके समान मनको हरण करती है, उसी प्रकारसे दया धर्म सत्य इत्यादि उत्तम प्रवृत्तियें उत्तेजित होकर आत्माके दोनों लोकोंको उन्नतिकी देनेवाली हैं, इस निमित्त हमलोग उसके सुननेके लिये अत्यन्त ही उत्कंठित हुए हैं ॥ ८ ॥ परमज्ञानवान् महर्षि स्थूलशिराजी बोले कि, हे सुत ! जिस स्थानपर उत्तम कथाका विचार हो वह स्थान सबमें प्रधान और पवित्र तीर्थस्वरूप है, और जो मनुष्य सत् कथाका विचार करते हैं भगवान् उनके शरीरमें सर्वदा विराजमान रहते हैं ॥ ९ ॥

तुम परमभाग्यवान् और हरिलीलाके प्रचार करनेवाले अत्यन्त उत्तम कीर्तिसे युक्त हो इसी कारणसे सत्कथास्वरूप अमूल्य रत्नसे भूषित हो रहे हो। अतः आपके मुखसे निकले हुए कथामृतका पान करूंगा ॥ १० ॥ तपोधन गौतमजी बोले कि, अभिमान और अहंकार ये दोनों ही हृदयमें घोर अंधकारके स्वरूप हैं, इस अहंकारके निवारण न होनेसे परमार्थरूप परमपदका दर्शन नहीं होता, वेद आदिमें जिसको 'तमःपार' शब्दसे उल्लेख किया है, ऊपर कहे हुए अंधकारको दूर करनेका यह यथार्थ अर्थ है, भगवान् आदिपुरुषने इस तमःपारकी स्थिति करके साधुओंके हृदयमें आनंदका संचार किया है ॥ ११ ॥ सत्कथाके कहने और सुननेसे नारायणकी कृपासे ऊपर

त्वं महाभाग्यसम्पन्नो हरिलीलाप्रचारकः॥त्वन्मुखाम्भोजगलितं पिबामि च कथामृतम्॥१०॥गौतम उवाच॥अहंकारोऽभिमानश्च विमोहयति मानसम्॥परमार्थो न दृश्येत तन्निराकरणादृते॥११॥सत्कथालोचनेनैव श्रीहरेरनुकम्पया॥विनाशो मोहतमसो भगवत्प्रीतिशर्म्मदः॥१२॥जाबालिरुवाच॥मानवश्चेत्सत्कथायां बाल्यावधिसमुत्सुकः॥सफलं जीवनं तस्य अन्ते च सुखभाजनम्॥१३॥

कहे हुए अंधकारका नाश और तमःपारका दर्शन हो जाता है,और भगवत्में प्रीति होती है॥१२॥ज्ञान विज्ञानके जाननेवाले जाबालिजी बोले कि यदि मनुष्य जो बाल्यावस्थासे ही उत्तम कथाको सुने तो उसकी समस्त अवस्था विना उद्वेग किये ही सुखके साथ व्यतीत हो सकती है,अर्थात् बालकपनमें प्रथम शिक्षाके देनेवाले माता पिता हैं उनको यह अवश्य ही कर्तव्य है जो अपने अपने बालकोंको ऐसी उत्तम कथाका उपदेश करें कारण कि जिनकी बाल्यावस्था ऐसी हुई है, तो उनकी और शेष अवस्था भी अच्छी होगी।सारांश यह है कि,उत्तम कथा मनकी अनेक प्रकारकी व्याधियोंको दूर करनेवाली एक दिव्य ओषधी है, मनमें जितने प्रकारके रोग हैं कुसंगति वा अज्ञान ही उनके बीचमें प्रधान है,नियमके साथ सत्कथाको सुनना और उसके विचा

रनेसे मनमें किसी प्रकारका कुसंस्कार स्थान नहीं पा सकता ॥ १३ ॥ उत्तम कथाके श्रवण [illegible]
दैविक, भौतिक इन तीनों प्रकारके तापोंको शान्त कर देती है और सांसारिक व्याधिरूप ज्वरसे संतप्त हुए [illegible] ॥ [illegible]
जाननेवाले महर्षि जातूकर्णिजी बोले कि हे सूत ! जिसके रसना है [illegible] मनुष्य कथा कह सकता है, इसमें कुछ छोटे बड़ेका विचार नहीं है इस कारण उत्तम
कथाके प्रचार वा उपदेशसे जो मनुष्य संसारका उपकार करनेको समर्थ हैं वे ही यथार्थमें रसनावाले हैं, उन्हींकी रसना यथार्थ रसना है, और जिसके
सुननेसे कुछ भी शिक्षा न हो उसको कथाका कहना और न कहना बराबर है ॥ १५ ॥ महामुनि उष्मपजी बोले कि हे महाभाग! जिससे यथार्थ ज्ञान

त्रितापं नाशयत्येव हरिलीलामृतं वचः ॥ संसारज्वरसन्तप्तसर्वव्याधिविनाशनम् ॥ १४ ॥ जातूकर्णिरुवाच ॥ तस्य जिह्वा भवेत्साध्वी
सत्कथामृतनिर्वृता ॥ विषयास्वादसंक्लिष्टा केवलाऽरसना परा ॥ १५ ॥ उष्मप उवाच ॥ या च ज्ञानं न ददते सा न विद्या वृथा हि सा ॥ विषयेषु
च सक्तानि विकलानीन्द्रियाणि वै ॥ १६ ॥ ते नरा यन्त्रसदृशाः सदालापविवर्जिताः ॥ हरिभक्तिविहीना ये केवलं व्यसनान्विताः १७ ॥

प्राप्त न हो वह इस प्रकारकी विद्या नहीं है, जिससे त्रिलोकी पराजित न हो वह चतुर नहीं है (जो यह विचार नहीं करते कि कल क्या खाया जायगा वे
लोग यथार्थ गृहस्थी नहीं हैं) जिसका अनुरागमें दशांश भी चिह्न पाया जाता है, जिसको कुछ भी अपने यशकी इच्छा है उसकी कीर्ति यथार्थ
कीर्ति नहीं है, जो अपने और दूसरेमें भेद जानते हैं वे समदर्शी नहीं हैं, इसी प्रकार जो कथा भगवान्‌से सम्बन्ध नहीं रखती और जिससे भक्तिका
उदय भी नहीं होता वह कथा ही क्या है ॥ १६ ॥ जो मनुष्य संसारमें लिप्त रहकर भगवान्‌की भक्ति नहीं करते और केवल विषयभोगमें ही
आसक्त रहते हैं उनका मनुष्यजन्म व्यर्थ है, वे मनुष्य होकर भी पशुके समान हैं, उन लोगोंका शरीर यन्त्रके समान है ॥ १७ ॥

जिन्होंने अपने २ धर्मको त्यागकर दूसरोंके धर्मका आश्रय लिया है उन लोगोंके समस्त परिश्रम ही वृथा हैं, वे केवल क्लेशमात्रको ही भोगते हैं॥१८॥ इस कारण हे महाभाग सूत! योगेश्वर भगवान्में जन्म कर्मके नाश करनेवाली भक्तिका उदय मनुष्योंके हृदयमें किस प्रकारसे हो सकता है सो आप कृपा कर कहिये ॥ १९ ॥ हरिभक्तिपरायण सूतजी ऋषियोंके इस प्रकारके वचन सुनकर उनके वचनोंको आदर देनेके लिये उद्यत हुए॥२०॥ और बोले कि हे महर्षिवृन्द! आपलोगोंने संसारको मंगलका देनेवाला भगवान्के विषयमें जो प्रश्न हमसे किया है वह संसारको उद्धार करनेका कारण

स्वस्वधर्मान्परित्यज्य परधर्मे रताश्च ये ॥ ते सर्वे विफलायासाः केवलं क्लेशभागिनः॥१८॥अतः सूत महाभाग ब्रूहि योगेश्वरे हरौ॥कथं भक्तिर्भवेन्नॄणां जन्मकर्म्मविनाशिनी॥१९॥इत्थं त्वृषिवचः श्रुत्वा सूतो हरिपरायणः॥प्रतिपूज्य वचस्तेषां प्रवक्तुमुपचक्रमे॥२०॥ऋषयः साधु पृष्टोऽहं भवद्भिर्लोकमङ्गलम् ॥ यत्कृतः कृष्णसम्प्रश्नो भवनिस्तारणः परः ॥२१॥ मधुरमधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां सकलनिगमवल्लीसत्फलं चित्स्वरूपम्॥सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा मुनिवर नरमात्रं तारयेत्कृष्णनाम ॥२२॥ नमामि नारायणवेदविग्रहं सत्यं चिदानन्दमयं त्रिमूर्तिकम्॥भक्तान्सदा मोचयितुं यदागमो नमामि तं देवमनन्तमाद्यम्॥२३॥

है ॥ २१ ॥ कृष्णनाम संसारमें समस्त मधुर वस्तुओं [illegible]
वृक्षको उत्तम फलोंका देनेवाला जानते हैं हे मुनिश्रेष्ठ [illegible]
सागरसे पार हो जाते हैं॥२२॥ब्रह्मा,विष्णु,शिव इन [illegible]

समस्त संसारके अद्वितीय कारण, अनादि, अनन्त, [illegible]
जिन्होंने व्यासरूप धारण कर मुक्तिका प्रधानसाधन भक्तिशास्त्र सम्पूर्ण संसारमें प्रचार किया है, मैं उन्हीं परमेश्वरको प्रणाम करता हूं ॥२४॥
श्रीकृष्णके प्रेममें मग्न और अपने गुणोंसे करुणाके वश होकर तत्त्वज्ञानका दीपकस्वरूप अध्यात्मशास्त्र पुराणके प्रचार करनेवाले अनन्त
पापोंके नाशक व्यासजीके पुत्र शुकदेवजीको मैं प्रणाम करता हूं ॥२५॥ हे भगवन् वेदशास्त्र पहले भगवान्की कृपासे ब्रह्माजीके हृदयमें उत्पन्न

भगवन्तमहं वन्दे व्यासरूपं सनातनम्॥यत्कृपालेशतो लोकः शास्त्रज्ञानयुतो भवेत॥२४॥स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तान्यभावो
ऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्णसारस्तदीयम्॥व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनु नतोऽस्मि॥२५॥ समा
हितात्मनो ब्रह्मन् ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥हृद्याकाशादभूद्वेदो प्रणवात्मा सनातनः॥२६॥सेतिहासपुराणो हि भगवच्छक्तिचोदनात्॥काले
तस्याग्रहं दृष्ट्वा व्यासभूतः परः प्रभुः॥२७॥द्वापरे अवतीर्णोऽभूत्तद्विभागं चकार ह॥सर्वशास्त्रसारभूतो ह्ययमादिपुराणकः॥२८॥

हुआ, और वेदके नादबिंदुको लगाकर ओंकाररूप हृदयकी कन्दरामें समुदित और मुखादिके मार्गमें कण्ठ तालु आदिमें वर्णोंको उच्चारण कर अक्षरके
साथ सृष्टि की॥२६॥ फिर ये लिखे हुए शास्त्र प्रकट हुए। इतिहास और पुराण सभी वेदके भीतर हैं, इस कारण ये स्वतन्त्र ग्रन्थ होनेपर भी वेदसे
पृथक् गिने जाते हैं ॥२७॥यह आदिपुराण और सभी पुराणोंका सार है.इसके प्रकाश करने और विभाग करनेवाले भगवान् बादरायणजी हैं॥२८॥

और वक्ता सनत्कुमार हैं, पहले भगवान् सनत्कुमारजीने देवर्षि नारदजीसे भगवान्‌की वृन्दावनलीलाके विषयमें जो कुछ कहा था वही मैं इस समय तुमसे कहता हूं॥२९॥नारद व्यास संवाद यह आदिपुराण नामसे प्रकट है, यह ग्रन्थ सब अंशोंसे बना हुआ अति उत्तम सब संसारको आनन्दका देनेवाला और वेदका रहस्यभूत है ॥ ३० ॥ इति श्रीआदिपुराणे सूतशौनकसंवादे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ जो समस्त संसारके आश्रय देनेवाले साक्षीस्वरूप हैं और जो संसारके बन्धनोंको दूर कर शरणमें आये हुएको सुखके देनेवाले हैं उन यशोदानन्दन श्रीकृष्ण

श्रुतो मया गुरुमुखात्पूर्वकल्पकथामयः॥अधुना श्रावयिष्यामि शृणुष्वावहितस्ततः॥२९॥इदं वेद रहस्यं वै सर्वलोकशुभप्रदम्॥ व्यासदेवेन रचितं हरिलीलाकथामयम् ॥ ३० ॥ इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे वैयासिके पुराणोत्पत्तिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ जयति यशोदासूनुर्यो हि समस्ताश्रयः साक्षी ॥ भवभयनिर्भयनिर्वृतौ शरणागतानां शर्मदश्चेति ॥ १ ॥ व्यास उवाच । सनात्कुमारोक्तमिदं पुराणं यतो न किञ्चित्परमस्ति पूर्वम् ॥ मया श्रुतं नारदतो बदर्य्यां श्रद्धालुना चादिपुराणसंज्ञम् ॥२॥ एकदा नारदो लोकान्पर्य्यटंश्च यदृच्छया ॥ सरस्वतीतटस्थं तु मदीयाश्रममागमत् ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा तमागतं दूरान्मच्छिष्या दीर्घसत्रिणः ॥ प्रत्युत्थायासनार्घ्यैस्तं पूजयामासुरादरात् ॥ ४ ॥

की जय हो॥१॥श्रीव्यासदेवजी बोले कि सनत्कुमारके कहे हुए सब पुराणोंमें यह आदिपुराण ही श्रेष्ठ है, मैंने बदरिकाश्रममें श्रद्धाके साथ नारदजीके मुखसे यह आदिपुराण सुना था॥२॥एक समय देवर्षि नारदजी इच्छानुसार घूमते हुए सरस्वती नदीके समीप हमारे आश्रममें आये ॥ ३ ॥ दीर्घ यज्ञके करनेवाले हमारे सब शिष्योंने ऋषिको दूरसे आया हुआ देखकर आदर मानके सहित आसन दे अर्घ्य इत्यादिसे भलीप्रकार उनकी पूजा की॥४॥

फिर हमारी आज्ञानुसार उनकी भली भांतिसे पूजा होनेपर उनसे ये वचन बोले कि हे देवर्षे ! आज आपके आगमनसे हमारे हृदयके अन्धकार दूर हो गये॥५॥ प्राणियोंको अत्यन्त दुर्लभ आज आपके दर्शन होनेसे हमारा जन्म सफल और सारी तपस्याका फल पूर्ण हुआ ॥६॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! भगवान्‌की जिस मायासे यह संसार मोहित है, उसका जिस प्रकारसे नाश हो सकता है ऐसा कोई उपाय आप कहिये ॥ ७ ॥ हे मुनिपुंगव ! जिस मायासे असंख्यों योगी और मुनि वञ्चित रहकर संसारमें बँधे हुए हैं ॥ ८ ॥ कोई अज्ञ जन मायाबन्धनसे निबद्ध हो देह गेहमें आसक्ति

समर्च्चयित्वा ते प्रोचुर्मुने भाग्योदयो महान् ॥ तव सन्दर्शनं लब्धं नष्टं नो हृद्गतं तमः ॥५॥ अद्य नो जन्मसाफल्यं तपसश्च परं फलम् ॥ जातं यद्दर्शनं तेऽद्य दुर्लभं प्राणिनामिह ॥६॥ विष्णोर्माया भगवती यथा संमोह्यते जगत् ॥ यथा तस्यास्तिरस्कारो भवेद्वद महामुने॥७॥अनया नियतं बद्धा मुनयः कोटिशो मुने ॥ योगिनो मोहिताश्चान्ये वञ्चिताः सन्ति संसृतौ ॥८॥ आसक्ता देहगेहादौ बन्धमायान्ति चेतसः ॥ केचिद्योगरता मूढा दयादानपरायणाः ॥९॥ अज्ञाः कर्मपराः केचित्संसारविनिवेषकाः ॥ न विदन्ति निजं श्रेयो भजनं विशदं हरेः ॥ कथं संसारसन्तारस्तेषां ब्रूहि तपोधन ॥१०॥ नारद उवाच ॥ विष्णोर्मायास्वरूपं तु दुर्ज्ञेयं ब्रह्मवादिभिः ॥ तत्त्वतः कथितुं को हि क्षमः स्यान्मुनिसत्तमाः ॥ ११ ॥

पूर्वक योगनिरत हो दानपरायण रहते हैं ॥ ९ ॥ जो सम्पूर्ण मूढबुद्धिवाले योगी और अज्ञानी मनुष्य इस पवित्र भगवत्‌के भजनकी महिमाको नहीं जानकर कर्मबन्धनसे संसारमें बँधे हुए हैं. हे तपोधन ! उन लोगोंके संसारसे उद्धार होनेका उपाय आप कहिये ॥ १० ॥ नारदजी बोले कि, वैष्णवी मायाका स्वरूप तो ब्रह्मज्ञानियोंके जाननेमें अत्यन्त कठिनतासे आता है, इस कारण हे मुनिसत्तम ! कोई मनुष्य

भी उसके स्वरूपको नहीं जान सकता ॥ ११ ॥ भगवान् अपनी मायासे जीवोंको मोहित कर लेते हैं इस कारण उनके अवतारके चरित्रोंको कौन मनुष्य कहनेको समर्थ है ॥ १२ ॥ हे मुनियो ! तो भी मैंने उस मायाके नाश करनेका उपाय जो कुछ सनत्कुमारजीसे सुना है वही इस समय तुम्हारे समीप कहता हूं तुम श्रवण करो ॥१३॥ भगवान्‌के सूक्ष्मस्वरूपको जाननेके लिये कोई समर्थ नहीं है और फिर ऐसी अवस्थामें भक्ति भी किस प्रकार हो सकती है ? जो मनुष्य श्रद्धाके साथ भगवान्‌के अवतारकी पवित्र कथाको सुनता है अथवा स्मरणकर उच्चारण करता

विमोहाय स्वरूपाणि भूतानां निजमायया ॥ चरितान्यवताराणामपि को वक्तुमर्हति ॥१२॥ तथापि किञ्चिद्वक्ष्यामि मुनयः श्रोतुमर्हथ ॥ संसारोत्तारणायैव कुमाराच्च यथा श्रुतम् ॥१३॥ तद्ब्रह्म सूक्ष्मं को वेद कथं भक्तिर्भवेत्तथा ॥ शृण्वन्स्मरन्गृण न्विष्णोरवतारकथाः शुभाः ॥१४॥ पुनात्यात्मानमन्यं च किं पुनर्योऽर्चयेद्धरिम् ॥ अन्तरायो भवत्येव लोके विष्णुपदाप्तये ॥ १५ ॥ देवतान्तरसेवा च बन्धूनां च समागमः ॥ धनाकाङ्क्षाभिमानं च योषित्स्वासक्तिरेव च ॥१६॥ न जानन्ति नरा मूढा किं देवैः सेवितं सुखम् ॥ श्वलाङ्गूलं समाश्रित्य को हि तीर्णोऽम्बुधेर्जलम् ॥ १७ ॥

है॥१४॥वह अपनेको और दूसरोंको पवित्र कर देता है,और जो भगवान्‌की यथारीतिसे पूजा करते हैं उनकी तो बात ही क्या है, वे साक्षात् विष्णु पदको प्राप्त होते हैं॥१५॥दूसरे देवताकी सेवा करना, बंधुओंका समागम होना,धन विषयभोगकी अभिलाषा और अभिमान करना, सेवाकरना, अहंकार और बुरी संगति ही मनुष्योंके बंधनका स्वरूप है ॥ १६ ॥ और देवताओंकी सेवासे जो सुख होता है उसको यह अज्ञानी जीव नहीं

जानता है, कुत्तेकी पूंछपर चढ़नेसे समुद्र कहीं पार हो सकता है? ॥ १७ ॥ पापकर्म करनेवालोंको अन्य देवताकी सेवा करनेसे क्या लाभ हो सकता है, कामी और विष्णुभक्तिसे विमुख यह अधम जीव निश्चय ही नरकको जाते हैं ॥ १८ ॥ सुखकी इच्छासे अपने पतिका त्यागन करनेवाली स्त्रियोंके समान विष्णुभगवान्की निन्दा करनेवाले लोग ही अधमगतिको जाते हैं ॥ १९ ॥ कर्मोंसे ही देवताओंका हितसाधन नहीं होता; वह किंचित् अपराधपर ही मनुष्योंकी देह और धनका नाश कर देते हैं ॥ २० ॥ इस संसारमें और देवताओंकी सेवा करके किसी प्रकारसे भी सुखको नहीं प्राप्त हो सकता है,

यऽधमाः पापकर्म्माणो देवतान्तरसेवकाः ॥ कामिनो विष्णुविमुखास्ते यान्ति नरके ध्रुवम् ॥ १८ ॥ पतिं त्यक्त्वा यथा नार्य्यो जारं सौख्यागमेच्छया ॥ अच्युतं निन्दयँल्लोके जीवो यात्यधमां गतिम् ॥ १९ ॥ देवाश्च कर्मसचिवाः केवलं स्वहिते रताः ॥ अपराधकृतेऽल्पेऽपि देहद्रविणनाशकाः ॥ २० ॥ यैर्यैः संसेविता देवा नैव तेषां सुखं ध्रुवम् ॥ सदैव सूर्य्यं संसेव्य पंगुरेवारुणोऽभवत् ॥ २१ ॥ शिवसेवां समासाद्य क्षयं प्राप वृकोदरः ॥ बाणो बाहुसहस्रस्य नाशं कृष्णादवाप ह ॥ २२ ॥ विश्वरूपः सुरपतिं सन्तोष्य निधनं गतः ॥ आराधनविरोधाभ्यां दैवैर्नाशो हि दृश्यते ॥ २३ ॥ विपरीतमिदं विष्णोरुभाभ्यां मुक्तिभाग्भवेत् ॥ आराध्य मुनयो गोप्यः कुब्जा चैद्यो द्विषन्हरिम् ॥ २४ ॥

इसके प्रमाण अनेक शास्त्रोंमें पाये जाते हैं, सर्वदा सूर्यकी सेवा करनेसे भी सूर्यकी कांति नष्ट नहीं होती ॥ २१ ॥ वृकोदरजी शिवजीकी सेवा करनेसे नाशको प्राप्त हुए थे, और कृष्णके द्वारा बाणासुरकी हजार भुजायें नष्ट हो गयीं थीं ॥ २२ ॥ विश्वरूप सुरपतिकी सेवा करनेसे मृत्युको प्राप्त हुए थे, इस प्रकारसे पूजामें विरोध देवताओंका किया हुआ मनुष्योंके लिये अमंगलका देनेवाला दृष्टि आता है ॥ २३ ॥ परन्तु विष्णुसे द्वेष और आराधना दोनोंसे उत्तम

गति प्राप्त होती है. मुनियोंने, गोपियोंने, कुब्जा आदि सभीने आराधनसे उत्तमगति प्राप्त की है और शिशुपालने बैर भावसे ही मुक्ति प्राप्त की हरि ही केवल संसारसे उद्धार करनेके स्वरूप हैं ॥ २४ ॥ हनूमान्, जाम्बवान्, भीष्म इत्यादि और भी जिन २ भक्तोंने भगवान्‌की आराधना की वे श्रीकृष्णको प्रिय हुए और जो कोई भी भगवान्‌की शरणागत हुआ उन्होंने उसीका उद्धार किया इसमें कुछ भी संदेह नहीं॥ २५॥ हे मुनीश्वरो ! इसके उपरान्त स्त्रियोंके संसर्गके दोष कहता हूं, बुरी संगति श्रुति स्मृति पुराणादि सब शास्त्रोंमें निन्दनीय है ॥ २६॥ अग्निके साथके समान बुरी संगति भी विनाशकारक है, जीवोंके मोहित

हनूमाञ्जाम्बवान्भीष्मोऽन्येऽपि तत्प्रियतां गताः ॥ यस्य तस्य समुद्धारः संसृतेः स्यान्न संशयः ॥ २५ ॥ अथ स्त्रीसङ्गमे दोषान्कथयामि मुनीश्वराः ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणेषु सङ्गः स्त्रीणां निवारितः ॥२६॥ यत्सङ्गात्संक्षयं याति पुमानग्निगतो यथा रचिता देवमायेयं विमोहाय नृणामिह ॥ २७ ॥ स्त्रीसङ्गाज्जायते पुंसां सुतागारादिसङ्गमः ॥ यथा बीजाङ्कुराद्वृक्षो जायते फलपत्रवान् ॥ २८ ॥ एकया योषिता लोका अन्धे तमसि पातिताः ॥ यथा गजो मदोन्मत्तः करिण्या पङ्कपातितः ॥२९॥ अहो जनानां मोहोऽयं स्वविनाशं न पश्यताम् ॥ सङ्गो भवति योषित्सु पतङ्गानामिवाग्निषु ॥ ३० ॥ अहो आभिः किं न कृतमनिष्टं पुरुषेष्विह ॥ याभिर्वशं समानीताः खरा इव नराधमाः ॥ ३१ ॥

होनेके अर्थ ही स्त्रियोंकी सृष्टि हुई है ॥ २७॥ स्त्रीकी संगतिसे ही पुरुषके द्वारा कन्या पुत्रादि उत्पन्न होते हैं जैसे बीजके बोते ही वृक्षके अंकुरद्वारा फल पत्तों की उत्पत्ति है ॥२८॥ स्त्रियोंकी संगति करनेवाले मनुष्य मदोन्मत्त हाथी जिस प्रकारसे अपने किये हुए कर्मोंसे कीचड़में गिर जाता है उसी प्रकारसे यह घोर अंधतामिस्र नरकमें जाते हैं॥ २९॥ हा ! बड़े आश्चर्यकी बात है कि अज्ञानी मनुष्य अपने विनाशको न देखकर इस प्रकार स्त्रियोंका संसर्ग करते हैं, जैसे पतंग अग्निकी संगतिसे अपना नाश कर लेता है ॥ ३० ॥ भला इस पृथिवीपर स्त्रियोंने पुरुषोंके साथ क्या २अनिष्ट नहीं किया यह

दुराचारिणी स्त्रियें पुरुषोंको अपने स्वाधीन बनाकर गर्दभके तुल्य नीच बना देती हैं ॥ ३१ ॥ मनुष्य स्त्रियोंकी संगतिका करके अंधकारसे ढक जता है, उसी प्रकार धनादिके विषयमें इच्छा करनेवाले मनुष्य मृगोंके समान सत्य, धर्म, दया, मैत्री इन सबका त्याग कर बारम्बार संसारके बंधनमें बँध जाते हैं ॥ ३२ ॥ इस कारण इस मनुष्यलोकमें सत्संग प्राप्त होनेके पीछे दुःसंगको छोड़कर निष्कामभावसे हरिके भजन करनेवाले भक्त ही पुरुषार्थको प्राप्त करते हैं ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य सर्वदा अनुवर्तनी मायासे भगवान्‌के चरणकमलकी गंधको ग्रहण करते हैं वे ही उन परमपुरुष नारायणको

एवं धनादिविषयेष्वासक्ताश्च जना इह॥सत्यं धर्मं दयां मैत्रीं त्यक्त्वा यान्ति भवार्णवे॥३२॥अतो नृलोके सत्सङ्गान्त्यक्तदुःसङ्ग आत्मवान् ॥ भक्त्या हरिं भजन्नित्यं निष्कामः श्रेय आप्नुयात् ॥ ३३ ॥ स वेद धातुः पदवीं परस्य दुरन्तवीर्य्यस्य रथाङ्गपाणेः ॥ यो मायया सन्ततयाऽनुवृत्त्या भजेत तत्पादसरोजगन्धम्॥३४॥अथेह धन्या भगवन्त इत्थं यद्वासुदेवेऽखिललोकनाथे ॥ कुर्वन्ति सर्वात्मकमात्मभावं न यत्र भूयः परिवर्त्त उग्रः॥३५॥इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे वैयासिके सूतशौनकसंवादे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ एकदा यादवः कश्चिद्वसुदेवो महामनाः ॥ पाणिं गृहीत्वा देवक्याः प्रयाणे रथमारुहत् ॥ १ ॥

प्राप्त हो सकते हैं ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य अपनी सेवासे अनुवर्तनी मायाके साथ भगवान्‌की सेवा करते हैं वे ही विश्वके पति अनंतवीर्य चक्रपाणि भगवान्‌के चरित्रोंके जाननेमें समर्थ हो सकते हैं और इस संसारमें वे ही धन्य हैं उनको ही अखिललोकनाथ भगवान् सब प्रकारसे अपनेको समर्पण करते हैं, इस प्रकारसे आत्मसमर्पण ही संसारमें उद्धार होनेका उपाय है ॥ ३५ ॥ इति श्रीआदिपुराणे नारदशौनकसंवादे भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५॥ विश्वविख्यात महामनस्वी यदुवंशी वसुदेवजी देवकीका पाणिग्रहण कर अपने घर आनेके निमित्त रथके ऊपर आरूढ हुए ॥ १ ॥

उसी समय उनके साथ२उग्रसेनका पुत्र कंस भी जा रहा था और अनेक रथ उसके साथ और भी जा रहे थे॥२॥तब उसी अवसरमें "रे अज्ञानी कंस! तू जिसको यत्नके साथ लिये जा रहा है उसके आठवें गर्भकी संतान तेरा संहार करेगा" इस प्रकारसे आकाशवाणी हुई ॥ ३ ॥ यह सुनकर दुष्ट कंस उसी समय देवकीको मारनेके लिये उद्यत हुआ परन्तु वसुदेवजीके कहनेसे उनको न मारा और घर लाकर ॥ ४ ॥ वसुदेव देवकी और लघु-भ्राताके साथ उग्रसेनको कारागारमें बाँधकर वह कंस स्वयं दुष्टमन्त्रियोंके सहित समस्त भोगोंको भोगने लगा॥५॥और क्रमर से देवकीके छः पुत्रों-

उग्रसेनसुतः कंसो भोजानां कुलपांसनः ॥ प्रत्युज्जगाम भगिनीं रौक्मे रथशतैर्वृतः ॥ २ ॥ तदाऽभूद्दैववाणीयं सर्वेषां शृण्वतां पथि ॥ अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुध॥३॥तच्छ्रुत्वा स खलः कंसो देवकीं हन्तुमुद्यतः ॥ वसुदेवस्य वाक्येन वारितो गृहमागमत् ॥ ४ ॥ ततस्तौ निगडैर्बद्ध्वा चोग्रसेनं सहानुजम् ॥ बुभुजे विषयान्सर्वान्स्वयं दुर्मन्त्रिभिः सह ॥ ५ ॥ अवधीच्च स्वसुः पुत्रान्कीर्तिमन्तादिकान्हि षट् ॥संकर्षणं सप्तमे तु ईशान्या योगमायया ॥६॥ निहन्तुं नाशकत्पापो रोहिण्यां सन्निवेशितम् ॥ अष्टमे भगवान्विष्णुः सच्चिदानन्दविग्रहः ॥ ७ ॥ मनःस्थो वसुदेवस्य देवकीगर्भ आविशत् ॥ तज्जन्मकाले देवाश्च ब्रह्मेशानपुरःसराः ॥ ८ ॥ भूभारहरणार्थं वै देववृन्दैश्च याचितः ॥ गोकुले प्रकटार्थं च सत्त्वमूर्त्तेस्तु मन्त्रवत् ॥ ९ ॥

को तो मारडाला, जब सातवें गर्भमें भगवान्‌के दूसरे अवतार बलरामजी आये तो योगमाया उनको भगवान्‌की आज्ञासे नन्दजीके यहाँ जा कर वसुदेवकी दूसरी स्त्री रोहिणीके गर्भमें रख आयी अत एव न मार सका फिर आठवे गर्भमें सच्चिदानन्द स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ॥६॥ ७ ॥नन्दयशोदाके यहां लीला करनेके लिये अपने ऐश्वर्य और रूपसे पहिले सत्त्वमूर्तिको वसुदेवके मनम और उसके पीछे मन्त्रके समान देवकीके गर्भमें प्रकट हुए॥८॥९॥

इनके जन्म होनेके समयमें ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता कारागारमें आकर स्तव और जन्मकी स्तुतिसे उनके ऐश्वर्यका वर्णन करके अपने२लोकोंको चले गये और इसके अनन्तर भगवान्‌ने अपना स्वरूप प्रकट किया॥ १० ॥ (तब भगवान्‌की चतुर्भुजी मूर्ति देखकर)वसुदेव और देवकीने उनकी स्तुति की, फिर (कंसके भयसे)पिता (वसुदेवजी)गोकुल पहुंचा आये (और जो यशोदाजीके गर्भसे योगमाया उत्पन्न हुई थी उसको लेकर मथुराको चले आये, फिर प्रभात होते ही कंस आया और उस कन्याको ज्यों ही चाहा कि मारूं कि इतनेमें ही वह उसके हाथसे छूटकर यह कहती हुई आकाशको चली गयी कि तेरा मारनेवाला कहीं जन्म ले चुका) इस प्रकार चण्डिकाजी की वाणी सुनकर कंस बहुत भयभीत

कारागृहं समासाद्य अभिष्टूय दिवं ययुः ॥ ततश्च निजरूपेण सम्भूतश्च हरिः स्वयम् ॥ १० ॥ पितृभ्यां संस्तुतो नीतः पित्रा भीतेन गोकुलम् ॥ कंसश्च चण्डिकावाक्यमाकर्ण्यातिभयाकुलः ॥ ११ ॥ दुर्मन्त्रिभिर्हितं मेने पापो बालादिहिंसनम् ॥ नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः ॥ १२ ॥ चक्रे महोत्सवं पश्चाद्वसुदेवसमागमः ततश्च पूतनां कृष्णः कंसेन प्रेपितां स्त्रियम् ॥ १३ ॥ पीत्वा स्तनं गोकुले तु प्रददौ जननीगतिम् ॥ कंसेन प्रेरितान्पश्चात्सर्वानेव महासुरान् ॥ १४ ॥

हुआ ॥ ११ ॥ फिर कंस भगवान्‌के विनाशके निमित्त अपने अनुचर और राक्षसोंको भेजने लगा और नन्दजीने भी अपने पुत्रजन्मका उत्सव मनाया ॥ १२ ॥ कंसकी आज्ञानुसार बलरामजीके सहित बढ़ते हुए क्रीडा करनेवाले भगवान्‌के विनाशके लिये प्रथम पूतना भेजी गयी, पूतना अत्यन्त सुन्दरी स्त्रीका रूप धारण कर स्तनोंमें विष लगाकर श्रीकृष्णके मारनेकी चेष्टा करने लगी, कि किस प्रकारसे भगवान्‌को स्तन पिलाऊं, परन्तु श्रीकृष्णने तो उसके स्तनोंको पीनेके समय उसके जीवनका भी पान कर लिया और उसे

माताको गति दी इस प्रकार क्रम२ से श्रीकृष्णने कंसके भेजे हुए समस्त राक्षसोंको(अपने हाथसे वध करके मुक्ति दी)॥ १३॥ १४॥जैसे शकटरूपधारी शकटासुरको चरणसे और वायुरूपी तृणावर्तको गलेके पीड़नसे लीलाकरते हुए ही मार डाला॥ १५॥ जिस समय वनमें गौ चरा रहे थे उस समय वत्सासुर और बकासुरका वध किया,इसके पश्चात् अघासुरका वध करके ब्रह्माका मोह दूर किया॥ १६॥फिर धेनुक राक्षसको मारा,और कालियनागको नाथा तथा दावानलको पान करके प्रलंबदैत्यके प्राण हरण किये॥ १७॥जिस समय मृत्तिका भक्षण करनेके कारण माता कुपित हुई उस समय अपना मुख विस्तारित कर उसमें विश्वरूपका दर्शन कराया॥ १८॥और गर्गजीके द्वारा नामकर्मादिक संस्कारोंसे युक्त कृष्णजी बाललीला करते हुए दधिके गिरानेके

हेलया हतवान्कृष्णः शनकैर्नरलीलया॥उत्क्षिपञ्शकटं व्योम्नि तृणावर्त्तमधः क्षिपन्॥ १५॥वत्सान्पालयता तेनहतौ वत्सबकासुरौ॥ अघासुरवधः पश्चात्ततो ब्रह्मविमोहनम्॥ १६॥धेनुकस्य वधः पश्चात्कालियस्य च शासनम्॥दावाग्नेर्मोक्षणंपश्चात्प्रलम्बस्य विघातनम्॥ १७॥दर्शयन्विश्वमास्ये च बाल्यलीलां समादधे ॥ मृद्भक्षणाभियोगे हि विश्वरूपं प्रदर्शितम्॥ १८॥नामकृद्गर्गवाक्येन निजतत्त्वमसूसुचत्॥दध्याादिस्तेयं पश्चाच्च ततो दाम्ना च बन्धनम् ॥ १९॥ यमलार्ज्जुनयोर्भङ्गस्तेषां मोक्षश्च कीर्तितः॥ वृन्दावनं समागत्य बाल्यलीला वयस्यकैः ॥२० ॥ प्रावृट्क्रीडा गिरिधृतिः शरत्क्रीडा ततः परम् ॥ अष्टमे वस्त्रहरणं नवमे रासचेष्टितम् ॥ २१ ॥

अपराधमें यशोदाजीसे ये ऊखलसे बांधे गये॥ १९॥और यमलार्जुन नामक दोनों वृक्षोंका उद्धार किया; और वृन्दावनमें ब्रजके बालक और बालिकाओंके साथ भांति२के खेल किये॥ २०॥(और मातापिताको बाल्यभाव दिखाते हुए शत्रुओंको उत्तम गति दी सातवर्षकी अवस्थातक ब्रजके बालकों के साथ अनेक भांतिके खेल किये,)वर्षाऋतुमें गोवर्धनको क्रीडापूर्वक उठाया फिर इसके पीछे शरदृऋतुकी क्रीडा की आठवें वर्षमें उपाधिमें न अ ने

योग्य ... अपने अर्पण करनेवाली स्त्रियोंके वस्त्रोंको हरण किया, और नौवें वर्षमें रसको देनेवाली रासलीला की॥२१॥और गोपियोंके साथ मधुर विहार कर वात्सल्यता दिखायी फिर बारहवें वर्षमें अक्रूरके साथ मथुरा गमन और अनीतिकरनेवाले सकुटुम्ब कंसका संहार, सान्दीपनि मुनिके निकटसे विद्याका पढ़ना, पञ्चजनासुरका वध, सत्रहबार जरासंधको पराजित कर फिर अठारहवीं बारमें कालयवनको मारकर मथुरामें दुष्टोंके विशेष उत्पातके भयसे अपने पुरवासियोंकी रक्षाके लिये समुद्रके बीचमें द्वारकापुरीको बसायी इसके पीछे द्वारकामें आकर, रुक्मिणीहरण, सत्यभामाके साथ विवाह, बाणासुरके युद्धमें महादेवका पराजय, पारिजातहरण, और कुरुक्षेत्रमें कुरुपाण्डवोंमें युद्ध करा दिया ॥२२॥ ऐश्वर्यसे मिली हुई मनुष्य

वात्सल्यादिप्रकाशाय वृन्दावनपतेर्हरेः ॥ ततश्च मथुरालीला द्वार्वत्यां च ततः परम् ॥ २२ ॥ ऐश्वर्यमिश्रिता चैवं नरलीला प्रकीर्त्तिता ॥ २३ ॥ परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ॥ धर्मसंरक्षणार्थाय यस्य लीला भवेदिह ॥ २४ ॥ द्वापरे युगपर्य्यन्ते यथाकाले हरिः स्वयम् ॥ आविरासीत्पृथिव्यां वै नैव मिथ्या कदाचन ॥ २५ ॥

लीला करते हुए भूमिका भार उतारनेके निमित्त प्रभासतीर्थमें अपना विनाश कर अपने लोकको चले गये, यही स्थान भगवान्की लीलाका तीर्थ है, कहे हुए यादवोंके कार्य ही मनुष्योंकी प्रकृतिके वशीभूत और भगवान्के अप्राकृत प्रमाण किये हैं, इसमें कुछ झगड़ा न चलेगा, ये सभी भगवान्के अवतारोंके प्रकाशक और पूर्ण उत्तेजना देनेवाले हैं ॥२३॥ भगवान् श्रीकृष्ण साधुओंका उद्धार करनेके लिये और दुष्कृत मनुष्यों का विनाश करनेके लिये, धर्मकी रक्षाके लिये अवतार लेते हैं यही भगवान्की लीला है ॥ २४ ॥ द्वापरयुगके अंतमें भाद्रकृष्ण अष्टमीको रोहिणीनक्षत्रमें बुधवारको रात्रिके समय वसुदेवकी स्त्री देवकीके गर्भमें श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए, उस समय भौम, चन्द्रमा, शनि इत्यादि ग्रह उच्चस्थानमें

बैठे हुए थे, लग्न वृष थी, और पूषा, उष्ण और वायु यह यथारीतिसे, सिंह, तुला, और कन्या, ये राशियें बृहस्पतिकी नाभिमें बैठी हुई थीं, कृष्ण शब्दका अर्थ जन्म और मुक्तिका देनेवाला है, यह सर्वदा वृन्दावनमें नित्य २ लीला कर गोप और गोपिकाओंसे युक्त होकर श्रुति और मुनियोंसे स्तुति किये जाते हैं ॥ २५ ॥ हरिके अवतार असंख्य हैं, उनमें चार अवतार प्रधान हैं, सतयुगमें तो वे शुक्लवर्ण, चारभुजा, जटिल, वल्कल धारण किये काले अञ्जनका जनेऊ पहिने अक्षयदंड और कमंडलु धारण किये, और त्रेतायुगमें लालवर्ण चारभुजा त्रिमेखल सुवर्णके समान बाल क्रियात्मा और स्रुक् स्रुवादिसे विभूषित, द्वापरयुगमें काले वर्ण पीताम्बर पहने शंख चक्रादिसे शोभायमान श्रीवत्सादि चिह्नोंसे चिह्नित, और कलियुगमें भीत-

अवतारा ह्यसंख्येया हरेर्विश्वपतेर्भुवि ॥ चतुर्युगावताराश्च प्रधानाः कथिता बुधैः ॥ २६॥ अप्राकृतगुणैः पूर्णो नित्यास्त्रपार्षदैर्युतः ॥ प्रेयसीभिर्वयस्यैश्च तथा नित्यपुरे स्थितः ॥ २७ ॥ उपकाराय जीवानां भावानुकरणेन हि ॥ भगवद्भक्तिसाफल्यं लीलायां प्रकटीकृतम् ॥ २८ ॥ इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे वैयासिके सूतशौनकसंवादे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ सूत उवाच ॥ ॥ स्त्रिया मोहिकया के न निहता भुवनत्रये ॥ कच्छो यथा ज्वलद्वह्निं दृष्ट्वैवोल्लसितो भवेत् ॥ १ ॥

रसे काले और बाहरसे गोरे सांगोपांगादिरूप अस्त्र और पार्षदोंसे युक्त होकर संकीर्तनमें भक्तोंसे पूजित ये चार अवतार प्रधान हैं ॥२६॥ इनके चौंसठ अप्राकृत गुण हैं, वे नित्य आयुध और पार्षदोंसे युक्त हैं, और प्रियमित्रों सहित विराजमान हैं ॥ २७ ॥ इस स्थानमें साधारण जीवोंके उपकार करनेके लिये अपने स्वभावके अनुसार भगवान्‌की भक्तिका फलाफल उनकी लीलामें प्रकाशित हुआ है॥२८॥इति श्रीआदिपुराणे सूतशौनकसंवादे भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः॥६॥सूतजी बोले कि, हे मुनियो ! ऐसा इस त्रिलोकीमें कौन है जो स्त्रियोंकी मोहनीशक्तिसे मोहित होकर नाशको न प्राप्त हुआ हो, कच्छ अर्थात्

झिल्ली कीड़ा जिस प्रकार अग्निको प्रज्वलित देखकर प्रफुल्लित होता है॥ १॥और फिर उसकी गोदीमें जाकर उससे उत्पन्न हुए दाहजनित दुःखका अनुभव नहीं करता, उसके ही समान स्त्रियोंके दर्शनसे मनुष्यको घोर संसारके दुःखका अनुभव नहीं होता, मल मूत्र रक्त और हड्डियोंसे युक्त देहको श्रेष्ठ जानता है, और मोहित हो उसमें रत रहता है, विष्ठासे उत्पन्न हुए कीड़े जिस प्रकार विष्ठामें ही आनंदित रहते हैं ॥२॥३॥ उसी प्रकार यह पुरुष स्त्रीकी देहसे जन्म लेकर पुनर्वार उसी अपवित्र देहमें मोहित हो अत्यन्त आनन्दको भोगता है, इसी कारणसे मनुष्यको दुःख मिलते हैं, परन्तु तोभी घरमें

दाहदुःखं न जानाति स्त्रियं दृष्ट्वा तथा पुमान् ॥ देहं मूत्रपुरीषैश्च पूरितं मन्यते वरम् ॥ २ ॥ मेदोऽस्थिरक्तमज्जाढ्यं रमते तत्र मोहितः ॥ यथा विष्ठासमुद्भूतः कीटस्तत्रैव मोदते ॥ ३ ॥ तथाऽपवित्रे स्त्रीदेहे मोदते मोहितो भृशम् ॥ तदर्थं दुःखमाप्नोति सुखवन्मन्यते गृहे ॥ ४ ॥ धनार्जने परं यत्नं करोत्यशुभकर्म च ॥ तृष्णया भववाहिन्या जगद्भूता इतस्ततः ॥ ५ ॥ प्रधावन्ति मूढधियो ह्यनिशं धनकाङ्क्षया ॥ प्रियान्प्राणाननादृत्य समुच्छ्राम्यति मूढधीः ॥ ६ ॥ हिताहितं न जानाति नैहिकं पारलौकिकम् ॥ तृष्णानीहारनष्टाक्षो न जानाति वयो गतम् ॥ ७ ॥

रहकर उसको सुख ही विचारता है ॥ ४ ॥ और फिर वह धनके पैदा करनेमें बहुत श्रम और विविध प्रकारके बुरे कर्मोंको करता है; संसारमें चरनेवाली तृष्णासे चलायमान होकर संसारमें निर्बुद्धि मनुष्य धनके पैदा करनेकी चिन्तासे इधर उधर भ्रमता है ॥ ५ ॥ निर्बुद्धि मनुष्य अपने जीवनको तुच्छ जानकर धनोपार्जन करनेमें अत्यन्त ही श्रम करता है और अपने प्रियप्राणोंको तुच्छ जानकर उन्हें वृथा आयास देता है ॥ ६ ॥ परन्तु इस लोक और परलोकमें किस वस्तुसे मंगल वा अमंगल होगा उसको नहीं जानता, इस सुख

लालसारूप कुहरेमें दृष्टिहीन होकर उसकी आयु दिन २ क्षीण होती जाती है, उसको यह एकबार भी मनमें स्थान नहीं देता ॥७॥ उसके समीप पिता, माता, स्त्री, भाई और कुटुम्ब ये कुछ भी नहीं हैं, केवल संसारमें एकमात्र धन ही उसकी परमवस्तु है ॥८॥ वह अर्थके लिये पिता, माता, सहोदर, सत्य धर्म, दया, मैत्री, इन सबको छोड़ सकता है बरन् अपने प्राण भी दे सकता है, परन्तु धनकी आशा किसी प्रकारसे भी कम नहीं होती॥९॥ और मान, अपमान वा होनहार शुभ और अशुभ इनको कुछ नहीं गिनता, नीचोंकी सेवा करनेसे भी एकमात्र धनके मिलनेकी ही कामना करता

न बन्धुर्न पिता माता न तस्य स्त्री सहोदरः ॥ एकमेव परं वित्तं नान्यं किञ्चन संसृतौ ॥८॥ यदर्थं त्यजति प्राणान्पितृमातृसहोदरान् ॥ सत्यं धर्मं दयां मैत्रीं न धनाशां कथञ्चन ॥९॥ मानापमानं गणयेन्नैव भावि शुभाशुभम् ॥ इच्छते धनमेवैकं कृत्वाप्यधमसेवनम् ॥१०॥ पोष्याः पुत्रकलत्राद्या देयमेभ्यः सुखं पुनः ॥ न सदर्थे स्ववित्तस्य करोति कुमतिर्व्ययम् ॥११॥ न साधुभ्यो धनं किञ्चिद्दातुमुत्सहतेऽबुधः ॥ देवे दत्तमक्षयं स्यात्परत्रेह शुभं यथा ॥१४॥ यदि न स्याद्गृहे वित्तं विवाहाद्यर्थसिद्धये ॥ ऋणेनापि च कुर्व्वन्ति प्रतिष्ठार्थं जनेषु हि ॥१२॥ बन्धुष्वासक्तचित्तस्य न पोषणपरस्य च ॥ अहर्निशं क्लेशवतः कुतो ज्ञानं कुतः सुखम् ॥१४॥

है॥१०॥ स्त्री पुत्रोंका पालन करना अवश्य है, इसी विचारसे उनको सुख देनेकी इच्छा करता है, परन्तु श्रेष्ठकार्यमें वह निर्बुद्धि मनुष्य धनका व्यय नहीं करता ॥११॥ वह मूर्ख साधुओंको किंचित् धन देनेको इच्छा नहीं करता, देवताओंके निमित्त कोई भी वस्तु दान करनेसे उसका फल अक्षय होता है, इस लोक और परलोकमें मंगलकारक होने पर भी ऐसे सफल दानमें भी उसकी इच्छा नहीं होती॥१२॥ विवाह इत्यादि प्रयोजनीय कार्योंके निमित्त चाहे घरमें धन न भी हो परन्तु समाजमें प्रतिष्ठाके लिये कर्ज लेकर करता है॥१३॥ अपने कुटुम्बियोंमें आसक्त चित्तसे उनके लिये पोषणवाला होकर सर्वदा

क्लेशका भोगनेवाला मनुष्य यह कभी नहीं जानता कि, ईश्वर ज्ञान है और कहां सुख है॥ १४॥ और जो कदाचित् धर्मकार्यमें कुछ धन व्यय हो गया तो जन्म जन्मान्तर तक उसके लिये क्लेश भोगता रहता है, चिरकालसे संग्रह किये हुए धनको न कभी भोगता है न कभी दान करता है॥ १५॥ कुटुम्ब में आसक्त हुआ मनुष्य विष्णुकी भक्ति, दान, साधुओंकी संगति और तीर्थोंकी यात्रा, यह कुछ भी नहीं करता ॥ १६ ॥ यदि कोई मनुष्य श्रीभगवान्‌की भक्ति करता है, तो उसका यह निर्बुद्धि मनुष्य उपहास करता है, और उसे ही स्नेहहीन, असमर्थ, अपने कुटुंबियोंका पालन नहीं

ज्ञात्वाऽथ धर्मकर्माणि तदर्थं क्लिश्यते भृशम्॥ न ददाति न भुङ्क्ते च जातेऽपि धनसञ्चये॥ १५॥ न करोति हरेर्भक्तिं न दानं साधुसङ्गमम्॥ न तीर्थयात्रां कृपणः कुटुम्बासक्तमानसः॥ १६॥ कुर्वन्तं विष्णुभक्त्यादि परं चोपहसत्यसौ॥ निःस्नेहोऽयं चासमर्थो न पुष्णाति स्वबान्धवान्॥ १७॥ परलोकः केन दृष्टः क्व वा मुक्तिर्भविष्यति॥ स्वजनः क्लिश्यते यत्र मूढस्यास्य कुटुम्बिनः ॥ १८॥ यदि कुटुम्बव्यासक्तो महामोहवशंगतः॥ नाशयत्यात्मनाऽऽत्मानं नैवोद्धरति संसृतेः॥ १९॥ अभिमानं च कुरुते कोमदन्योऽस्ति भूतले॥ देशाद्देशान्तरं याति राज्ञां सेवां करोति च॥ २०॥ पौरुषेण च युक्तस्य जनस्यैवमहीतले॥ अबान्धवोऽपि बन्धुः स्यादन्यस्यात्रमहाजनाः॥ २१॥

करता ॥ १७ ॥ कुटुम्बयुक्त इस मूढके स्वजन क्लेश पा रहे हैं ऐसे वाक्योंको कहता है, क्या परलोक किसीने देखा है, और मुक्ति वहां किस स्थानपर है और किस प्रकारसे होती है, इस कारण जो दृष्टिमें नहीं आता वह विश्वास करनेके योग्य नहीं है, इससे इसके निमित्त क्रिया कलाप करना ही निरर्थक है ॥ १८ ॥ इस प्रकार महामोहके वशीभूत होकर परिवारमें आसक्त हुआ जो मनुष्य क्लेश भोगता है वह पापी अपने आपसे ही अपनेको नाश करता है, और संसारसे उसका उद्धार नहीं होता ॥ १९ ॥ परन्तु जो मनुष्य यह विचार कर अभिमान करते हैं कि यह मेरा है, पृथ्वीमें मेरे समान और कोई नहीं है, और देश देशान्तरमें जाकर राजाओंकी सेवा करता है ॥ २० ॥ वास्तवमें इस जगतीतलमें पौरुष

युक्त मनुष्यके अबन्धु भी बंधु हो जाते हैं ॥२१॥गृह, पुत्र, स्त्री, मित्र, बंधु यह कोई किसीके नहीं हैं, इनसे केवल सुना हुआ सम्बन्ध है, अधिकतर दुःखसे उत्पन्न हुआ शरीर संसारके किसी पदार्थको सुख नहीं दे सकता,इस कारणसे योग्य पुरुष बांधवहीन होकर भी दूसरोंसे बंधुताका आचरण करते हैं॥२२॥मनुष्यकी देह जितने दिनोंतक कार्यके साधन करनेमें समर्थ है,वह उतने ही दिनोंतक आदर पा सकती है,परन्तु हाय!असमर्थ होनेपर पग

गृहं कस्य सुताः कस्य मित्राणि स्वजनाः स्त्रियः ॥ कश्चिन्न सुखदो लोके शरीरे दुःखसम्भवे ॥२२॥ यावद्देहो मनुष्यस्य समर्थः कार्य्यसाधने ॥ तावत्समादरं याति विपरीतमतोऽन्यथा ॥ २३ ॥ तस्मात्तथा साधनीयमारोग्यं पौरुषं यतः ॥ एवं चिन्तयमानस्य कालो याति भृशं वृथा ॥ २४ ॥ अहं ममेति मूढस्य स्वदेहेऽत्यभिमानिनः ॥ कामासक्तस्य नो सिद्धमैहिकं पारलौकिकम् ॥ २५ ॥ विघ्नभूतास्तु पञ्चैव विद्यन्तेऽत्र शरीरिणः ॥ देवनान्तरसेवा स्त्रीसङ्गमो धनसञ्चयः ॥ २६ ॥ स्वबान्धवेषु चासक्तिरभिमानं च पञ्चमः ॥ एतैर्मोहितचित्तस्य न भक्तिः स्याज्जनार्दने ॥ २७ ॥

२ पर इसका अपमान होता है ॥२३॥ इस कारण जिससे पौरुष और आरोग्यता प्राप्त हो ऐसा उपाय करना चाहिये, इस प्रकारसे चिन्ता करनेवाला निर्बुद्धि मनुष्य अपने अमूल्य समयको वृथा व्यतीत कर देता है ॥२४॥ यह"मैं"और यह"मेरा"है इसमें मोहित होकर यह मेरा शरीर है,और यह वस्तु मेरी है,इस प्रकारके अभिमानसे युक्त कार्यार्थी मनुष्योंके दोनों लोक नष्ट हो जाते हैं॥२५॥देहधारी मनुष्योंके मंगलमें पांच कार्य विघ्नकारक हैं एक तो विष्णुके अतिरिक्त और देवताकी सेवा करना, स्त्रीसंगम और धनका इकट्ठा करना ॥२६॥ अपने कुटुम्बियोंमें आसक्त और अभिमान करना,इन

पांचोंसेही मोहितचित्त होकर मनुष्य श्रीभगवान्‌के प्रति भक्ति नहीं कर सकता ॥२७॥ और नारायणमें भक्तिहीन होनेसे क्रमसे सत्त्वगुणोंका लोप हो जाता है, इसीसे मनुष्य अधम गतिको प्राप्त होता है, इस लोकमें बहुतसे मुनि हैं उन्होंने तपरूप अग्निसे समस्त पापोंको भस्मकर ॥ २८ ॥ घोर संसारकी शंकासे शंकितचित्त होकर, अरण्यमें वास किया है, कोई २ तो विष्णुके पदको प्राप्त होकर फिर इस पृथ्वीमें नहीं आये ॥२९॥ वे सब महात्मा विष्णुके पार्षद होकर उनके निकट भक्तिभावसे रह कर अत्यन्त सुखको पाते हैं, वे क्षणभरके लिये भगवान्‌के निकटसे अलग होना नहीं चाहते ॥३०॥

इत्थं शनैस्त्यक्तसत्त्वो जनो यात्यधमां गतिम्॥मुनयःसन्ति लोकेऽस्मिंस्तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥२८॥शंकिता घोरसंसारान्नितरां वनमाश्रिताः॥केचिद्धरिपदं प्राप्ताः परावृत्ता न भूतले॥२९॥भक्तिभावविधानास्ते पार्षदाःसन्निधौ स्थिताः॥न त्यजन्ति क्षणमपि क्वापि पार्श्वं मधुद्विषः ॥३०॥ तस्मान्न सा गतिर्नॄणां भवेत्कपटकर्मिणाम्॥३१॥ऋषय ऊचुः ॥ नारदः पार्षदश्रेष्ठो विष्णोरेकान्तभक्तिमान्॥कृष्णं हित्वा तस्य लोकान्प्रति पर्य्यटनं कथम्॥३२॥सूत उवाच॥संसारकूपपतितं विषयैर्मुषितेक्षणम्॥ग्रस्तं कालाहिना दृष्ट्वा जायतेऽस्य दया जनम्॥३३॥मोहोऽयं पञ्चधा प्रोक्तो बन्धनाय नृणामिह॥मायागुणैःप्रतीकारं तस्य वक्ष्ये द्विजोत्तमाः॥३४॥

संसारमें रहनेवाले, कपटकर्म करनेवाले मनुष्योंको इस प्रकारकी उत्तमगति मिलनेकी संभावना नहीं है॥३१॥ऋषि बोले कि भक्तोंमें प्रथम गिनने योग्य विष्णुके पार्षदोंके बीचमें ये नारदजी ही श्रेष्ठ हैं, इस कारण इन्हें श्रीकृष्णको छोड़कर लोक २ में घूमनेकी क्या आवश्यकता थी ? ॥३२॥ सूतजी बोले कि, संसाररूपी कुण्डमें गिरे हुए, विषयवासनासे अंधे हुए, कालसर्पसे ग्रसे हुए, मनुष्योंको देखकर, उनको दया उत्पन्न हुई अर्थात् वे उनके उपकार किये बिना शान्त न रह सके॥३३॥मनुष्योंको बांधनेके लिये पांच प्रकारके मोह विधान किये गये हैं; हे ब्राह्मणो! ऊपर

कहे हुए मायागुणोंमे उनका प्रतीकार वर्णन करताहूँ ॥३४॥ भगवान् विष्णुके अतिरिक्त इसका और कोई उपाय नहीं है हमारा वही हरिरूप उपाय भक्तोंका सहायक और अवस्थाका अनुवर्त्ती है ॥ ३५ ॥ अपने कर्मोंसे यह जीव उसके आज्ञानुसार ही फल भोगता है, वही भोगनेवाला जीव जन्म पानेके लिये इस प्रकारसे गर्भके भीतर वास करता है वही मैं इस स्थानपर कहता हूं ॥३६॥ जब पुरुष और स्त्रीके संसर्गसे वीर्य और रक्त आपसमें मिल जाते हैं उसी समयसे गर्भ बढ़ने लगता है ॥३७॥ एक दिनमें तो वह वीर्य रक्तसे मिला हुआ कुछ पतला ही रहता है, तीसरे दिन कुछ गाढ़ा और

नहि कश्चिदुपायोऽत्र भगवन्तं हरिं विना॥सर्वः सर्वैः सहचरत्यवस्थास्वनुवर्त्तन॥३५॥स्वीयवृत्तेश्च संयोगं निमित्तीकृत्य भोगभाक् स जीवो वर्तते गर्भे यथा तत्कथयाम्यहम् ॥३६॥ यदैव जायते सङ्गः शुक्रशोणितयोरिह॥गर्भभ्रूणस्त्वनुदिनं तदारभ्य प्रवर्द्धते ॥ ॥ ३७ ॥ द्रवरूपं तदेकाह्ना कललं जायते त्र्यहात ॥ वृद्धिस्तु सप्तरात्रेण पक्षेण कठिनं भवेत्॥३८॥ शिरो मासद्वयेन स्यात्पाणि पादं त्रिमासकैः ॥ कट्युदरांगुलीरूपं तुर्य्ये मास्यभिजायते॥३९॥ जायन्ते मासि रक्तादिधातवः सप्त पञ्चमे ॥ षष्ठे तु पृष्ठवंशा दिकीकसं कर्णनासिके ॥४०॥ मुखं नेत्रं च भवति नखरोमादि सप्तमे ॥ सूक्ष्मभावोऽस्थनि यच्च युगपज्जायतेऽखिलम्॥४१॥

सात रात्रियोंमें वह गाढ़ा होकर कुछ २ बढ़ने लगता है, और एक पक्षमें वह कुछ कठिन गुणवाला हो जाता है ॥३८॥ इस प्रकारसे दूसरे महीनेमें मस्तक; तीसरेमें हाथ और पैर, चौथेमें कमर और उदार उंगली और रूप होते हैं ॥३९॥ पांचवेंमें रक्त, रस, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सात धातुएँ बनती हैं, और छठे महीनेमें पीठका भाग और प्रधान २ हड्डियें कर्ण और नासिका बनती हैं ॥४०॥ और सातवे महीनेमें मुख, नेत्र, नख और रोम इत्यादि उत्पन्न होते हैं और बड़ी हड्डी और सूक्ष्मभाव शरीरके बननेके विषयमें और जो कुछ शेष रहा है वह उस समय सभी पूर्ण

हो जाता है ॥४१॥ आठवें महीनेमें माताके गर्भमें एक प्रकारका तेज अर्थात् बल बढ़ता रहता है, परन्तु उससे यदि माताको कुछ भी ग्लानि हो तो वह कोखमें निवास करनेवाला जीव जीवित नहीं रह सकता ॥४२॥ वह देहवान् जीव नौवे महीनेमें सब लक्षणोंसे युक्त होकर अपने पूर्वजन्मके किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका स्मरण करता है ॥४३॥ मैंने बहुतसे माता पिता और भ्राताओंको देखा है, मनुष्य और पशु पक्षी आदिकी बहुतसी योनियें मिली हैं ॥४४॥ उन सब योनियोंमें गर्भके बीचमें मलमूत्रसे ढका हुआ मैं अत्यन्त ही कष्टके साथ वास कररहा हूँ. पीठ, ग्रीवा और समस्त हड्डियोंको

ओजोऽष्टमे सञ्चरति गर्भे मातरि चासकृत् ॥ तेन मातुर्भवेद्ग्लानिर्जातश्चैव न जीवति ॥४२॥ स देही नवमे मासि सर्व्वलक्षणसंयुतः ॥ जानञ्छुभाशुभं कर्म्म संस्मरेत्पूर्व्वजन्मजम् ॥ ४३ ॥ मातरो विविधा दृष्टाः पितरो भ्रातरस्तथा ॥ नानायोनिमहं प्राप्तो मनुष्यपशुपक्षिणाम् ॥ ४४ ॥ तत्रोषितोऽतिदुःखेन गर्भे मूत्रमलावृतः ॥ उल्बेन वेष्टितो भुग्नपृष्ठग्रीवास्थिसंहतिः ॥ ४५ ॥ गर्भाशये स्थितो देही ज्ञानवांश्चिन्तयेदिदम् ॥ किं कृतं दुष्कृतं कर्म्म यतो गर्भे निवेशितः॥ ४६ ॥ पतितो निरये घोरे दुःसहे गर्भसंज्ञिते ॥ यदितो निर्गमिष्यामि भजिष्यामि हरिं प्रभुम् ॥ ४७ ॥ येन भूयो गर्भवासदुःखं द्रक्ष्यामि न क्वचित् ॥ ततः स दशमे मासि नवमे चानिलैर्बलात् ॥ ४८ ॥

सकोड़कर जरायुके चर्मके भीतरे ॥ ४५ ॥ गर्भमें बैठा हुआ यह प्राणी अपने दिव्य ज्ञानको प्राप्त होकर इस प्रकारकी चिन्ता करता है; मैंने और जन्ममें प्रथम ऐसा कौनसा पाप किया था कि जिससे मुझे इस गर्भमें वास मिला॥४६॥यह मेरा गर्भमें वास करना नहीं है इससे और अधिक दुःख क्या होता है, मैं गर्भनामक घोर कठिन नरकमें पड़ा हुआ हूं, इस नरकसे जो मैं यदि बाहर हो जाऊं तो अवश्य ही श्रीकृष्णका भजन करूंगा ॥४७॥ ऐसा करनेसे

फिर मैं कभी भी गर्भवासकी पीड़ाको नहीं देखूंगा। परंतु इसके पीछे वह नौ या दशवें महीनेमें वायुकी प्रबलतासे॥४८॥दुःखी होकर योनिमार्गके घोर संकटसे बाहर होता है; तब यह प्रथमका ज्ञान भूलकर मायाके वशीभूत हो जाता है ॥ ४९ ॥ यह निर्बुद्धि बालक नाम धराकर पिता मातासे जड़के समान पालित होता है परन्तु हाय ! अद्भुतकर्म करनेवाले श्रीभगवान्‌का प्रजापालनका कैसा चातुर्य है ॥ ५० ॥ पहले तो गर्भके बीचमें गर्भ पद्मसे मृणालस्वरूप नालकी डंडीके भीतर रस जानेसे इसका पालन होता है, इसके पीछे माताके खाये हुए अन्नसे जो स्तनोंमें दूध उत्पन्न होता है, बाल्य

निःसारितोऽतिदुःखार्त्तो योनिमार्गेण संकटात् ॥ निर्गतो योनितो देही मायया श्लिष्यते पुनः ॥४९॥ पितृभ्यां जडवद्बालः पोष्यमाणोऽतिमूढधीः ॥ अहो पोषणचातुर्य्यं हरेरद्भुतकर्म्मणः ॥ ५० ॥ गर्भे नाना ह्यान्त्रनाडीप्राप्तेनैव रसेन भृत् ॥ मातुर्ज ग्धान्नपानोत्थैर्बाल्ये स्तन्यैश्च पोषणम् ॥ ५१ ॥ शक्तिर्न चालनेऽङ्गानां पार्श्वस्य परिवर्त्तने ॥ दष्टः शय्यास्थितैः कीटैर्मलाक्तः शयितः सुखम् ॥ ५२ ॥ मूकस्तु कर्मणाशक्तः पंगुर्याने गृहे कुणिः ॥ काले कतिपयातीते भाषते परिगच्छति ॥ ५३ ॥ दिवानिशं समीपेऽस्य वर्त्तते हितकृद्धरिः ॥ इन्द्रियाणां परावृत्त्या नैव जानाति मूढधीः ॥ ५४ ॥

कालमें उससे पाला जाता है॥५१॥और बालकपनमें उसको अंग चलानेकी शक्ति न होनेसे यह शय्यापर सुखसे लेटा रहता है,वहां खटमल इत्यादि कीड़े काटते हैं, विष्ठा मत्रसे इसका शरीर सना रहता है ॥ ५२ ॥ और बोलनेको इसमें शक्ति नहीं होती, सुननेकी भी शक्ति कम है, अधिक दूरकी बात तो जाने दो अपने वासस्थानमें जानेके समयमें लंगड़े और खोटे अर्थात् बुरे पाँव जिस प्रकार अपने कार्यमें असमर्थ हैं, इसी प्रकार कुछ काल बीत जानेसे बालककी वाक्यशक्ति बढ़ती है और कुछ कुछ चल भी सकता है ॥५३॥ इस समय रात दिन उस अज्ञानी बालककी रक्षाके लिये श्रीहरि

भगवान् उनके समीप वर्तमान रहते हैं; परन्तु इन्द्रियोंमें प्रयोजनीय शक्तिके अभाव होनेसे वह निर्बुद्धि उनको नहीं जान सकता ॥५४ ॥ उनके अति रिक्त और कौन मनुष्य पालन करनेवाला है, वह सर्वशक्तिमान्, धाता और पालनेवाले प्रभु हैं वे ही केवल बालककी सहायता करते हैं. आदि, मध्य, और अन्त इन तीनों कालोंमें श्रीहरि सहायता करते हैं ॥ ५५ ॥ जिस प्रकारसे वस्त्रके दग्ध होजाने पर उसको कोई परिधान नहीं करता, उसी प्रकार भगवान्के अतिरिक्त शरीरमें, पुत्रमें, घरमें कुछ भी ममता नहीं होती ॥ ५६॥ वह अर्थात् संसारके आत्मरूपी हरिकी देहसे विनिःसृत हो इन्द्रि

तं विना पोषकः कोऽन्यो धाता पालयिता प्रभुः ॥ आदौ मध्ये तथान्ते च हरिः सर्वत्र संस्थितः ॥ ५५ ॥ न तं विना क्वचित्स्नेहो देहगेहसुतादिषु ॥ न तिष्ठति क्षणमपि दग्धतन्तुर्यथा पटः ॥५६॥ तस्मिन्विनिःसृते देहात्तत्र सर्वेन्द्रियाणि च ॥ स्ववृत्तिषु निवर्त्तन्ते मृत इत्युच्यते नृभिः ॥ ५७ ॥ यदि तेन भवेत्स्नेहो हरिणा न गृहादिषु ॥ कथं मोहः पुनः कार्यो मोहाद्धि नरकं व्रजेत् ॥ ५८ ॥ तस्मान्नित्यं स भगवान्सेव्यः सत्पुरुषैरिह ॥ कामिन्या व्यभिचारिण्या यथाकालप्रबुद्धया ॥ ५९ ॥ यथा प्रपद्यते जारस्तुष्यते स च सर्वथा ॥ यथा कल्पतरुः साक्षादाश्रितेभ्योऽर्थदो भवेत् ॥ ६० ॥

योंको अपने अपने विषयोंसे निवृत्त कर अर्थात् दर्शन और श्रवणादि यह कुछ भी काय नहीं होता तब मनुष्य उस देहीको मृतक कहते हैं ॥५७॥ यदि श्रीभगवान् घरमें स्नेह उत्पन्न न करें तब जीवको किस प्रकारसे मोह उत्पन्न हो उसी मोहके फलसे यह नरक भोगता है॥५८॥ यह निश्चय ही है इसी कारणसे उत्तम पुरुष सर्वदा भगवान्की इस लोकमें सेवा करते हैं व्यभिचारिणी स्त्री कामकी इच्छासे अपने मित्रके संकेतसे यथासमयमें नींदसे जाग कर ॥५९॥ उसके पास जाकर विविध प्रकारसे सर्वदा उसको सन्तुष्ट करती है, कल्पवृक्ष जिस प्रकारसे अपने आश्रित आये हुओंको फल देता है॥६०॥

और करोड़ों बन्धु जिसके करनेको असमर्थ हैं, उसे भगवान् श्रीहरि मनुष्योंके हृदयमें विराजमन होकर उसी प्रकारसे कर देते हैं ॥ ६१॥ वह अत्यन्त ऊंचेको नीचा कर देते हैं और नीचेको ऊंचा कर देते हैं,क्षणकालमें ही हीन मनुष्यको बढ़ा देते हैं और बढ़े हुएको एक मुहूर्तभरमें ही हीनके समान दशावाला कर देते हैं ॥ ६२ ॥ मनुष्य किसी बुरे कार्य करनेकी इच्छासे जो उसको यत्नके साथ पूरा कर सके (अर्थात्) किसी निन्दनीय कार्य करनेकी अभिलाषा करे और उसको किसी प्रकारसे कर ले तो उसका नाश न भी होता हो पर भगवत्की कृपासे स्वयं ही उसका

कोटिभिर्बन्धुभिर्नैव कर्त्तुं शक्यं हितैषिभिः॥हृदयस्थेन हरिणा क्रियते यज्जनस्य हि॥६१॥अत्युन्नतं नमयति नमितं परिवर्द्धयेत्॥ क्षणाद्वर्द्धयते हीनं करोत्येकं क्षणेन हि॥६२॥चिन्तितं पुरुषैः कार्य्यं यत्नैश्च परिरक्षितम्॥ नानापापैर्विरचितं नश्यते न विनाशितम्॥ ॥ ६३॥ तृणीकरोत्यसौ मेरुं तृणमेकं करोति यः॥ अच्छेद्यं छेदयत्याशु अभेद्यं भेदयत्यपि॥६४॥ब्रह्माण्डकोटिस्रष्टा स कटाक्षक्षणमात्रतः ॥ संहर्त्ता पालकश्चैकस्ततः कोऽन्यो भवेद्विभुः॥६५॥ये संस्थिता आत्मनि योगवन्तस्तद्भक्तिभावेन सुखं निविष्टाः॥ स्वर्गादिसौख्यं परिहृत्य दूरादानन्दसन्दोहमवाप्नुवन्ति ॥६६॥ इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे वैयासिके सूतशौनकसंवादो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

नाश हो जाता है॥६३॥विष्णु भगवान् सुमेरु पर्वतको तिनकेके समान और तिनकेको सुमेरु पर्वतके समान करनेको समर्थ हैं तथा अभेद्यको भेदन और भेद्यको अभेद्य कर सकते हैं॥६४॥एकदृष्टिमें ही वह करोड़ों ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि करनेको समर्थ हैं,वही एक पालन करनेवाले और संहार करनेवाले हैं उनके अतिरिक्त और कोई विभु अर्थात् शक्तिमान् नहीं है ॥६५॥जो अपनी आत्मामें [illegible] आश्रयसे उन विष्णुभगवान्की भक्तिमें रत होकर वास करते हैं

वे स्वर्गादिके सुखको भोगते हैं और पीछे परम आनन्दको प्राप्त होते हैं॥६६॥इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे वैयासिके सूतशौनकसंवादे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः॥७॥सूतजी बोले कि इस समयमें गोविन्दभक्तोंके लक्षण कहता हूं जो सब आस्तिक मनुष्य अपने कल्याणकी कामना करते हैं उन्हींके लिये यह चित्त लगाकर सुनने योग्य है॥१॥जो मनुष्य श्रीभगवान् हरिके प्यारे भक्त हैं वे स्वर्ग और अणिमादि आठों सिद्धियोंकी इच्छा नहीं करते उनको स्वतः ब्रह्मलोकमें स्थान और पृथ्वीपर राज्य प्राप्त होता है ॥२॥ अधिक क्या कहें वे मुक्तिकी भी इच्छा नहीं करते।अपने भक्त जिस भाँतिसे श्रीहरिको

सूत उवाच ॥ ये भक्तियुक्ता गोविन्दे तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ आत्मनः श्रेय इच्छद्भिः श्रोतव्यं मनसाऽऽस्तिकैः ॥ १ ॥ न हि वाञ्छन्ति ते स्वर्गमणिमादिकमष्टकम् ॥ ब्रह्मलोकं धरेशत्वं सर्वं कालपरिप्लुतम्॥२॥तथा मुक्तिं न वाञ्छन्ति ये भक्तास्ते हरिप्रियाः॥न तथा तत्प्रिया लक्ष्मीर्वक्षस्थापि निरन्तरम्॥३॥महादेवो नाप्यनन्तो यथा भक्तो हरेः प्रियः॥लोकेऽस्मिन्स्वामिनः सन्ति सेवकैः परिरक्षिताः ॥ न तथाऽयं हरिः स्वामी पाति भृत्यान्स्वयं यतः ॥ ४ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ के भक्ताः का क्रिया तेषां लक्षणं च तथा मुने ॥ कथं हि भजनं विष्णोर्यतः प्रीतो भवेद्धरिः ॥ ५ ॥

प्यारे हैं उस भाँतिसे वक्षःस्थलमें वास करनेवाली श्रीलक्ष्मीजी भी उनको प्यारी नहीं हैं॥३॥विष्णुभगवान्‌को महादेवजी तथा शेषजी भी इतने प्रिय नहीं हैं कि जितने भक्त प्रिय हैं,इस संसारमें यह रीति है कि सेवक अपने स्वामीकी रक्षा करते हैं परन्तु यह श्रीभगवान् वैसे स्वामी नहीं हैं कारण कि वह स्वामी होकर भी सेवकोंकी स्वयं रक्षा करते हैं उनकी आत्मरक्षाविषयक कथाकी तो बात ही क्या है॥४॥ऋषि बोले कि हे मुने। कौन उनके भक्त हैं और उनकी

क्रियाके लक्षण क्या हैं, विष्णुके भजनकी रीति किस प्रकार है जिससे श्रीभगवान् प्रसन्न होते हैं॥५॥इसके उत्तरमें सूतजी बोले कि जो मनुष्य भगवान् हरिके अतिरिक्त दूसरोंकी सेवा नहीं करते हैं और अनन्य भक्तिभावसे समानगुणोंसे युक्त साधु और साधुओंके हृदयके भूषण होकर मुरारिके यशको श्रवण, कीर्तन वा स्मरण करते हैं ॥ ६ ॥जो मनुष्य स्त्री, गृह, प्राण, पुत्र,वित्त और अष्टमंगलको✻त्यागकर श्रीभगवानका ही केवल आश्रय करते हैं इस कारण भगवान् किस प्रकारसे उनको छोड़ सकते हैं॥७॥ साधुओंकी गति आत्मरूपी हरि जिस सर्वदा प्यारे हैं केवल हरिना

सूत उवाच ॥ अनन्यशरणाः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ॥ यशो मुरारेः शृण्वन्ति कथयन्ति स्मरन्ति च ॥ ६ ॥ये कलत्र गृहप्राणान्पुत्रवित्तेष्टमङ्गलम् ॥ त्यक्त्वा तच्छरणं प्राप्ताः स कथं तान् समुत्सृजेत् ॥७ ॥ अहर्निशं प्रियो येषां हरिरात्मा सतां गतिः॥तं विनान्यं न जानन्ति भक्तास्ते च हरेः प्रियाः॥८॥यादृशी च क्रिया येषां तां शृणुध्वं द्विजोत्तमाः॥हर्यर्थं गृहकार्याणि देहागारसुतादयः ॥९॥ मिथो हि नितरां कृष्णश्रवणं कीर्त्तनं प्रियाः ॥ वाचा गायन्ति तल्लीलां कर्णै शृण्वन्ति तद्यशः ॥ १० ॥

मके अतिरिक्त जिनको ज्ञान नहीं है वेही उनके प्यारे भक्त हैं ॥८॥ हे श्रेष्ठब्राह्मणो ! अब भक्तोंकी क्रियाको सुनो. देश, गृह, पुत्रादि और किये हुए कर्मको जिन लोगोंने सभी हरिके चरणोंमें अर्पण कर दिये हैं॥९॥और जो सर्वदा कृष्णनामका कीर्त्तन और श्रवण करते हैं वे ही उनके प्यारे हैं,

✻ अष्टमंगल–अष्टानां मंगलद्रव्याणां समाहारः "लोकेऽस्मिन्मङ्गलान्यष्टौ ब्राम्हणो गौर्हुताशनः ॥ हिरण्यं सर्पिरादित्य आपो राजा तथाष्टमः । " अर्थात् ब्राम्हण, गौ, अग्नि, हिरण्य,घृत, सूर्य, जल और राजा यह आठ प्रकारके मांगलिक द्रव्य हैं।

वचनोंसे उनकी लीलाका गान, दोनों कानोंसे उनके यशका सुनना॥ १०॥ पैरोंसे हरिके क्षेत्रोंमें जाना, हाथोंसे भगवानके मंदिरका मार्जन करना, दोनों नेत्रोंसे भगवानके स्वरूपका दर्शन, नासिकासे सुगंधिका ग्रहण करना॥ ११॥ हरिके चढ़ाये हुए फूलोंको आलिंगन करना, जो भक्तिके साथ विष्णुके चरणामृतको पानकर हृदयको पवित्र करते हैं उन्हें हृदयमें संतोष प्राप्त होता है॥ १२॥ मनमें विष्णुके चरण, उदरमें नैवेद्य, (प्रसाद) माथेमें चन्दन और मस्तकमें तुलसीदल॥ १३॥ श्रीकृष्णमें एकाग्रचित्त होकर उपरोक्त पदार्थोंको प्रतिदिन धारण करना यही सब भक्तोंकी क्रिया हैं॥ १४॥ अब मैं उनके लक्ष

पद्भिर्गच्छन्ति क्षेत्राणि करैर्मन्दिरमार्जनम्॥ पश्यन्ति रूपं चक्षुर्भ्यां गन्धं जिघ्रन्ति नासया॥ ११॥ हरेर्निर्माल्यपुष्पस्यालिङ्गनं ये च कुर्वते॥ भक्त्या पादोदकं पीत्वा यान्ति सन्तर्पणं हृदि॥ १२॥ मानसे चरणं विष्णोर्नैवेद्यमुदरे तथा॥ निर्माल्यचंदनं भाले मस्तके तुलसीदलम्॥ १३॥ धारयन्ति प्रतिदिनं श्रीकृष्णैकाग्रचेतसः॥ एवं क्रिया हि भक्तानां लक्षणानि वदाम्यहम्॥ १४॥ लोकश्रुतिविभक्तानि सर्वशास्त्रोचितानि च॥ आचरणानि चिह्नानि वैजयन्तीव वैष्णवी॥ १५॥ दृश्यन्ते येषु भक्तेषु त एव हि प्रिया हरेः॥ क्षिप्तावमानिता ध्वस्तास्ताडिताः पीडिता अपि॥ १६॥ न विक्रिया प्रभवति प्रतीकारं न कुर्वते॥ हितं कुर्वन्ति सर्वेषां करुणा दीनवत्सलाः॥ १७॥ तितिक्षवोऽल्पवाचो हि महान्तो लोकपावनाः॥ ते प्रियाः श्रीहरेर्भक्ताः प्रेममाध्वीकमक्षिकाः॥ १८॥

णके अनुसार आचरण चिह्न विष्णुकी वैष्णवी नामक वैजयन्ती ध्वजा॥ १५॥ यह जिनमें विद्यमान हों वे ही श्रीभगवानके प्यारे भक्त हैं, बलात्कारके साथ निरादरको पाकर ताडित और पीडित होकर जिनको क्रोध उत्पन्न नहीं होता है॥ १६॥ जो दूसरोंसे बदला लेनेके लिये भी इच्छा नहीं करते, जो सबका हित करते हैं, दीनोंपर दया करते हैं॥ १७॥ क्षमाशील हैं, मधुर बोलनेवाले महत्प्रकृति संसारको पवित्र करनेवाले हैं, वे ही

श्रीभगवान्को मक्खीको शहदके समान प्यारे भक्त हैं॥ १८॥भक्तिभावसे सर्वदा विष्णुका भजन निर्मल अर्थात् पापरहित पवित्र कार्य हैं,भजनके विना मनुष्यका कोई पुरुषार्थ नहीं है, ऐसा विचार करे ॥१९॥ योग, सांख्य, दान; तपस्याका फल इष्टापूर्त×इत्यादि कर्म भी परलोकमें विशेष सुखके देनेवाले नहीं हैं ॥२०॥ सांख्य योगसे केवल ज्ञान और ज्योतिर्मय एकमात्र ब्रह्मका दर्शन प्राप्त हो सकता है, तपस्या व और धर्मके कार्य, दान

भजनं विमलं विष्णोर्भक्तिभावेन चासकृत्॥ पुंसां न पुरुषार्थोऽन्यो भजनादिति चिन्तयेत् ॥१९॥न योगो न च साङ्ख्यं च न दानं न तपःफलम् ॥ नेष्टापूर्त्तादिकं कर्म परलोकेऽतिसौख्यदम् ॥ २० ॥ लभेद्योगेन साङ्ख्येन ज्ञानं ब्रह्मैकदर्शनम्॥तपसा क्रियया दानैरिष्टापूर्त्तैश्च कर्मभिः ॥२१॥ इहामुत्र फलं लब्ध्वा सुखं भुक्त्वा पुनः पतेत्॥तस्मादनित्यमखिलं दूरतः परिवर्जयेत् ॥ २२ ॥ सुखस्य कारणं विष्णोर्भजनं नापरं शुचि ॥ अयमेव परो धर्मस्तथा सर्वोत्तमो विधिः ॥ २३ ॥

और इष्टापूर्त्त कर्मद्वारा॥२१॥इस लोकमें फलको प्राप्त हो फिर सुख भोगनेके अंतमें पुनर्वार पतित होना पड़ता है, इस कारण जो वस्तु अखिल और अनित्य हैं उसको दूरसे ही त्याग कर दे ॥२२॥ विष्णु भगवान्का भजन ही वास्तवमें सनातनके सुखका कारण है इसके समान पवित्र और

× इष्टापूर्त–इष्टं च पूर्तं च द्वयोः समाहारः पूर्वपददीर्घः "एकाग्निकर्म हवनं त्रेतायां यच्च हूयते ॥ अन्तर्वेद्यां च यद्दानमिष्टं तदभिधीयते ।" अपि च–"अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चार्थपालनम्॥ आतिथ्यं वैश्वदेवं च प्राहुरिष्टं च पण्डिताः ।" यह दो प्रकारसे इष्टके लक्षण कहे गये हैं। "वापी कूपतडागादि देवतायतनानि च । अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते" यही पूर्तका लक्षण है

कुछ नहीं है समस्त परम धर्मोंमें यह सर्वोत्तम विधि है॥२३॥जो लोग मन वचन कर्मसे श्रीभगवान्की सेवा करते हैं वे ही अपने जीवनसे शोभित होते हैं और उनका जीवन ही सुजीवन है॥२४॥उसी वाक्यको वाक्य कहा जाता है जो लोग श्रीभगवान्के गुणोंकी व्याख्या करते हैं और जिनके हाथ उनके कर्म करते हैं उन्हींका जन्म सार्थक है,इस प्रकार जो लोग मनसे उनको नित्य स्मरण करते हैं,दोनों नेत्रोंसे दर्शनके निमित्त अभिलाषी रहते हैं॥२५॥ दोनों कानोंसे उनके यशके श्रवण करनेको आसक्त रहते हैं. नासिकासे उनकी चढ़ाई हुई धूपादिकी गंधको ग्रहण करते और जो लोग

जन्म तच्छोभनं जन्तोर्जीवितं च सुजीवितम् ॥ मनोवाक्कायकर्मैर्यत सेव्यते हरिरीश्वरः ॥२४॥ सा वाणी या गुणान्ब्रूते करौ कर्मकरौ हरेः॥मनश्च तं स्मरेन्नित्यं चक्षुस्तद्दर्शनोत्सुकम्॥२५॥ कर्णौ च तत्कथासक्तौ घ्राणं निर्माल्यगन्धहृत्॥गात्रं च पावितं विष्णोः पादोदकनिषेवणैः ॥ २६ ॥ धात्रा यत्नाद्दिव्यं नमितुं यच्छिरो हि विहितं मनुजानाम्॥ देवकीतनयपादसरोजे न नेमे सदाऽपि भारमिवात्र॥२७॥या वदेन्न हरिनामगुणं सा प्रोच्यते विपुलदर्दुरजिह्वा॥तच्छ्रुतेर्हिविमुखावपि कर्णौ भित्तिरन्ध्रमिव कुण्डल कान्तौ॥२८॥केकिपिच्छसदृशे नयने ते ये हरेरखिलसौष्ठवरूपम्॥पश्यतो न न च गन्धविहीनं राजते नु कमलं विफलं हि ॥२९॥

विष्णुभगवान्के चरणोदकको पान कर शरीरको पवित्र करते हैं वे ही सार्थक और धन्य हैं॥२६॥ विधाताने बड़े यत्नके साथ स्वर्गके द्रव्योंसे मनुष्यके मस्तकको नमस्कार करनेके लिये बनाया है,यदि वह मस्तक देवकीनंदन भगवान्के चरणकमलोंमें न नवावे तो उसका शिर केवल भारस्वरूप है॥२७॥और जो लोग भगवान्के गुणोंकी व्याख्याको नहीं करते उनकी जिह्वा मेंढककी जिह्वाके समान है;कृष्णकी कथाको सुने विना दोनों कान चाहे कुंडल इत्यादिसे भूषित हों परन्तु वह घरकी दीवारोंमें सुराखकी समान हैं ॥२८॥ जिन विशालनेत्रोंने हरिके सौम्यस्वरूपका दर्शन नहीं किया

वह नेत्र मोरके पंखके समान हैं, अर्थात् सूर्यहीन कमल जिस प्रकार निष्फल है, यह भी उसी प्रकार हैं॥ २९॥ जो दोनों चरण श्रीभगवान्के मंदिरको न गये तो वह काठके बने हुएके समान हैं अर्थात् उनका नाम अचल ही हो सकता है; और जो दोनों हाथ कंचन इत्यादिसे भूषित हैं और उन्होंने विष्णु भगवान्की पूजा न की वह भी उनके समान स्थावरोंमें गिने जाते हैं॥ ३०॥ जो लोग पृथ्वीमें जन्मको लेकर इस प्रकारसे अपनी २ इंद्रियोंको विष्णु भगवानके अर्पण करते हों वे ही यथार्थ भक्त हैं, और जो दूसरे लोग दुष्टबुद्धि विषयभोगमें आसक्त हैं उनका जन्म मनुष्यजातिमें निष्फल है॥ ३१॥ इति

भूरुहावयवनिर्मितपादौ यौ न गच्छत इमौ हरिसद्म॥ तादृशौ कनकभूषितहस्तौ यौ हरेर्न कुरुतः परिचर्य्याम्॥ ३०॥ इत्थं विष्णाव र्पितानीन्द्रियाणि यैस्तैर्भक्तैर्जन्म लब्धं पृथिव्याम्॥ येऽन्ये दुष्टा विषयासक्तचित्ता मनुष्याणां निष्फलं जन्म तेषाम्॥ ३१॥ इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे वैयासिके सूतशौनकसंवादे नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥ मुनय ऊचुः॥ क्वास्ते कृष्णः सदा तस्य क्रीडा कुत्र पुरीश्वरी॥ प्रेष्ठः क्व पर्वतश्रेष्ठः कः का च सरिदुत्तमा॥ १॥ को ग्रामः किं वनं विद्वंस्त्वं तन्नो ब्रूहि तत्त्वतः॥ एवं पृष्टो मुनि श्रेष्ठः प्रतिपूज्य वचोऽब्रवीत्॥ २॥ सूत उवाच॥ माथुरं मण्डलं विप्र योजनानां च विंशतिः॥ चक्रं सुदर्शनं नाम तस्योपरि विराजते॥ ३॥

श्रीआदिपुराणे सूतशौनकसंवादे भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः॥ ८॥ मुनि बोले कि श्रीकृष्णभगवान् कहाँ निवास करते हैं, और उनकी क्रीड़ाका प्रधान स्थल और पुरी कौनसी है? और कौनसा पर्वत श्रेष्ठ है? नदियोंमें प्रधान नदी कौनसी है?॥ १॥ कौनसा ग्राम और कौनसा वन उनको श्रेष्ठ अर्थात् प्यारा है, और वह कहाँपर स्थित हैं? हे विद्वन्! सो आप मुझसे यथारीतिसे वर्णन करो; इस प्रकार पूछे जानेपर मुनियोंमें श्रेष्ठ सूतजी पूजाके विधानके पीछे कहने लगे॥ २॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो! बीस योजनके विस्तारवाली मथुरा पुरी है उसके ऊपर सुदर्शननामका चक्र विरा-

जमान है ॥ ३ ॥ वहाँ साक्षात् श्रीभगवान् स्वयं विराजमान रहते हैं, वह उस अपने प्यारे स्थानको कभी नहीं छोड़ते ॥४॥ उस स्थानके समान स्थान देवताओंको भी दुर्लभ है, सब लोकोंसे आदर पाया हुआ पवित्र और वैकुण्ठके समान उत्तम है ॥ ५ ॥ इसकी समान श्रेष्ठभूमि और कहीं भी कल्पित नहीं हुई,और कृष्णके समान समय भी कोई उत्पन्न करनेमें समर्थ न होगा,वह स्थान योगी और याज्ञिकोंको भी दुर्लभ है॥६॥वहाँ नदियोंमें श्रेष्ठ कालिन्दीके तटपर प्रियाके साथ उस मधुपुरीमें श्रीभगवान् विराजमान हैं ॥ ७ ॥ उस कनकभूमिके ऊपर श्रेष्ठ गोवर्धन नामका पर्वत विरा

आस्ते यत्र हरिः साक्षान्नित्यं सन्निहितःस्वयम्॥न मुञ्चति कदाचित्तत् स्थानं स्वीयं सदा प्रियम् ॥४॥ तत्स्थानसदृशं स्थानं त्रिदिवेऽपि च दुर्लभम्॥सर्वलोकादृतं शुद्धं वैकुण्ठेन समं हितम् ॥५॥ न भूमिः कल्पिता श्रेष्ठा नकालकलितो जनः ॥ योगिनां याज्ञिकानां च तत्स्थानमतिदुर्लभम्॥६॥ तत्र रम्या मधुपुरी प्रिया भगवतो हरेः॥सरिद्वरायाः कालिन्द्यास्तटे वासमुपेयुषी॥७॥ हेमभूर्भूधरश्रेष्ठो गोवर्द्धन इति श्रुतः ॥ यस्मिन्देशेऽस्ति परमः पुण्यवद्भिर्निषेवितः॥८॥यं दधारैकहस्तेन कृष्णो वामेन लीलया ॥ गोपगोपीगवाविष्टा स्नानार्थं च निषेविता ॥९॥कालिन्दी हि नदीश्रेष्ठा रवेः पुत्री हरेः प्रिया॥ वृन्दावनं नाम वनं यस्यास्ति सुखसद्मवत् ॥ १० ॥ सर्वं सेवितकृष्णं स्यात्क्रीडा यत्र सदा हरेः ॥ गोपानां वसतिस्तत्र नन्दग्राम उदाहृतः ॥ ११ ॥

जमान है,वहाँ पुण्यात्मा मनुष्योंने आश्रय किया है॥८॥श्रीकृष्णने केवल लीलासे ही अपने बाँये हाथकी कन उँगलीपर उस पर्वतको उठा लिया था, इसके पीछे सूर्यकी पुत्री नदियोंमें श्रेष्ठ यमुनाजी श्रीभगवान्को अत्यन्त प्यारी हैं उन गोपियोंके गव्यनष्ट अर्थात् मंट इत्यादिसे प्रभुको स्नान कराया जाता है,हरिका सुखसदनके समान वृन्दावन नामका वन है ॥९॥१०॥ यहाँके सभी पदार्थ श्रीकृष्णकी सेवाके निमित्त हैं और उस स्थानमें हरि सर्वदा

क्रीडा करते हैं, इसके पीछे नन्दग्राम हैं, वहां गोपोंकी बसती है॥ ११॥ उस ग्रामके रहनेवाले अष्टसिद्धपुरुष भगवान्‌की सेवा करते हैं, श्रीकृष्णकी कृपासे वे महात्मा मुक्तिकी भी इच्छा नहीं करते ॥ १२॥ भजनपरायण मनुष्योंको उत्तम वैकुण्ठ और मुक्ति अर्थात् सालोक्यकी प्राप्ति होती है भगवान् श्रीकृष्ण भक्तोंको इस प्रकारसे मुक्ति देकर उनके ऋणसे मुक्त होते हैं॥ १३॥ इस प्रकार योगियोंको योगसिद्धि, कामियोंको सकल काम और मुनियोंको परममुक्ति दिये विना हरिका छुटकारा नहीं होता॥ १४॥ यह लोग सभी अपने २ अभीष्टको प्राप्तकर वंचित हो जाते हैं वह निष्कामियोंके ध्यानमें

सिद्धा अष्टौ निषेवन्ते प्रभुं तद्ग्रामवासिनः ॥ न कामयन्ते ते मुक्तिं कृष्णानुग्रहशालिनः ॥ १२ ॥ भजतां तु विभूनां च वैकुण्ठे मुक्तिरुत्तमा॥ यां दत्त्वा भगवान्कृष्णो भक्तेभ्यो ह्यनृणो भवेत्॥ १३॥ योगिभ्यो योगसंसिद्धिं दत्त्वा कामांश्च कामिनाम्॥ मुनिभ्यः परमां मुक्तिं हरिर्दत्त्वाऽनृणो भवेत् ॥ १४ ॥ एते हि वञ्चिताः सर्वे लब्धं चैषामभीप्सितम् ॥ निष्कामेभ्यो निजं रूपं ध्यानगम्यं चतुर्भुजम् ॥१५॥ न दानैर्न तपोभिश्च तथा योगादिसाधनैः ॥ न दृश्यं भक्तिभावैस्तु दृश्यं वृन्दावनं वनम् ॥ १६ ॥ वनानि द्वादश बुधैः कथितानीह भूतले ॥ नामानि तेषां शृणुत वदाम्युद्देशतः स्फुटम् ॥ १७ ॥ आद्यं मधुवनं तत्र द्वितीयं तालसंज्ञकम् ॥ तृतीयं कुमुदं नाम बहुलाख्यं चतुर्थकम् ॥ १८ ॥

अगम्य अपना चतुर्भुजरूप अर्पण करते हैं॥ १५॥ दान, तप और योगादिक साधन करनेसे उस वृन्दावनका दर्शन होना दुर्लभ है, परन्तु भक्तिभावसे ही इस परमलीलायुक्त वृन्दावनका दर्शन हो सकता है॥ १६॥ इस पृथ्वीमें श्रीकृष्णकी लीलाके अर्थ पंडितोंने बारह वनोंका वर्णन किया है, इस स्थानमें केवल उपदेशसे स्फुटके निमित्त समस्त वनोंके नाम क्रमशः प्रकाश करते हैं तुम श्रवण करो ॥ १७॥ पहला मधुवन, दूसरा ताल वा ताड़वन, तीसरा

कुमुद, चौथा, बहुलाख्य वन ॥ १८ ॥ पांचवां खदिर वन,छठा बिल्वकनामक वन, सातवां लोहसंज्ञक वन, आठवां भांडीर वन॥१९॥ नवां भद्रक वन, दशवां काम्यकवन,ग्यारहवां छत्र वन और बारहवां वृन्दावन ही आदि वन है॥२०॥वहां [illegible] विराजमान हैं, उनके बीचमें परम विष्णु शोभा पा रहे हैं, सम्पूर्ण वनोंमें वृन्दावन ही प्रधान वन है ॥२१॥ऋषियोंने पूछा कि मथुरापुरीके [illegible] वृन्दावन कहां पर है और वह श्रीकृष्णको

खादिरं पञ्चमं चैव षष्ठं बिल्वकसंज्ञितम् ॥ सप्तमं लोहसंज्ञं तु भाण्डीरं चाष्टमं स्मृतम्॥१९॥नवमं भद्रकं नाम कामिकं दशमं वनम् ॥ एकादशं छत्रवनं वृन्दावनमथादिमम्॥२०॥तत्र वै द्वादशादित्यास्तेषु विष्णुः परो मतः॥तथा वनेषु सर्वेषु परं वृन्दावनं वनम् ॥२१॥ ऋषय ऊचुः ॥ कुतो वृन्दावनं चेदं श्रेष्ठं माथुरमण्डले ॥ हरेरतिप्रियं कस्मात्कथं क्रीडति नित्यशः ॥ २२ ॥ सूत उवाच॥शृण्वन्तु मुनयः सर्वे सुगोप्यं वचनं मम ॥ न कस्याग्रेऽपि कथितं साम्प्रतं कथयामि वः॥२३॥ पुरावृत्तं तु मुनयो दृष्टं मे महदद्भुतम्॥एकदा नारदो यातः श्वेतद्वीपमनुत्तमम् ॥२४॥यत्रास्ते भगवान्विष्णुर्बिभ्रच्छब्दमयं वपुः॥ दर्शनार्थं भगवतो गतः स परमात्मनः ॥ २५ ॥

इतना प्यारा क्यों है, और किस लिये वे वहां सर्वदा क्रीड़ा करते हैं॥२२॥सूतजी बोले कि हे मुनियो ! तुम मेरे अत्यन्त गुप्त वचनोंको श्रवण करो मैंने आजतक यह वृत्तान्त किसीके निकट नहीं कहा है परन्तु वह समस्त आपलोगोंके समीप इस समय कहता हूं ॥२३॥ हे ऋषियो ! मैंने पूर्वके इतिहासमें एक बड़ा अद्भुत चरित्र देखा है एक समय देवर्षि नारदजी अत्युत्तम श्वेतद्वीपको जा रहे थे॥२४॥जहां शब्दमय विष्णु भगवान्

विराजमान हैं देवर्षि नारद वहां भगवान् विष्णुके दर्शनके लिये गये॥२५॥ नारायणने ऋषिको आया हुआ देखकर इस प्रकारसे उनके आदरको बढ़ाया कि हे मुने ! तुम्हारा आना मंगलकारी हो, आइए आसनको ग्रहण कीजिये ॥२६॥ हमारे भक्तोंके बीचमें तुम्हारे समान प्यारा भक्त और कोई नहीं है, संसारमें भ्रमण करनेके समय सर्वत्र हमारे गुणोंका गान करते हुए ॥२७॥ विषयमें आसक्त दीन मनुष्योंके उद्धारकी इच्छासे दर्शन स्पर्शनादिसे उनको कृतार्थ करते हो ॥२८॥ हे मुने ! कहो तो इस समय मनुष्य लोकके क्या समाचार हैं, तुमने कहांपर कौनसा अद्भुत चरित्र देखा

दृष्ट्वा नारायणस्तत्र तमित्थं समवर्द्धयत्॥मुने सुस्वागतं तेऽस्तु आगच्छोपविशस्व च॥२६॥भवतो मे प्रियश्चान्यो भक्तेषु न हि विद्यते॥लोकपर्यटने गायन्गुणान्मम समन्ततः॥२७॥उद्धरिष्यन्दीनजनान्विषयेष्वतिरागिणः॥दर्शनस्पर्शविषयैस्तान्कृतार्थान्करोषि वै ॥२८॥ इदानीं मानुषे लोके का कथा वद मे मुने ॥ किंचित्त्वयाऽद्भुतं दृष्टमनुभूतमथ क्वचित् ॥२९॥ पृष्टः स तेन मुनयो जगदीशेन भास्वता॥तमवोचदिदं विष्णुं लोकवृत्तविदीश्वरम् ॥ ३० ॥ अधुना त्वद्दर्शनेन चित्तं मे विशदीकृतम् ॥ चरँल्लोकांस्तवोद्गायँल्लीलां भुवनपावनीम् ॥ ३१ ॥ अनुभूतं शृणु विभो यत्किञ्चिन्मेऽधुना हरेः ॥ भारते मानसं नाम सरोऽस्ति पूतमुत्तमम् ॥ ३२ ॥

वा सुना सो कहो ॥२९॥ हे ऋषिगण ! उन तेजोमय जगदीश्वरके पूछने पर नारदजी उनसे कहने लगे, कि हे संसारके चरित्रोंको जाननेवाले भगवन् विष्णो ! तुम्हारे निकट मैं और क्या संसारकी वार्ता कहूं ॥३०॥ अब तुम्हारे दर्शनसे मेरा चित्त निर्मल हो गया, तुम्हारी संसारको पवित्र करनेवाली लीलाको ऊंचे स्वरसे गान करते हुए त्रिलोकीमें घूमनेके समय ॥ ३१॥ मैंने जो कुछ देखा है सो इस समय कुछ थोड़ासा

वर्णन करता हूं, श्रवण करो, भारतवर्षमें मानस नामका एक उत्तम पवित्र सरोवर है।।३२।।उस अगाध निर्मल और जलयुक्त सरोवरमें मैंने दश मुनियोंको देखा वे सब गुणोंसे परे गुणोदय परमात्माके ध्यानमें मग्न थे ।।३३।। और परमतत्त्वसे युक्त होकर, श्रवण, दर्शन, वाक्य और समयको एक साथ ही छोड़े हुए थे । ये कभी बोलते हैं अथवा नहीं इसको देखनेके लिए मैंने उस स्थानपर बहुत समय व्यतीत किया।।३४।।परंतु उनके मुखसे ब्रह्मके नामतकका भी उच्चारण न सुना, तब मैं वहांसे शंकितचित्त हो चल दिया; हे हृषीकेश! वे ज्ञानवान् महात्मा किसका ध्यान करते हैं, वे क्यों इस

अगाधमविषं तत्र दृष्टा मे मुनयो दश ॥ ध्यायन्तः परमात्मानं गुणातीतं गुणोदयम् ॥३३॥न शृण्वन्ति न पश्यन्ति न वदन्ति परं गताः॥स्थितोऽस्म्यहं चिरं तत्र कदाचित्प्रवदन्ति चेत् ॥ ३४॥ एते हि नाब्रुवन्ब्रह्म संविग्न आगतस्ततः ॥तद् ब्रूहि त्वं हृषीकेश किं नु ध्यायन्ति ते बुधाः ॥ सरस्तीरं कथं याताः के ते वा वद मे प्रभो ॥३५॥ अनिरुद्ध उवाच ॥नारदाद्भुतमेतच्च कथनीयं न हि क्वचित्॥तथाऽपि च तव स्नेहात्कथयिष्यामि तच्छृणु॥३६॥ते ध्यायन्ति महात्मानः कृष्णं वृन्दावने स्थितम् ॥ गोपिकारमणं कान्तं परं लावण्यभाजनम्॥३७॥कदाचिद्ध्यायमानानामाविरासीच्चतुर्भुजः॥तं दृष्ट्वा परमात्मानं वैकुण्ठेशं रमापतित्॥३८॥

सरोवरके किनारेपर आये हैं? हे प्रभो! इसका वृत्तान्त वर्णन कर आप मेरे सन्देहको दूर कीजिये॥३५॥ अनिरुद्धजी बोले* कि हे नारद! यह बड़ा ही अद्भुत विषय है, कभी किसीसे प्रकाश करने योग्य नहीं, परंतु तो भी मैं तुम्हारे स्नेहके वशसे कहता हूं तुम श्रवण करो ।।३६।। वे महात्मा वृन्दावनमें स्थित गोपिकारमण कान्तिमान् लावण्ययुक्त परमपुरुष श्रीकृष्णका ध्यान करते हैं ॥३७॥ उन ध्यानपरायण महापुरुषोंके सम्मुख कदा

---

* अनिरुद्ध—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध परमेश्वरके ये चारों व्यूह हैं, अनिषेध्य अतिचञ्चल चित्तके अधिदेवको ही अनिरुद्ध नामक अंश कहा है ॥

चित् भगवान् प्रभु चतुर्भुजरूपसे प्रकट हुए वे उन वैकुण्ठके अधिपति रमानाथको देखकर ॥ ३८ ॥ आसनसे उठ उनकी पूजाकर परमभक्तिके साथ हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे॥ ३९ ॥ तब भगवान् उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर बोले कि हे महात्माओ! आप अपनी इच्छानुसार वर मांगो॥ ४० ॥ हमारे दर्शनसे ही जीवोंको मंगल और मोक्षकी प्राप्ति होती है॥ ४१ ॥ सम्पूर्ण महात्मा बोले कि हे नारायण ! यदि आप वर देनेको सन्नद्ध हुए हैं तब हम सबकी यही प्रार्थना है कि आपका महत्स्वरूप यही है या और किसी प्रकारका है और आप किस लोकमें वा पृथ्वीके किस टुकड़ेमें निवास

अर्चयित्वा महात्मानः प्रत्युत्थानपुरःसरम् ॥ तष्टुवुः परया भक्त्या पुटिताञ्जलयः प्रभुम् ॥ ३९ ॥ प्रसन्नो भगवाँस्तेषां तपसा बाधितोऽब्रवीत् ॥ यदभीष्टं वरं शश्वद्वरयध्वं महत्तमाः ॥ ४० ॥ मद्दर्शनं हि भूतानां श्रेयसां परमो विधिः ॥ ४१ ॥ महत्तमा ऊचुः ॥ यदि त्वं वरदो विष्णो चास्माकं तु वरोऽधुना ॥ किं तु रूपं ह्येतदेव चान्यद्वाऽपि महत्तमम् ॥ को लोकः का प्रिया भूमिः क्व निवासो वदाधुना ॥ ४२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अस्ति मे परमं रूपमचिन्त्यपदसौख्यदम् ॥ तन्नित्यं क्रीडते यत्र बल्लवीगणवेष्टितम् ॥ ४३ ॥ भूलोके भारते वर्षे माथुरे मण्डले शुभे ॥ भूमिः पवित्रानिरां तत्र वृन्दावनं महत् ॥ ४४ ॥ गोवर्द्धनो गिरिवरो नन्दग्रामः क्षमी प्रभुः ॥ प्रिया सरिद्वरा यत्र कालिन्दी शमनस्वसा ॥ ४५ ॥

करते हैं, और सर्वदा किस स्थानमें विवास करते हैं सो आप इस समय कहिये॥ ४२ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, वर्तमान रूपके अतिरिक्त हमारा एक और परमरूप है उसके दर्शन करते ही अचिन्त्यपद और परमसुखकी प्राप्ति होती है इस प्रकार गोपियोंसे युक्त होकर वहां मैं नित्य क्रीड़ा करता हूं ॥ ४३ ॥ पृथ्वीके बीच भारतवर्षमें वह पवित्र मथुरानामकी पुरी स्थित है, उस अत्यन्त पवित्र भूमिमें बड़ा वृन्दावन है ॥ ४४ ॥ और वहां पर्वतोंमें श्रेष्ठ

गोवर्द्धन पर्वत है, उसके समीपभागमें नन्दग्राम है और यमराजकी भगिनी श्रीहरिकी प्यारी नदियोंमें श्रेष्ठ श्रीयमुनाजी वहां बह रही हैं॥४५॥ भगवान्‌के यह वचन सुन वे मुनिश्रेष्ठ उत्कण्ठाके साथ उस स्वरूपके दर्शन करनेके निमित्त उद्यत हुए, इसके उपरांत मधुसूदन रमापति विष्णुभगवान् उनसे बोले ४६ कि आज तुमने जैसी तपस्यासे हमारी भलीप्रकार पूजा की है, ऐसी करोड़ तपस्याके द्वारा भी इस प्रकारके रूपका दर्शन होना असंभव था ॥४७॥ इसके उपरांत यह कहकर विष्णुभगवान् अन्तर्धान होकर दीप्तिमान् स्वर्गको चले गये, इसके पीछे वे सम्पूर्ण मुनि इंद्रियोंको जीतकर सावध[illegible] करने

इत्याकर्ण्य मुनिश्रेष्ठाः सोत्कण्ठा दर्शनोद्यताः ॥ ततस्तानब्रवीद्विष्णुर्माधवो मधुसूदनः ॥ ४६ ॥ यादृशेनाद्य[illegible] राधितोऽस्म्यहम् ॥ एतादृशानां तपसां कोटिभिर्नापि लभ्यते ॥ ४७॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विष्णुः स्वर्लोकं भास[illegible] चित्तं समाधाय ध्यानं चक्रुरतन्द्रिताः ॥ ४८ ॥ पुनस्ततोऽतितपतामाविरासीत्तथा प्रभुः । तथाऽपि न वरं[illegible] कृपान्वितः ॥ ४९ ॥ शरीराणि गृहीतानि कालकुक्षौ पुनः पुनः ॥ न कर्मजनितान्येव तपसा संचित[illegible] अस्थीनि न विनश्यन्ति देहान्तरमनुक्रमात् ॥ कालो हि गमितो यावान्करकांश्च यथाऽमिताः ॥ ५१ ॥ [illegible]

लगे ॥४८॥ इस प्रकारसे घोर तपस्याके करनेसे विष्णुभगवान् फिर स्थिर न रहकर पहलेके समान उनके समीप आकर प्रक[illegible] समय कृपायुक्त होकर उनको अभीष्ट वर न दे सके ॥४९॥ इधर बहुत दिनोंतक तपस्या करनेसे बीच २ में उनका देह ग[illegible] गर्भमें बारंबार नये २ शरीरोंको ग्रहण करने लगे, उनके वे नवीन शरीर कर्मजननी माताके गर्भसे उत्पन्न नहीं हुए थे, वे स्व[illegible] थे ॥५०॥ जब वे शरीर धारण करते थे तब उनकी हड्डियें नष्ट नहीं होती थीं, जितना समय बीतने लगा उसीके अनु[illegible]

अर्थात् मस्तककी खोपड़ी बननें लगी ॥५१॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! वही अब प्रकाश करता हूं सावधान होकर श्रवण करो। उन[illegible]
करोड़ २ सहस्र थी ॥ ५२ ॥ हे मुनिराज! इस प्रकार प्रत्येक कल्पमें शरीर बने हैं, जब इन सबका विनाश हो जायगा तब ॥ ५३ ॥ वृन्दावन
प्राप्त होगा और उनकी तपस्या छूट जायगी । प्रेम और भक्तिपरायण होकर वे महात्मा नवीन देहको धारण कर ॥५४॥ अत्यन्त सुखको भोगेंगे
यह वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारदजी उनके दर्शनके लिये अत्यन्त उत्कंठित हुए ॥ ५५ ॥ और वृन्दावन धामको स्मरण करते हुए बारम्बार

तद्वदामि मुनिश्रेष्ठ शृणुष्वावहितोऽधुना ॥ एकैकस्य शरीराणि कोटिकोटिशतानि च ॥५२॥ पतितानि मुनिश्रेष्ठ कल्पे कल्पे
विपर्य्ययम्॥एतावन्ति गमिष्यन्ति शरीराणि यदा मुने ॥५३॥ तदा वृन्दावनं प्राप्य तपस्त्यागो भविष्यति ॥ प्रेमभक्ति[illegible]नां
च शरीराणिनवानि हि॥५४॥भविष्यन्ति न संदेहःसुखं प्राप्स्यन्ति ते भृशम्॥इत्याकर्ण्य मुनिश्रेष्ठो द्रष्टुमुत्कण्ठितोऽभवत्॥[illegible]॥
स्मरन्वृन्दावनं भूयो नारदः प्रणनाम ह ॥ त्वमाज्ञापय गच्छामि ह्यनिरुद्धस्त्वथाब्रवीत् ॥ ५६ ॥ कथं मुने त्वया ज्ञातमश्रुत
कारणं परम् ॥ प्रयाहि त्वं महारण्ये स्नात्वा सरसि मानसे ॥५७॥ कदा हि भगवान्कृष्णो दर्शनं दास्यति स्वयम् ॥ इत्युक्तो
लोकगुरुणानारदो मुनिसत्तमः॥५८॥वदन्नित्थं प्रतस्थे स हृदि ध्यायन्हरिं ततः॥तत्र दृष्ट्वा सरो दिव्यं नानाद्रुमसमाकुलम् ॥५९॥

प्रणाम करने लगे, और वहां जानेके निमित्त भगवान् प्रभुकी आज्ञाकी अपेक्षा करने लगे, इसके उपरान्त भगवान् बोले ॥५६॥ कि हे मुने ! यह
परम कारण तुमसे किस कारणसे आजतक छिपा हुआ था, तुम मानस सरोवरमें स्नानकर उस महावनको प्रस्थान करो ॥ ५७ ॥ मुनिश्रेष्ठ नार
दजी संसारके गुरुसे इस प्रकार उपदेश प्राप्तकर"हाय!भगवन् श्रीकृष्ण कब हमें स्वयं दर्शन देंगे"॥५८॥इस प्रकारसे कहते २ भगवान् श्रीहरि

का हृदयमें ध्यान करते हुए चले । इसके उपरांत उन्होंने जाकर देखा कि वह दिव्य सरोवर अनेक द्रुम लताओंसे युक्त ॥ ५९ ॥ पवनसे सेवित, हंस, सारस वा चकवा चकवियोंसे युक्त विचित्र कमलोंसे शोभायमान नृत्यपरायण भौंरोंसे सुशोभित बड़े भारी मानसके समान जलयुक्त सरोवरको देखते हुए, नारदजीने उस जलाशयको देखकर उसी समय उसमें स्नान करनेके लिये प्रवेश किया ॥६०॥६१॥ इसके पीछे वे स्नान करते ही कन्यारूपी हो गये, परन्तु उनका लिंग नहीं गया अर्थात् वे कन्यारूपको प्राप्त होकर भी पहले जिस प्रकार लिंगवान् थे वैसे ही रहे इस विषयमें

महन्मनःप्रलयजलं वायुना परिसेवितम् ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपसेवितम् ॥ ६० ॥ विचित्रकमलासन्नं नृत्यद्भ्रमरसकुलम् ॥ दृष्ट्वैव तत्सरः शीघ्रं स्नानार्थं प्राविशत्तदा ॥ ६१ ॥ स्नात एवाभवत्कन्या नासीत्तल्लिङ्गसंस्मृतिः ॥ दृष्ट्वा कन्यातनुं स्वीयां विस्मयः परमो ह्यभूत् ॥ ६२ ॥ तदा कन्यास्वरूपेण नारदस्त्वित्यचिन्तयत् ॥ कुतोऽहं संस्थिता कन्या को वा भावो ह्यभून्मम ॥ ६३ ॥ एवं च कन्यातन्वा तु विस्मयः परमो ह्यभूत् ॥ तदा कन्यास्वरूपिण्या ह्योदिता ह्यहमेकया ॥ ६४ ॥ दृष्ट्वा च कन्यकां सा मामपृच्छदिदमद्भुतम् ॥ काऽसि कस्यासि वामोरु किमर्थमिह तिष्ठसि ॥ ६५ ॥

भांति उत्पन्न हुई और उस कन्यारूपी अपने शरीरको देखकर अत्यंत चिन्ता और विस्मयको प्राप्त हुए ॥ ६२ ॥ उस समय नारद कन्यारूपी होकर यह चिन्ता करने लगे कि हमारा इस समय किस वस्तुका अभाव हो गया जिससे मैं कन्यारूपी हो गया हूं॥६३॥इस प्रकार कन्याके शरीरसे हमारे विस्मयकी चिन्ता अत्यन्त प्रबल हो रही थी उस समय मेरे समान एक दूसरी कन्याने मुझसे पूछा ॥६४॥ उसने मुझे कन्या देखकर पहले यह अद्भुत प्रश्न किया कि हे वामोरु! तुम कौन हो ? किसकी स्त्री हो ? और इस स्थानपर किस कारणसे विराजमान हो ? ॥ ६५ ॥

क्या तुम इस स्थानपर किसीको ढूँढ रही हो,या तुम्हारा चित्त विस्मयको प्राप्त हुआ है?तुम्हारे मनमें जो वार्ता है उसे अब मेरे निकट कहो ॥६६॥आज तुम्हारे दर्शनसे मेरे मनमें अत्यन्त प्रीति उत्पन्न हुई है; उस कन्याके ऐसे अद्भुत वचन सुनकर मानको बढ़ानेवाली ॥६७॥ मानससरोवरसे उत्पन्न हुई नारद नाम्नी कन्या इस प्रकारसे यह वचन बोली कि मैं तुमको गुणवती देखकर अत्यन्त वशीभूत होगई हूं॥६८॥इस कारण अनुरागके साथ आजतक जो कुछ

किमन्वेषयसीह-त्वं किं चित्ते विस्मितं त्विह ॥ कथय त्वमिदं मेऽद्य यत्ते मनसि वर्त्तते ॥ ६६ ॥ अद्य ते दर्शनात्प्रीतिर्मनसाऽतिप्रवर्त्तिता ॥ इत्याश्रुत्य वचस्तस्याः कन्यायाः सा च मानदा ॥६७॥ उवाच वचनं चारु कन्या या मानसोद्भवा॥अहं ते गुणसंपत्त्या जाताऽस्मि वशवर्तिनी ॥६८॥ अतो हार्दं प्रकथये यदुद्यं परिवर्त्तते ॥ शृणु मे वचनं भीरु यद्दृष्टाऽहं त्वयाऽधुना ॥ ६९ ॥ वृन्दावनगता भूमिः पवित्राऽऽनन्दसद्म च ॥ सर्वसौख्यप्रदः साक्षात्कृष्णो वृन्दावनेश्वरः ॥ ७० ॥ श्यामाङ्गसुन्दरः सौम्यः साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥ पीताम्बरधरः स्रग्वी शिखिपुच्छावतंसकृत् ॥ ७१ ॥ कोटीन्दुसूर्य्यसदृशो गोपिकावृन्दसंवृतः ॥ क्रीडन्नहो रमयति राधिकां वृषभानुजाम् ॥ ७२ ॥

चरित्र हुआ है वह मैं तुमसे यथावत् कहती हूं. तुम जिस कारणसे आज मुझको इस स्थानमें देखती हो हे भीरु! उसी वार्ताको श्रवण करो ॥६९॥ वृन्दावनकी भूमि अत्यन्त पवित्र और आनंदको देनेवाली है,सर्व सुखके देनेवाले साक्षात् श्रीकृष्ण उस वृन्दावनके सनातन स्वामी होकर विराजमान हैं ॥७०॥ वे श्यामशरीर; सुन्दर, सौम्य,साक्षात् कामदेवके मनको मोहित करनेवाले, मनमोहन, पीताम्बर धारण किये,मोरके पंखको शिरमें लगाये ॥ ७१ ॥ करोड़ों सूर्य और चन्द्रमाके समान कान्तिमान् श्रीकृष्णके साथ मिलकर क्रीडा करते हुए वृषभानुकी पुत्री राधाजीके साथ भोग विलास करते हैं॥७२॥

वहां दिनरात इस प्रकारकी क्रीड़ा होती रहती है, क्षण कालको भी उपराम नहीं होता प्रत्येक कुञ्जोंमें फूलोंकी सुन्दर शय्यायें बिछ रही हैं॥७३॥जिसस्थान पर इस प्रकारके आनंदरसका समुद्र प्रवाहित होता है, उस स्थानमें देवताओंके अग्रणीयका भी जाना असंभव है॥७४॥और योगियोंके सामान्य तप दान करनेकी वो बात दूर जाने दो बरन् स्वयं श्रीकृष्णभगवान्के भक्तोंको भी जानेका वहां अधिकार नहीं है॥७५॥उत्तम विलासवाली आठ स्त्रियें वहां स्थित रहकर प्रभुकी परिचारिका हो दौत्यकर्म करती हैं, वे इस वनमें भगवत्का दर्शन करती हुई आनंदके साथ घूमती हैं॥७६॥व्रजके गोपाल भी भूलसे इस

क्षणं नोपरमेत्तत्र क्रीडते च दिवानिशम् ॥ कुञ्जे कुञ्जे लताकुञ्जे शय्याः कुसुमनिर्मिताः ॥७३॥ इत्यानन्दमया यत्र प्रवहन्ति रसाब्धयः॥यत्रैवामरमुख्यानां न प्रवेशः कथञ्चन॥७४॥ के योगिनो वराका हि तपोदानपराश्च ये॥श्रीपतेरपि भक्तानां सुप्रवेशः कथञ्चन॥७५॥दूतिकाः सुविलासिन्यश्चाष्टौ स्युः परिचारिकाः॥ताश्चैवास्मिन्वने रम्ये विचरन्ति मुदाऽन्विताः॥७६॥गोपाला श्चैव क्रीडन्ते देवनार्यः समन्ततः॥ प्रमादेतत्स्थलं प्राप्य सानन्दं गोभिरन्वितम्॥७७॥ जलस्थलवनक्रीडारासलीलाविभेदतः ॥ वृषभानुसुता तत्र क्रीडते स्वसखीजनैः ॥७८॥ गौराङ्गी नीलवसना स्वर्णरत्नविभूषिता ॥ सुनूपुरपदाघातमुखरीकृतदिङ्मुखा ॥ ७९ ॥ किमहं वर्णये तत्र यत्सुखं सम्भवेन्मम ॥ करोमि किं दर्शनार्थं वद सौम्ये कृपान्विते ॥ ८० ॥

स्थानमें आगये थे सो वे भी यहां आकर गायोंके साथ, और देवकन्या ये प्रभुके इधर उधर निरन्तर आनंदसे क्रीड़ा करती हैं ॥७७॥ गोरे अङ्गवाली नीले वस्त्र धारण किये सुवर्ण और रत्नोंसे विभूषित वृष[illegible]राधिकाजी अपनी सखि[illegible]लकर अपने चरणोंमें पहने हुए नूपुरकी ध्वनिसे दिशाओंको शब्दित करती हुई नृत्यक्रीडा करती है[illegible]हां जानेसे हमारे जिस प[illegible]हो उसको मैं वर्णन करनेको असमर्थ हूं,

हे सौम्ये ! जिससे उसका दर्शन हो ऐसा कौनसा उपाय किया जाय आप कृपा कर कहिये ॥८०॥ कन्या बोली कि, हे भद्रे ! तुम्हारे आगमनकी वार्ता पहले वृन्दावनके स्वामीसे कहनी उचित है इसका कारण यह है कि, ऐश्वर्यवान् महात्माओंकी विना आज्ञाके उनके भवनमें जाना किसी प्रकारसे भी योग्य नहीं है॥८१॥सूतजी बोले कि इसके उपरान्त यह कहकर वह स्त्री श्रीकृष्णके समीपको गई और जाकर बोली कि हे कृष्ण! हे कृपासिन्धो ! गोपिकाओंके प्राणप्यारे ! ॥८२॥ हे वाग्मिन् मेरी बातें सुनो ! मैंने आज एक बड़ा अद्भुत चरित्र देखा है; मानसरोवरके किनारे वनके बीचमें एक

कन्योवाच ॥ वृन्दावनेश्वरं भद्रे निवेदय ममागमम् ॥ नहीश्वराणां भवने प्रवेशो भवति स्वयम् ॥८१॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्ता सा ततो गत्वा कृष्णान्तिकमुवाच ह॥ कृष्णकृष्ण कृपासिन्धो गोपिकाप्राणवल्लभ॥८२॥शृणुष्व वचनं वाग्मिन्दृष्टं यन्महदद्भुतम् ॥ चरन्ती विपिने कन्या दृष्टा मानससत्तटे ॥८३॥ रूपमत्यद्भुतं तस्याः कथ्यते किं तवाग्रतः॥ न भूतले न पाताले न देवभवने क्वचित् ॥ ८४ ॥ दृश्यं रूपं भवेत्तस्यास्त्वहं जाने प्रभान्वितम् ॥ कारणं किं न जानामि कथं तत्र स्थिता शुभा ॥ ८५ ॥ सर्वं त्वं वेत्सि भगवन्यथारुचि कुरु प्रभो ॥ सख्या वचनमाकर्ण्य मुदितो भगवान्हरिः ॥ ८६ ॥

कन्याको घूमते हुए देखा ॥८३॥ उसका रूप बड़ा अद्भुत है; तुम्हारे निकट उसके स्वरूपका वर्णन करना मेरी सामर्थ्यसे बाहर है, पृथ्वी, पाताल, देवलोक कहीं भी ॥ ८४ ॥ उसके समान कान्तिमान् रूपका दर्शन होना सम्भव नहीं वह शुभ गुणवाली कन्या वहां क्यों विराजमान है उसके कारणको मैं कुछ नहीं जानती ॥ ८५ ॥ हे भगवन् ! हे प्रभो ! तुम सब जानते हो इस समय जो रुचि हो सो करो, भगवान् श्रीकृष्ण

अपनी सखीके वचनोंको सुनकर अत्यन्त आनंदित हुए ॥८६॥ व्रजनारियोंने श्रीकृष्णको प्रफुल्लित और उत्कंठित देखकर उनसे उस कन्याके दर्शन करनेके निमित्त जानेको कहा ॥८७॥ इसके उपरान्त श्रीकृष्ण बोले कि, हे व्रजकी युवतियो ! हमारी एक बात सुनो; सभी स्त्रियोंका यह स्वभाव है कि, किसी जरासे तमाशेके देखनेके निमित्त उनका मन सहसा व्याकुल हो जाता है ॥८८॥ उसके सम्मुख मेरा इकले जाना उचित नहीं, इस कारण उद्योगके साथ उस स्थानपर मैं तुम्हें भी साथ ले चलूंगा ॥ ८९ ॥ वह तुम्हारे स्वरूपको देखकर विस्मित हो इस स्थानमें आजाये; फिर मैं उसको

व्रजस्त्रियोऽपि मुदितं दृष्ट्वा चोत्कण्ठितं भृशम् ॥ कृष्णं विज्ञापयामासुः कन्यकादर्शनं प्रति ॥८७॥ ततः प्रोवाच ताः कृष्णः शृणुध्वं व्रजयोषितः ॥ स्त्रीणां चलस्वभावोऽयं कौतुकाय मनश्चलेत् ॥ ८८ ॥ मम यानं तदग्रे तु चैकैकस्य न युज्यते ॥ तस्मात्तत्र तु गन्तव्यं भवतीभिः प्रयत्नतः ॥८९॥ दृष्ट्वा रूपं तु युष्माकं विस्मिताऽत्रागता भवेत् ॥ तस्यै सुखं प्रदातव्यं सर्वमस्माभिरेव तु ॥९०॥ कुरुध्वं मण्डलं गोप्यो पादन्याससुशोभितम् ॥ चलध्वं तत्र तां द्रष्टु मया सह समन्ततः ॥ ९१ ॥ ततो मण्डलमध्यस्थो विरेजे भगवान्स्वयम् ॥ यथा रासनिशाः शश्वत्तथा यातास्तदीहया ॥ ९२ ॥

सब प्रकारके सुख दूंगा ॥ ९० ॥ हे गोपिकाओ ! तैयार हो रासलीलाका शीघ्र ही शोभायमान मंडल बनाओ, इसके पीछे मुझे उस चक्राकारमें मिलाकर उसके दर्शनकरनेके लिये चलो ॥९१॥ इसके उपरान्त श्रीकृष्णभगवान् स्वयं उस रासमंडलके बीचमें विराजमान हुए, रासकी रात्रिमें जिस प्रकार यह परमशोभासे शोभायमान होवे थे प्रभु भी अपनी चेष्टासे उस दिन उसीके समान आनंदको प्राप्त हो शोभायमान होने लगे ॥९२॥

सम्पूर्ण वन फूल उठा—गायक और पक्षी मधुर स्वरसे गान करने लगे, उस समय वह महत् वन सर्वथा रतिके अनुकूल हो गया ॥९३॥ ऋषि बोले कि, गोपिकाओंकी संख्या तो अपरिमित थी परन्तु वनके बीचमें कृष्णजी इतनी गोपियोंके साथ किस प्रकारसे क्रीडा करते थे ? वे एक रूपसे या बहुत रूप धारण कर क्रमसे उनसे विहार करते थे ? ॥९४॥ किस समयमें क्रीडा आरंभ होती थी ? वह सर्वदा होती रहती थी या बीच २ में होती थी ?

वनं कुसुमितं तावद्गायका विहगा जगुः ॥ रत्युपायीकरं चासीत्तदैव विपिनं महत् ॥९३॥ ऋषय ऊचुः ॥ कति गोप्यः कथं कृष्णो बहुभिः क्रीडते वने ॥ एको वा बहुरूपो वा यथावत्प्रमदाकुलैः ॥९४॥ कदा क्रीडासमारम्भः सदा वा कालतोऽपि वा ॥ अस्माकं महदौत्सुक्यं तत्क्रीडाश्रवणाय हि ॥ ९५ ॥ तवात्र श्रद्दधानानां ब्रूहि त्वं कृपया मुने ॥ ९६ ॥ इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे वैयासिके सूतशौनकसंवादो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥ सूत उवाच ॥ नारदस्त्वेकदा यातः सत्यलोकं सनातनम् ॥ तत्रोपविष्टं सदसि श्रुतीनां मूर्तिसंभृताम् ॥ १ ॥ पितरं सर्वशास्त्रज्ञं सर्ववेदान्तपारगम् ॥ दृष्ट्वा तमुपसङ्गम्य पप्रच्छैव मुनीश्वराः ॥ २ ॥

उस क्रीडाके श्रवण करनेके लिये मेरी अत्यन्त प्रबल इच्छा हो रही है॥९५॥हे मुने ! इसमें श्रद्धा रखने वाले हमारेसे कृपा कर उसे आप वर्णन कीजिये ॥९६॥इति श्रीआदिपुराणे सूतशौनकसंवादे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः॥९॥सूतजी बोले कि हे मुनीश्वरो! एक समय देवर्षि नारदजी सनातन सत्यलोकको गये वहां सभामें सुखपूर्वक बैठे हुए और मूर्तिमान् श्रुतियोंके पिता समस्त शास्त्रोंके मर्म जाननेवाले सम्पूर्ण वेदान्त विद्याके पारगामी भगवान्‌को

(१) सत्यलोक—सप्तलोकके बीचमें सबसे ऊपर महान् सत्यवाला विष्णुलोक है।

देख उनके निकट उपस्थित हो ! उनसे पूछने लगे ॥ १ ॥ २ ॥ इसके उपरांत भगवान् अजने इसके उत्तरमें जो प्राचीन आख्यान कहा मैं उसीको कहता हूं हे मुनिसत्तमो ! तुम श्रवण करो ॥ ३ ॥ श्रीभगवान् बोले विष्णु निखिल जगत्को संहार कर प्रसुप्त(१)होकर फिर अपने में लीन करते हैं, मैं उसी आत्मामें लीन करनेवाले विश्व (संसार) को अपने शरीरसे विसर्जन और उत्पन्न करता हूं ॥४॥ तब मैं एक होकर भी इस विष

तत ऊचे पुरा वृत्तं यातं स भगवानजः ॥ तदहं तु प्रवक्ष्यामि शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः ॥३॥ श्रीभगवानुवाच ॥ संहृत्येदं जगत्सर्वं सुप्तशक्तिरधोक्षजः ॥ मयि लीनमिदं सर्वं रहो निःसारयामि तत् ॥४॥ रहस्यमहमकोऽत्र चेत्यालोचितवान्स्वयम् ॥ तदा विष्णो र्नाभिरूढमब्जमासीदनुत्तमम् ॥ ५ ॥ कीटाणुकीटवच्चाहं कमलात्प्रज्वलद्युतः ॥ ततोऽभवं महाभाग प्रभाते संप्लुतोदके ॥ ६ ॥ दिशो विलोकमानस्य चत्वारि वदनानि मे ॥ बभूवुरतिभीतस्य तदा मे विस्मयोऽभवत् ॥ ७ ॥ किं करोम्यहमेकोऽत्र को मे साहाय्यकृद् भवेत् ॥ कस्मादिह महद्भूतो नान्यदृश्योऽहमेकराद् ॥ ८ ॥

यमें स्वयं एक रहस्य दिखाता हूं, उस समय विष्णु भगवान्की नाभिमें एक अत्यन्त उत्तम कमल था ।.५॥ उस उज्ज्वल कान्तिमान् कमलसे पहले मैं कीड़के समान उत्पन्न हुआ । हे महाभाग नारद ! उसके पीछे प्रकाशके उदय होनेसे ॥६॥ मैं बहते हुए जलकी राशिपर स्थित होकर दिशाओंको देखने लगा, देखते२ मेरे चार मुख हो गये तब मेरे मनमें एकबार ही विस्मय और भय उत्पन्न हुआ ॥ ७ ॥ मैं इकला क्या करूं कौन मेरी सहा

(१) भगवान् विष्णु जिस समय निद्रित होते हैं तब उनमें महत्तत्वमें प्रकृतिशक्ति नहीं होती प्रकृति शक्तिका कार्य सृष्टिका करना ही उसका रक्षक है, इस कारण उस शक्तिके अभाव होनेसे उसी समय वर्तमान सृष्टिका प्रलय हो जाता है ।

यता करेगा, मैंने दूसरोंसे अदृश्य एकमात्र प्रभु होकर इस स्थानमें क्यों जन्म ग्रहण किया॥८॥ मेरा जन्म देनेवाला कौन है, और मेरा नाम क्या है इत्यादि अनेक प्रकारके प्रश्नोंसे मेरे मनमें चिन्ता होने लगी परंतु किससे पूंछकर अपने सन्देहको दूर करूं ? ऐसा इस लोकमें किसीको नहीं पाता इसके पीछे उद्विग्नचित्तसे जलसे आकाशमंडलमें चला गया ॥९॥ इस प्रकार इन संपूर्ण प्रश्नोंके उत्तर ढूंढनेमें मुझे सौ वर्ष बीत गये, उस समय नारायण स्वयं भृंगपतिका रूप धारणकर मेरे समीप आये ॥१०॥ वे मुझसे अज्ञानीके समान पूछने लगे कि तुम कौन हो, और यहां किस कारणसे बैठ हो

को जन्मदाता किं नाम नहि किञ्चिद्विलोकये॥ जलान्नभः प्रविष्टोऽहं ततः संविग्नमानसः ॥९॥ विचिन्वतो गतः कालो मेऽभव च्छरदां शतम्॥तदा स्वयं भृङ्गपते रूपं कृत्वा समागतः॥१०॥ स पृष्टवानज्ञ इव कस्त्वं कथमिह स्थितः॥मयोक्तं नाभिजानामि जन्म नामाहमात्मनः ॥११॥ तमपृच्छं तु कथय मह्यं जन्म च नाम च॥ श्रुत्वा करोमि यत्कार्यमात्मनः स्वविचारतः॥ १२ ॥ भृङ्गाधिप उवाच ॥ शृणुष्वावहितः सर्वं यत्त्वं मां पृष्टवानिह ॥ समाश्वास्य स मामित्थं विष्टरं च गृहीतवान् ॥ १३ ॥ अर्वागथो बहुतिथो गतः कालो विचिन्वतः ॥ आसीन्मौनी भृङ्गराजो नोत्तरं वास्तवं ददौ ॥ १४ ॥

मैंने उसके उत्तरमें कहा कि मैं तो अपने जन्म और नामको कुछ भी नहीं जानता ॥ ११ ॥ आप यदि जानते हों तो मेरे नाम और जन्मके कारणको कहिये इसको सुनकर जो करना होगा वही किया जायगा ॥१२॥भृंगाधिप बोले कि तुमने जो पूछा उसका उत्तर सावधान होकर श्रवण करो वे इस प्रकार मुझसे कहकर आसनपर बैठ गये ॥१३॥ पीछे उसके उत्तर सुननेकी आशामें मेरा बहुत समय व्यतीत हुआ । भृंगराज यथार्थ

उत्तर न देकर मौन ही रहे ॥ १४ ॥ इसके पीछे वह कही हुई रीतिसे सृष्टिप्रकरण वर्णन करने लगे ॥ १५ ॥ वह मैं वर्णन करता हूं तुम श्रवण करो, विष्णुका रूप दो प्रकारका है व एकसे तो सर्वदा विहार(अर्थात् उस विहारमें प्रलयकालमें भी विश्राम नहीं होता)और दूसरेसे सृष्टिकार्य किया करते हैं॥१६॥उनकी नाभिमें उत्पन्न हुआ पद्म ही संसारकी सृष्टिका स्वरूप और विश्वके निमित्त ही उस पद्मसे तुम्हारा जन्म हुआ है इस कारण इस समय तुम उस बताये हुए कार्यको करो ॥१७॥ ब्रह्माजी बोले,—भृंगपतिके वचनोंको सुनकर मनको सावधान कर वे जिस प्रकारसे उपदेश देने

अथैवं वक्तुमारेभे सृष्टिप्रकरणं च सः॥१५॥शृणु तेऽहं प्रवक्ष्यामि विष्णो रूपं द्विधा मतम्॥नित्यं विहार एकेन चान्येन सृष्टिरेव हि ॥१६॥ यद्रूपं जगतः स्रष्टुस्तस्य नाभिसमुद्भवम् ॥ पद्मं यतो जन्म तव जगत्स्रष्टुं तथा कुरु ॥१७॥ ब्रह्मोवाच ॥ निशम्य वचनं तस्य समाधाय मनः स्वयम् ॥ सृष्टवानेव तत्सर्वं यदुक्तं तेन चालिना ॥ १८ ॥ ततोऽहमूचे भ्रमरं वद विष्णोर्महात्मनः ॥ क्रीडां नित्यविहाराख्यां क्व सा भवति तद्वद ॥१९॥ वैकुण्ठे सत्यलोके वा नागलोकेऽथ वा भुवि ॥ स्वर्लोके सुरभीनाम्न्या चान्यया यदि का क्व सा ॥ २० ॥

लगे । उसीके अनुसार इस संसारको उत्पन्न किया है॥१८॥ इसके उपरान्त मैं अलिराजसे बोला कि आप महात्मा विष्णुजीके नित्य विहार और क्रीडा व उनके स्थानका वर्णन करिये ॥१९॥ यह क्रीडा वैकुण्ठधाम, सत्यलोक, नागलोक, नरलोक, वा देवलोक, इनके बीचमें कौनसे स्थानमें होती है और यह क्या स्वर्गके पवनके साथ होती है,यदि कोई और स्त्रियोंके साथ प्रभु क्रीडा व

भृंगराज बोले कि विहंगरूपी प्रभावान शुकदेव मुनिने पहले वैकुण्ठधाममें मुझसे इस प्रकार प्रश्न किया था॥२१॥अब मैं उसी आश्चर्यजनक रहस्यको तुम्हारे निकट कहता हूं,उस वैकुण्ठपुरीमें पक्षीरूपी मुनि वास करते हैं,वहां मृत्यु,जरा,शोक,मात्सर्य॥२२॥सत्त्वादि गुण शीत व उष्ण चन्द्रमा और सूर्यका भी प्रवेश नहीं है,वे सब मुनि पक्षीरूपसे उस पुरीमें निवास करते हैं२३विष्णुभगवान्के चारित्रोंका श्रवण और गान करते हैं वहां शुकदेवजीने भ्रमराधिपसे

भृङ्गराज उवाच॥एवमेव पुरा पृष्टो वैकुण्ठे भ्रमराधिपः॥कीरेण मुनिना तत्र पक्षिरूपेण भास्वता॥२१॥इदं रहस्यमाश्चर्यं कथयामि तवाधुना ॥ न तत्र मृत्युर्न जरा न शोको न च मत्सरः ॥ २२ ॥ सत्त्वादयो गुणा नैव न शीतोष्णेन्दुभास्कराः ॥ वसन्ति च पुरे तस्मिन् मुनयः पक्षिरूपिणः ॥२३॥ गायन्ति विष्णोश्चरितं शृण्वन्ति च समाहिताः॥तत्र कीरवरः कोऽपि पप्रच्छ भ्रमराधिपम्॥ ॥२४॥कीरवर उवाच ॥ किं परं रूपमस्तीह विष्णोर्भगवतः प्रभोः ॥ चञ्चरीक समाख्याहि का लीला भगवत्प्रिया ॥ कुत्र क्रीडा निशान्तन्तु काऽवनिः का सरित्प्रिया ॥२५॥ भृङ्गराज उवाच॥ इदं गुह्यतमं कीर त्वया पृष्टं महामते ॥ तथापि तुभ्यं वक्ष्यामि कथायोग्यस्त्वमेव हि॥२६॥वरारोहाः प्रियाः सर्वा रासे नृत्यपरा हि याः॥विष्णोर्वराङ्गनाः सार्द्धं याभिर्नित्यं विचित्रधा॥२७॥

पूछा ॥२४॥ शुकदेवजी बोले कि हे प्रभो! भगवान् विष्णुका परमरूप क्या है;और उनको कौनसी लीला प्यारी है.उनकी क्रीड़ा करनेका कौनसा स्थान है और कौनसी भूमि वा नदी प्यारी है!सो आप कृपा करके वर्णन करिये ॥ २५ ॥ भृंगराज बोले-कि, हे महाबुद्धिमान् शुकदेवमुनि!तुमने जो कुछ पूछा है वह अतिगुप्त विषय है तो भी मैं तुम्हारे निकट उसको कहता हूं कारण कि तुम्हीं उसके योग्य पात्र हो॥२६॥सुन्दर मुखवाली कृष्णकी प्यारी गोपियें

रासमें श्रीराधाजीके साथ विविधभांतिसे नित्यप्रति नृत्य करती हैं ॥ २७ ॥ नृत्य गीतादि, भांति २ के विचित्र बाजोंसे तथा शृंगाररससे व्याकुल मन हो श्रीकृष्ण उनके साथ क्रीडा करते हैं ॥२८॥ और उनको अपनी मोहनी शक्तिसे अपने समान प्रेमरससे विह्वल करते हैं। हे शुकदेवजी ! यह अनुराग परम गुप्त है ॥२९॥ इसी कारणसे पंडितोंने सर्वदा पात्र विचार करके इसका आख्यान किया है, कुपात्रके समीप कभी इसका प्रचार न करे इस गुप्तलीलाको एक तो मैं जानता हूं, दूसरे जलनिधि, नारद, सनत्कुमार ॥३०॥ अग्नि और रुद्र ये भी सब जानते हैं और कोई कभी इसको नहीं

गीतगानैस्तथा नृत्यैर्वाद्यैर्नानाविधैरपि ॥ कृष्णः क्रीडति शृङ्गाररसविह्वलमानसः ॥२८॥ करोति रसितास्ताः स स्वतोऽपि प्रेमविह्वलाः ॥ कीरानुरागबहुलं रहस्यमतुलं यतः ॥२९॥ अतो बुधैर्हि वक्तव्यं पात्रे नान्यत्र कर्हिचित् ॥ वेद्म्यहं वारिधिर्वेत्ति नारदो वा कुमारकः ॥३०॥ अग्नी रुद्रोऽनिशं वेत्ति नान्यः कश्चन कुत्रचित् ॥ वदन्ति साधवः स्वान्तं निजवित्तं न वै क्वचित् ॥३१॥ न यथा सुधियः स्तेनं दर्शयन्ति निजं धनम्॥ तथैव ज्ञानिनो भक्ता हृदयस्थमहाधनम्॥३२॥एवमेव श्रीकृष्णः प्रेमलीलारहस्यकम्॥प्रकाशयन्त्यभक्तानां न मूढानां समीपतः॥३३॥विष्णुसेवारसाब्धेर्यः कीर क्षीरपयोनिधौ॥विष्णुत्वमपि विस्मृत्य स वै वसति नित्यशः ३४

जानता, साधु अपने मनके भावको और धनको जिस प्रकार किसीके निकट प्रकाश नहीं करते ॥३१॥ बुद्धिमान् मनुष्य जिस प्रकारसे अपना धन चोरको नहीं बताते, उसी प्रकार ज्ञानवान् विष्णुके भक्तको अपरिमेय हृदयस्थ महाधन ॥३२॥ इसी तरह श्रीकृष्णकी प्रेमलीलाका रहस्य अभक्त और मूढमनुष्योंके समीप प्रकाशकरना कदापि योग्य नहीं॥३३॥हे शुक! जो मनुष्य विष्णुकी सेवाके रससागरका दूध पान करते हैं वे विष्णुभावको भी भूल जाते हैं, अर्थात् विष्णुसे निर्वाण मुक्तिकी भी इच्छा नहीं करते. कारण यह है कि प्रेममय भक्तोंको प्रभुकी सेवाके करनेसे अपरिमेय सुख उत्पन्न होता

है जो सब दुःखोंको दूरकरनेवाली निर्वाण मुक्ति है उसकी प्रार्थना क्यों नहीं करता ॥३४॥ अनाशवान् वृन्दावन नामवाला वन सर्वदा विराजमान रहनेवाला है,वहां भगवान् विष्णु गोपालके वेशमें गोपियोंके साथ नित्य क्रीडा करते हैं॥३५॥ उनके समान रूप और कहीं नहीं और गोपियोंके समान स्त्रियां भी नहीं हैं, प्रभु अपने बिम्बके प्रतिबिम्ब अर्थात् मूर्ति प्रतिमूर्तिसे सर्वदा वनमें क्रीडा करते हैं ॥३६॥ इसके उपरांत श्रीकृष्णकी सखियोंकी संख्या कहते हैं। उस वृन्दावनमें जिस प्रकारसे सुन्दर सर्वदा रमण विलास होता है उसीको वर्णन करते हैं॥३७॥उस विहारमें स्वयं नारायण अपनी

वनं वृंदावनं नाम ह्यनादिनिधनं मतम् ॥ नित्यं क्रीडारतस्तत्र गोपीभिर्गोपवेशभृत् ॥ ३५ ॥ नास्ति तत्सदृशं रूपं न स्त्रियो गोपिकासमाः ॥ स्वबिम्बप्रतिबिम्बेन क्रीडते विपिनेऽनिशम् ॥ ३६ ॥ अथ कृष्णसखीनां च संख्या याः संवदामि ते ॥ तत्रातीव रहोरम्यं वदिष्येऽग्रेऽतिवल्लभम् ॥ ३७ ॥ येन नारायणः साक्षात्स्वतो नारीवशं गतः ॥ काचित्कलानिधिप्राया वल्लभा बल्लवीहरेः ॥ ३८ ॥ माधवी मधुराकारा न तां जानन्ति पण्डिताः ॥ ३९ ॥ तिस्रः कोटचो बल्लवीनां समाजस्तावद्रूपो बल्लवः सोऽपि मध्ये ॥ काचित्तासां नाव्यविद्याप्रशस्ता शश्वच्चान्या गानवेदप्रवीणा ॥ ४० ॥

इच्छानुसार स्त्रियोंके वशीभूत हुए हैं कोई हरिकी प्यारी बल्लवी कलानिधिके समान है ॥३८॥ कोई माधवी अत्यंत मधुर आकृतिवाली है पंडितजन भी उसको नहीं जानते ॥३९॥ बल्लवीसमाजकी संख्या तीन करोड़ है,उसके बीचमें प्रभुके समानरूपसे अर्थात् एक २ के नायक होकर तीन करोड़ बल्लिकाओंको संतोष देते हैं। इन सब गोपियोंके बीचमें कोई नाव्य अर्थात् जल विद्याके विषयमें चतुर है (१पाठान्तरमें नाट्यविद्या भी लिखा है)

कोई गानविद्यामें चतुर है ॥४०॥ कोई गोपिका वाद्यविधान अर्थात् बाजे बजानेमें प्रवीण है कोई बल्लवी तालमान (बिगुल) के बजानेमें चतुर है, और कोई वाटिकाधानमें निपुण है और कोई वस्त्रदानके कार्यमें प्रवीण है॥४१॥इस प्रकारसे एक२गोपिका ही अपने २ कार्योंमें निपुण हैं पीछे प्रयोजनके समय वह उसी २कार्यको कर श्रीकृष्णको संतुष्ट करती हैं, व उनके भावके जाननेवाले अन्तर्यामी श्रीकृष्णचंद्र भी इस प्रकार उनके अनुरूप कार्यको करते हैं

काचित्तासां वाद्यपूरप्रविज्ञा नृत्यत्यन्या तालमानप्रनर्का ॥ काचित्तासां वाटिकाधानदक्षा चान्याभिज्ञा वस्त्रदानप्रयत्ने ॥ ४१ ॥ तत्तत्पश्चात्प्राप्तकाले च कार्यं कुर्वन्त्यस्तास्तोषयन्त्यः स्वनाथम् ॥ एवं ताभिः कृष्ण एवानुरूपं कर्त्ता तत्तद्गोपिकाभावदक्षः॥ ॥ ४२ ॥ इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदि० वैयासिके नारदशौनकसंवादो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥ भृङ्गाधिप उवाच ॥ सर्वयूथप्रसंख्यानं शतानि त्रीणि विद्धि वै ॥ नियुते नियुते मुख्यास्तासां नामानि मे शृणु ॥ १ ॥ विधुन्तुदा विधुरता रागरङ्गा सुरागिणी ॥ कामकन्दा सुनन्दा च नन्दिनी नादनन्दिनी ॥ २ ॥ नेत्रसौभाग्यसुभगा मोदमाना मनस्विनी ॥ मनोभवा विरागा च हावहूरा रतिप्रदा ॥ ३ ॥

॥४२॥इति श्रीआदिपुराणे सूतशौनकसंवादे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः॥१०॥भृङ्गपति बोले कि, श्रीकृष्णकी सखियोंके यूथकी संख्या तीन सौ जाननी चाहिये। एक २ नियत संख्यामें सखियोंके बीचमें एक२दलमें प्रधानरूपसे दृष्टि आती हैं उन सबके नामोंका वर्णन करता हूं तुम श्रवण करो ॥१॥ विधुन्तुदा, विधुरता, रागरंगा, सुरागिणी, कामकन्दा, सुनंदा, नंदिनी, नादनंदिनी ॥२॥ नेत्रसौभाग्यसुभगा, मोदमाना, मनस्विनी, मनोभवा, विरागा, हावहूरा,

रतिप्रदा ॥ ३ ॥ धन्या, धनेश्वरी, धामा, भावा, भावप्रमोदिनी, मुक्ता, मनोहरा, साध्वी, मालती, मलयाश्रया ॥ ४ ॥ मदालसा, मनोभीष्टा, मनोज्ञा, मानसाबला, चित्रा, वेत्रवती, भीमा, भावभेदा, सदाचला, ॥ ५ ॥ चञ्चला, चपला, कान्ता, कला, कामप्रवेदिनी, कलोत्तमा, कलाभिज्ञा, धनिष्ठा, कलावती, ॥ ६ ॥ विधृता, अनंगभुजा, मन्मथोदयपंजिका, कामवृन्दा, सुनन्दा, नन्दिनी, नयनोत्सवा ॥ ७ ॥ कनकांगी, कुरंगाक्षी, चन्द्रास्या, चन्द्रमण्डना,

धन्या धनेश्वरी धामा भावा भावप्रमोदिनी ॥ मुक्ता मनोहरा साध्वी मालती मलयाश्रया ॥ ४ ॥ मदालसा मनोभीष्टा मनोज्ञा मानसाबला ॥ चित्रा वेत्रवती भीमा भावभेदा सदाचला ॥ ५ ॥ चञ्चला चपला कान्ता कला कामप्रवेदिनी ॥ कलोत्तमा कलाभिज्ञा धनिष्ठा च कलावती ॥ ६ ॥ विधृताऽनङ्गभुजा या मन्मथोदयपञ्जिका ॥ कामवृन्दा सुनन्दा च नन्दिनी नयनोत्सवा ॥७॥ कनकाङ्गी कुरङ्गाक्षी चन्द्रास्या चन्द्रमण्डना ॥ मदोन्नता मदोत्साहा हंसी हंसगतिस्तथा ॥ ८ ॥ कन्दर्पमञ्जरी वेला बलिष्ठा कलभाषिणी ॥ वराङ्गदा विशालाक्षी विशाखा विशदाशया ॥ ९ ॥ कृष्णा कृष्णवती भावा भयभेदप्रदर्शिता ॥ नवाङ्गा नववासाश्च नवीना प्रेमकारिणी ॥१०॥ सारिका सरला शान्ता कान्ता कामप्रदायिनी ॥ प्रेमवती नागरिका नवीना नवमञ्जरी॥११॥भेदभावविशिष्टा च धन्या साध्या च गोमती॥आनवा पीननन्दा च प्रमोदा मुदितानना॥१२॥

मदोन्नता, मदोत्साहा, हंसी, हंसगति, ॥ ८ ॥ कंदर्पमञ्जरी, वेला, बलिष्ठा, कलभाषिणी, वरांगदा, विशालाक्षी, विशाखा, विशदाशया ॥ ९ ॥ कृष्णा, कृष्णवती, भावा, भयभेदप्रदर्शिता, नवांगा, नववासा, नवीना, प्रेमकारिणी ॥ १० ॥ सारिका, सरला, शान्ता, कान्ता, कामप्रदायिनी, प्रेमवती, नागरिका, नवीना, नवमञ्जरी, ॥ ११ ॥ भेदभावविशिष्टा, धन्या, साध्या, गोमती, आनवा, पीननन्दा, प्रमोदा, मुदितानना ॥ १२ ॥

मानशान्ता, नवीना, भामिनी, प्रेमकारिणी, सारिका, सरला, शान्ता, कान्ता, कामप्रदा, शुभा ॥ १३ ॥ प्रेमबद्धा, मधुमुखी, मनोजा, मन्दगामिनी, कामिनी, रमिता, रामा, निष्ठावती, अतिकृशोदरी, ॥ १४ ॥ वरांगना, बिम्बोष्ठी, वेला, वलयभूषण, बल्लवी, रूणिता, वाग्मी, वरभेदा, विनोदिनी ॥ १५ ॥ बलोन्नता, बलाका, पावनी, पाचिका, परा, परोदया, दयावेदी देवताललना, लता ॥ १६ ॥ आनन्दभद्रा, भद्रा,

मानशान्ता नवीना च भामिनी प्रेमकारिणी ॥सारिका सरला शान्ता कान्ता कामप्रदा शुभा ॥१३॥ प्रेमबद्धा मधुमुखी मनोजा मन्दगामिनी ॥ कामिनी रमिता रामा निष्ठा चातिकृशोदरी ॥ १४ ॥ वराङ्गनाऽथ बिम्बोष्ठी वेलावलयभूषणा ॥ बल्लवी रूणिता वाग्मी वरभेदा विनोदिनी ॥ १५ ॥ बलोन्नता बलाका च पावनी पाचिका परा ॥ परोदया दयावेदी देवताललना लता ॥ १६ ॥ आनन्दभद्रा भद्रा गौर्भद्रा भावा विलासिनी ॥ अङ्गदाऽनङ्गदा धात्री धर्मपात्रिवरा हरेः ॥१७॥ माधवी मन्दगा गङ्गा मञ्जरी पार्वती तथा ॥ परा तारा परेशा च परमा सुरमा परा ॥ १८ ॥ समोष्ठी समकर्णा च कामिनी रतियामिनी ॥ पञ्जिका मदनप्राणा साञ्जनी मदभाविनी ॥ १९ ॥ चन्द्रावली शशिकला योनियुक्ता मनोरमा ॥ भद्रावली भगवती ततः सौदामनी मता ॥ २० ॥

गौर्भद्रा, भावा, विलासिनी, अंगदा, अनंगदा, धात्री, धर्मपात्रिका, प्रधाना ॥ १७ ॥ माधवी, मन्दगा, गंगा, मंजरी, पार्वती, परा, तारा, परेशा, परमा, सुरमा, परा ॥१८॥ समोष्ठी, समकर्णा, कामिनी, रतियामिनी, पाञ्जिका, मदनप्राणा, साञ्जनी, मदभाविनी ॥ १९ ॥ चन्द्रावली, शशिकला,

योनिपुका, मनोरमा, भद्रावली, भगवती, सौदामिनी ॥२०॥ चम्पावती, चम्पाकली, परा, वीरवती, प्रभा, मानिनी, मदनोत्साहा, मन्दालसा, परा ॥२१॥ पद्मी, पाटोलिका, षड्गखंडिता, मन्मथोज्ज्वला, वरूथिनी, वनलता, व्रजवल्ली, त्रिलोत्तमा ॥ २२ ॥ रसा, गन्धावणी, भिज्या, वज्रा, भोगप्रदायिनी, वैकुण्ठमंजरी, रुक्मा, रुक्मवती ॥२३॥ कुञ्जरी, भद्ररेखा, हरिणी, भद्रलेखिका, चारित्रा, चन्द्रतिलका, कातराक्षी, सुमन्दिरा ॥२४॥

चम्पावती चम्पाकलिः परावीरवती प्रभा ॥ मानिनी मदनोत्साहा तथा मन्दालसा परा ॥२१॥ पद्मी पाटोलिका षड्गखण्डिता मन्मथोज्ज्वला ॥ वरूथिनी वनलता व्रजवल्ली तिलोत्तमा ॥२२॥ रसा गन्धावणी भिज्या वज्रा भोगप्रदायिनी ॥ वैकुण्ठमञ्जरी रुक्मा तथा रुक्मवती मता ॥२३॥ कुञ्जरी भद्ररेखा च हरिणी भद्रलेखिका ॥ चरित्रा चन्द्रतिलका कातराक्षी सुमन्दिरा ॥२४॥ चित्राङ्गा तुङ्गविद्या च मञ्जुमेधा रसालिका ॥ शौरसेनी सुगन्धा च सुमध्या तनुमध्यमा ॥ २५ ॥ गुणचूडा मेदिनी च करिणी रागवेलिका ॥ मञ्जुकेशी मञ्जुवक्रा तथा कन्दर्पसुन्दरी ॥ २६ ॥ सुसंगता मधुस्यन्दा इन्दुलेखा मनोजवा ॥ परंमताऽतिविनता प्रमीला पटुभाषिणी ॥२७॥ परात्मिका परोत्कर्षा कलिताऽचलगामिनी ॥ भारहा वरमाला च वरारोहा तिलोत्तमा ॥ २८ ॥ वामनेत्रा च सोन्मेषा चञ्चला चलभाषिणी ॥ चलक्रीडा चलात्मा च चक्षणी चतुरानना ॥ २९ ॥

चित्रांगा, तुंगविद्या, मंजुमेधा, रसालिका, शौरसेनी, सुगन्धा, सुमध्या, तनुमध्यमा ॥२५॥ गुणचडा, मेदिनी, करिणी, रागवेलिका, मंजुकेशी, मंजुवक्रा, कन्दर्पसुन्दरी ॥२६॥ सुसंगता, मधुस्यन्दा, इन्दुलेखा, मनोजवा, परंमता, अतिविनता, प्रमीला, पटुभाषिणी ॥२७॥ परात्मिका, परोत्कर्षा, कलिता, अचलगामिनी, भारहा, वरमाला, वरारोहा, तिलोत्तमा ॥ २८ ॥ वामनेत्रा, सोन्मेषा, चंचला, चलभाषिणी, चलक्रीडा, चलात्मा, चक्षणी

चतुरानना ॥२९॥ प्राणपात्रा, परप्राणा, रमणी, परपावनी, पटोच्चा, लम्बकेशी, कलाभावा, कलांजनी ॥३०॥ कार्यपट्वी, परप्रीता, परकामा, परम्मदा, यामिनी, जनिताशेषा, पतगा, रतिचञ्चला ॥३१॥ यशःप्रदा, यशोधना, जलजाक्षी, जयप्रदा, यामिता, यमिता, कामा, बालभावा, रसाकरा, ॥ ३२ ॥ मंजुपाणि, मंजुपदा, वरदीप्ति, मनोरमा, कञ्जनाभि, वामा, कामरंगवशंगता ॥ ३३ ॥ भानुकाभा, वीतबला, भीरुभावा, प्रमोदिनी,

प्राणपात्रा परप्राणा रमणी परपावनी॥पटोच्चा लम्बकेशी च कलाभावा कलाञ्जनी ॥३०॥कार्यपट्वी परप्रीता परकामा परंमदा॥
यामिनी जनिताशेषा पतगा रतिचञ्चला ॥३१॥ यशःप्रदा यशोधना जलजाक्षी जयप्रदा ॥ यामिता यमिता कामा बालभावा
रसाकरा॥३२॥मञ्जुपाणिर्मञ्जुपदा वरदीप्तिर्मनोरमा॥ कञ्जनाभिरथो वामा कामरंगवशंगता ॥३३॥ भानुकाभा वीतबला भीरु
भावा प्रमोदिनी ॥ वराङ्गना वरामोदा वनबन्धुर्वनोत्सवा॥३४॥वनभावा वनमता वनमञ्जुर्वनाम्बुजा ॥ वनभूर्वनजा योषा घोषम
ञ्जुर्व्रजाबला॥३५॥ व्रजाङ्गना व्रजवधूर्व्रजकेलिर्व्रजोत्सवा ॥ व्रजबाला व्रजेशा च व्रजेशपरमप्रिया ॥३६॥ घोषवृन्दा घोषलता
घोषराजविलासिनी ॥ घोषनन्दाऽऽनन्दकन्दा नित्यानन्दविनोदिनी ॥ ३७ ॥ भानुवृन्दा चन्द्रवृन्दा कामवृन्दा कलापटुः ॥
किशोरी नागरी नेत्री नयकान्ता नयानुगा ॥ ३८ ॥

वरांगना, वरामोदा, वनबन्धु, वनोत्सवा, ॥३४॥वनभावा, वनमता, वनमंजु, वनाम्बुजा, वनभू वनजा, योषा, घोषमंजु, व्रजाबला॥३५॥ व्रजांगना, व्रजवधू, व्रजकेलि, व्रजोत्सवा, व्रजबाला, व्रजेशा, व्रजेशपरमप्रिया ॥ ३६ ॥ घोषवृन्दा, घोषलता, घोषराजविलासिनी, घोषनंदा, आनन्दकन्दा, नित्यानन्दाविनोदिनी ॥ ३७ ॥ भानुवृन्दा, चन्द्रवृन्दा, कामवृन्दा, कलापटु, किशोरी, नागरी, नेत्री, नयकान्ता, नयानुगा ॥ ३८ ॥

नीतिवाङ्नयना, कान्ता, अलया, अलयोदया, सर्वयूथप्रधाना, परयूथा, विनोदिनी॥३९॥ विशेषा, विशिखा, विश्वा, गुणा, गुणवती, शुभा इत्यादि व्रजकी स्त्रियोंके यूथ कहे गये हैं, इन प्रत्येकके लक्षणोंकी संख्या स्त्रियोंके बीचमें की हुई एक एक यूथके साथ अधिपतिके समान विचरण करती हैं॥४०॥इसके उपरान्त श्रीराधिकाजीकी कितनी एक सुन्दर सखियें हैं, श्रीमतीकी सहेलियें सब ही पवित्र हैं और देवता भी उनको परम पदार्थ मानते हैं ॥४१॥ श्रीराधिकाकी प्रधान सखियें आठ हैं। उनके अतिरिक्त और भी बहुतसी सखियें हैं, जिनके पतियोंका नाम कीर और जननी उनकी शारदा हैं॥४२॥ और जो

नीतिवाङ्नयना कान्ता त्वलया चालयोदया ॥ सर्वयूथप्रधाना च परयूथा विनोदिनी॥३९॥ विशेषा विशिखा विश्वा गुणा गुणवती शुभा ॥ इत्याद्या यूथमुख्याश्च यूथे लक्षाभिधे चराः ॥४०॥ अथापरा राधिकायाः सख्यः शश्वन्मनोरमाः ॥ विमला राधिका भृङ्गी निभृताऽभिमता परा॥४१॥तथाष्टौ सदृशास्तस्या वराः सख्यस्तथा पराः॥शारदा जननी यस्याः पतिर्वा कीरसंज्ञितः ॥४२॥ ताम्बूलहस्तसुकरुणा प्रगल्भा ललिता वरा ॥ द्वितीया तु विशाखेति देवी विद्यारसालया॥४३॥तारावलीधरास्तिस्रः पत्न्यस्तासां तु पावनाः ॥ कृष्णमायावनसरः सर्वं विश्वैकपावनम् ॥ ४४ ॥ नानार्थदक्षिणस्तस्याः पतिर्वच्छवसंज्ञितः ॥ सामदानं ततो भेदो भयादिष्विति सम्मतम् ॥ ४५ ॥

श्रीमतीको अत्यन्त प्यारी ताम्बूलको हाथमें लिये रहती है उसीका नाम ललिता है, यह ललिता ही पहली और सबमें प्रधान सखी है, विद्या और रस पद्म स्वरूप विशाखा देवी ही दूसरी सखी है ॥४३॥ पहलेसे तीनों सखी ही स्वप्राधान्य और चिह्नस्वरूप होकर कंठमें तारावली हारको धारण करती हैं, इनके पति भी परम पवित्र हैं (पक्षान्तरमें) श्रीकृष्णके माया रचित वनसरोवर इत्यादि सभी संसारमें पवित्र हैं॥४४॥उस विशाखा सखीके वच्छवनामवाले

स्वामी अत्यन्त ही दक्षिण अर्थात् अनुकूल हैं। भयादि विषम, साम, दाम, भेद, (परन्तु केवल दण्ड ही प्रचलित नहीं है)॥४५॥ और अनेक प्रकारके वस्त्रादिकार्य करनेमें वह चतुर दूसरी सखी है, चम्पकलता नामवाली तीसरी सखी है, उसका अंग चम्पक फूलके समान उत्तम है, अच्छे भूषणोंसे भूषित, होकर ॥ ४६ ॥ नीले वस्त्रोंको पहरे रहती है उसके पिताका नाम वाम है, माताका नाम वाटिका है और उसके पतिका नाम चण्डाक्ष प्रसिद्ध है ॥ ४७ ॥ वह सखी भोजन बनानेकी अधिकारिणी है और वह उत्तम उत्तम मिष्टान्न द्रव्योंसे श्रीकृष्णकी प्रीतिको बढ़ाती है ॥ ४८ ॥

नानावस्त्रप्रयोगा सा प्रगल्भा परमा मता॥तृतीयाचम्पकलता चम्पकाङ्गी सुभूषणा॥४६॥नीलप्रभदुकूला च पितावामस्तथैव च॥ माता च वाटिका तस्याःपतिश्चण्डाक्ष एव च॥४७॥सूचितश्चाधिकारोऽस्याःपाकभेदेऽधि कारिणी ॥मिष्टवस्तुप्रदानेन साःहरेप्रीति वर्द्धिनी॥४८॥चित्रादेवी चतुर्थी च कुंकुमाङ्गी मनोहरा॥अरुणा करुणार्द्रा च पितास्याश्च तुरःस्मृतः ॥४९॥ माताऽस्याश्चर्विका नाम पतिरस्याश्च पीठरः॥त्रिकालज्ञानसम्पन्ना ज्योतिःशास्त्रविशारदा॥५०॥ पशुविद्याविदग्धा च पानभोज्यविदां वरा ॥ सुग न्धजलकार्य्ये वा अधिकारवती च सा॥५१॥पञ्चमी तुङ्गविद्या च सुगन्धा कुङ्कुमाष्टमी॥पट्टमण्डलवस्त्रेषु अतिदक्षा मनोहरा॥५२॥

चित्रादेवी चौथी सखी है यह कुंकुमके समान अङ्गवाली मनोहररूप और अरुणवर्णकी है, और दयावान् भी है उसके पिताका नाम चतुर है ॥ ४९ ॥ और माताका नाम चार्विका है तथा पतिका नाम पीठर प्रसिद्ध है. वह सखी भूत भावी (होनेवाले) वर्तमान इन तीनों कालोंका जाननेवाली ज्योतिषशास्त्रमें विशारद ॥ ५० ॥ पशुविद्याकी भी जाननेवाली तथा भोजन और पान करनेमें वह बड़ी चतुर है और सुगन्ध जलकार्य करनेमें भली प्रकारसे प्रवीण है ॥ ५१ ॥ पांचवीं सखी तुंगविद्या सुगन्धिसे शरीरमें उबटन लगानेमें और रेसमके वस्त्रादिकार्य

करनेमें अति निपुण और मनोहर सहेली है ॥ ५२ ॥ उसके पिताका नाम पौष, माताका नाम मेधापति है, सब शास्त्रोंमें उसकी वाणी सरस्वतीके समान है ॥ ५३ ॥ वह संगीतमें निरत अधिकतर वीणाके बजानेमें बड़ी चतुर है, और वह मेल करानेमें भी निपुण है, प्रभुके रात्रिके विहारमें उत्तम विलासवती है ॥५४॥ इसके पीछे छठी सखी इन्दुलेखा है; उसका मुख हरितालके समान है, सर्वांगसुन्दरी है, दाडिम और कुंकुमके समान वर्णके वस्त्र पहरती है ॥५५॥ अत्यन्त सुन्दरकमिनी वाक्य बोलनेमें चतुर और विलासिनी है, उसके पिता सागर हैं, माता महोदया बेला है

पिता पौषकसंज्ञोऽस्या माता मेधापतिस्तथा॥वाणीशाखाश्चाधिकृताः सर्वशास्त्रार्थवेदने ॥५३॥ संगीतसंगनिरता वीणावादपटीयसी॥सन्धिकार्ये प्रगल्भा सा क्षणदासुविलासिनी॥५४॥इन्दुलेखा ततः षष्ठी हरितालसमानना॥सर्वाङ्गशोभना सा हि दाडिमीकुसुमांशुका ॥५५॥ अत्यन्तसुन्दरी कान्ता वावदूका विलासिनी ॥ सागरस्तु पिता तस्या माता वेला महोदया ॥५६॥ दुर्बलस्तु पतिस्तस्याः कामशास्त्रविशारदा ॥ वशीकरणमन्त्रेषु त्वतिसौभाग्यमन्त्रिता ॥ ५७ ॥ लेपस्य साधने दूतीकर्म्मण्यग्र्या विचक्षणा ॥ भाण्डागारस्थरक्षादिकर्मण्यप्यधिकारिणी॥५८॥सप्तमी रङ्गदेवी तु पद्मकिञ्जल्कभासुरा ॥ जातीपुष्पांशुका तस्या रङ्गसारः पिता मतः ॥ ५९ ॥ माता च करुणा तस्याः पतिर्वक्रेक्षणः स्फुटम् ॥ अनुलेपनगन्धेषु धूपव्यजनकर्म्मसु ॥ ६० ॥

॥५६॥और कामशास्त्रमें निपुण है, उस सखीके पतिका नाम दुर्बल है, वह वशीकरणमन्त्रको सीखकर अपने सौभाग्यको बढ़ाती है॥५७॥और चन्दन इत्यादि लगानेमें यह एक ही है, दूतीके कार्यमें इन्दुलेखा अत्यन्त विलक्षण है, और भंडारके रसोंके रक्षाके कार्यमें उसका अधिकार है ॥५८॥सातवीं सखी रंगदेवी कमलके परागके समान दीप्तिमान और जातीपुष्पके समान वस्त्रोंको धारण करती है और इसके पिताका नाम रंगसार॥५९॥इसकी अन

नीका नाम करुणा है और पतिका नाम वक्रेक्षण है, यह सुन्दरी गंधलेपन, धूपदान, व्यजनकर्ममें ॥ ६० ॥ और माला इत्यादिके बनानेकी अधिकारिणी है; उसकी भगिनीका नाम ममता है, वह श्रीमती राधिकाजीकी कृत्रिमा(मनेली)आठवीं सखी है ॥६१॥ इसके पिताका नाम देवबंधु है मातका नाम सुदेवी है, कोपन नामवाला इसका पति है ॥६२॥ यह अंजन और अभ्यंगकार्यमें कुशल है,यह बालोंके काढ़नेम प्रवीण है, इसका शरीर और

स्रगादिरचनायां तु सुन्दरी याऽधिकारिणी ॥ ममता भगिनी तस्या राधिकायाश्च कृत्रिमा ॥ ६१ ॥ देवबन्धुः पिता तस्याः सुदेवी जननी शुभा ॥ पतिस्तस्याः खलेहश्च कोपनख्यातिमाश्रितः ॥ ६२ ॥ अञ्जनाभ्यङ्गकुशला केशसंस्कारकारिणी ॥ तनुरूपाऽतिसुखदा कोमलाङ्गी मनोहरा ॥ ६३ ॥ गण्डूषक्षेपपात्रादिष्वधिकारपरायणा ॥ ६४ ॥ इत्यष्टौ वै राधिकासेविका या यूथश्रेष्ठा गोपिकाः सुप्रतिष्ठाः ॥ कुञ्जे कुञ्जे स्वेच्छया ताश्चरन्त्यो वक्ष्ये तं किंचैश्वरं तद्विभुत्वम् ॥ ६५ ॥ इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे वैयासिके नारदशौनकसंवादे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ कीरवर उवाच ॥ भृङ्गाधिप महाबुद्धे राधिकायाः कुलं वद ॥ कस्य वंशे समुत्पन्ना तस्याः को जनकोऽभवत् ॥ १ ॥

रूप अत्यन्त ही सुन्दर, कोमल और मनोहर भी है ॥६३॥ गण्डूष आदि पात्रोंपर इसका अधिकार है॥६४॥ राधिकाजीकी यह आठ सखियें यूथोंमें श्रेष्ठ उत्तम प्रतिष्ठावाली और सब गोपांगनायें अपनी इच्छानुसार प्रत्येक कुंजमें भ्रमण करती हैं,इसके अतिरिक्त कृष्णके वैभव और ऐश्वर्यका वर्णन में क्या करूं॥६५॥इति श्रीआदिपुराणे सूतशौनकसंवादे भाषाटीकायाम् एकादशोऽध्यायः॥११॥शुकदेवजी बोले कि हे महाबुद्धिमान् भ्रमर!इस समय राधिकाके

कुलका वर्णन करिये वह किसके वंशमें उत्पन्न हुई हैं उनके पिता कौन है॥ १॥ और माताका क्या नाम है और भाई इत्यादि कुटुम्बी कौन हैं, आप ब्रह्म जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हो, तुम अपनी इच्छानुसार ही भ्रमराधिपति हुए हो, इस कारण कृपा कर इन सब विषयोंका वर्णन कर मुझे कृतार्थ कीजिये ॥ २ ॥ भ्रमराधिपति बोले कि हे महाबुद्धिमान् शुकदेवजी ! तुम्हीं धन्य हो कारण कि तुमने इस महान् विष्णुके चरित्रोंके विषयमें प्रश्न करके हमारे प्रति बड़ा अनुग्रह दि[illegible]

का माता भ्रातरः के वै मह्यमेतत्प्रकाशय ॥ त्वं हि ब्रह्मविदां विज्ञः स्वेच्छापक्षितनुं गतः ॥ २ ॥ भृङ्गाधिप उवाच ॥ धन्योऽसि त्वं महाबुद्धे ममानुग्रहकृद्भवान् ॥ यतोऽतिविशदं विष्णोश्चरितं पृष्टवानसि ॥३॥ आसिषेणो महागोपः पुराऽऽसीदति पावनः ॥ आर्ष्टिग्रामेऽस्य वसतिः सर्वसम्पत्समृद्धियुक् ॥ ४ ॥ तस्य पुत्रो महाभानुः स्वभानुश्च तदात्मजः ॥ तस्यासीदति पुण्यात्मा वृषभानुः परोदयः ॥५॥ माताऽस्य मानवीनाम्नी पातिव्रत्यपरायणा ॥ तस्यात्मजास्तु चत्वारः सदा कृष्णैकचेतसः ॥ ६ ॥ वृषबन्धुर्मनः सौख्यः स्तोककृष्णस्तथाऽपरः ॥ श्रीदामा च चतुर्थस्तु कन्ये हि कृष्णवल्लभे॥७॥राधिकायमते बाले महाबुद्धिबलोदये ॥ तत्रापि राधिकाशश्वदतिप्राणप्रिया हरेः ॥८॥ अष्टम्यां भाद्रशुक्लस्य सा जाता रविवासरे॥रात्रौ पराह्नसमये ज्येष्ठायाश्चान्तिमे पदे ॥९॥

॥३॥ पूर्वकालमें आसिषेण नामवाला एक अतिपवित्र और सम्पद्समृद्धियुक्त महागोप आर्ष्टिग्राममें वास करता था॥४॥उसके महाभानु नामका एक पुत्र था,इन महाभानुका पुत्र सुभानु और सुभानुका पुत्र अत्यन्त पुण्यात्मा वृषभानु हुआ॥५॥ पतिव्रतापरायण मानवी इनकी माता थीं और इनके कृष्णभक्त चार पुत्र थे॥६॥ वृषबंधु, मनःसौख्य, स्तोककृष्ण और श्रीदामा नामवाले यह चार पुत्र थे वे भी कृष्णमें रत हुए, एक कन्या कृष्णकी प्यारी॥७॥ महाबुद्धिमती प्रभायुक्त कृष्णवल्लभा राधिका नामकी थी, सबमें राधाही श्रीहरिको अत्यन्त प्यारी थी ॥ ८ ॥ भादोंके महीनेमें रविवारके दिन शुक्ला

अष्टमीमें आधीरातके पीछे ज्येष्ठा नक्षत्रके चौथे चरणमें राधिकाका जन्म हुआ॥९॥मैं राधिकाके परमाद्भुत भाग्यकी वार्ता और क्या कहूं। जो परमानंद मंदिरस्वरूप भाग्यके विषयमें ब्रह्मादि देवता भी नहीं जानते ॥१०॥ इसके पीछे वैशाखमासके शुक्लपक्षकी अक्षयतृतीयाके दिन रोहिणीनक्षत्रमें शुभ मुहूर्त्त और लग्नको देखकर गुणवान् वृषभानुने उत्तम वस्त्र और अन्न इत्यादि समृद्धिको देकर कन्याके विवाहका कार्य सम्पादन किया ॥११॥१२॥ शुकदेवजी बोले कि, हे भृंगराज ! पुण्यसे भी अधिक पुण्यवान् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके वंशका वर्णन करो जिसके केवल स्मरण करनेसे ही मनुष्योंको

किमहं वर्णये भाग्यं राधायाः परमाद्भुतम्॥ब्रह्मादयोऽपि न विदुः परमानन्दमन्दिरम्॥१०॥ततो विवाहमकरोद्वृषभानुर्गुणोदयः॥ वैशाखे सितपक्षे तु तृतीया चाक्षयाह्वया॥११॥रोहिणी स्वर्क्षसम्पूर्णा जायालग्नशुभावहा॥पारिबर्हादिकं दत्त्वा वस्त्रमन्नं समृद्धिमत् ॥१२॥कीर उवाच ॥ श्रीकृष्णस्यान्वयं ब्रूहि पुण्यात्पुण्यतरं हि मे ॥ यस्य स्मरणतो यान्ति पापा अपि शुभां गतिम्॥१३॥ न नित्यस्यात्मनो जन्म न च कर्म्म कुलं क्रिया॥तथापि व्यक्तिमापन्नो भवेद्धि भगवान् स्वयम्॥१४॥व्य[illegible]रा त्वनेकात्मा स्वयं वै तत्स्वरूपधृक्॥स्वयं पिता स्वयं माता स्वयमेव कुलाकरः॥१५॥ विभाति तत्स्वरूपेण परमात्मा सनातनः ॥ तथाऽपि कथयाम्येतत्तुभ्यं श्रद्धालवे द्विज॥१६॥अनन्यशरणेभ्यो हि रहस्यं नैव गोप्यते॥शृणुष्वावहितः कीर सुगोप्यमपि तद्वदे॥१७॥

[illegible]त्तम गति प्राप्त होती है॥१३॥यद्यपि नित्य भगवान्के जन्म कर्म और कुलकी क्रिया कुछ भी नहीं है तथापि वह अपनी इच्छाके अनुसार जिस [illegible]कटलीलाको प्रकाश करते हैं॥१४॥वे ही उनके जन्मादिरूपमें कही हैं; सनातन परमात्मा जीवात्मा रूपधारियोंके शरीरमें विराजमान हैं,इस कारण वह स्वयं पिता माता और कुलदेव हैं हे द्विज ! तो भी तुमने श्रद्धासहित जो कुछ पूछा है उसीका उत्तर देता हूं॥१५॥१६॥ कारण यह है कि,अनन्य

भगवान्‌की शरणवाले मनुष्यके निकट कोई विषय भी गुप्त नहीं है. हे कीर! तुम सावधान होकर श्रवण करो, जो विषय गुप्त हैं उन्हें मैं भी तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं ॥ १७ ॥ वृन्दावनमें आभीरभानुनामके एक गोपराज वास करते थे, उनके पुत्र चन्द्रसुरभि, चन्द्रसुरभिके पुत्र सुश्रवा॥ १८ ॥ सुश्रवाके पुत्र कालमेदु इन कालमेदुके दश पुत्र हुए, जयसेन, जयबल, जयकीर्ति, यशोधन॥१९॥ कण्ठभानु, महाबुद्धिमान् मेरु, मनोरथ, वरांगद और चित्रसेन थे, चित्रसेनके नौ पुत्र हुए ॥ २० ॥ सुनंद, उपनंद, महानंद, नन्दन, कुलनन्द, बंधुनंद, केलिनन्द, ॥ २१ ॥ प्राणनंद और परमम

आभीरभानुर्गोपेशो वसतिस्म महावने॥तत्पुत्रश्चन्द्रसुरभिस्तस्यासीत्सुश्रवा महान्॥१८॥कालमेदुःसुतस्तस्यकालमेदोःसुता दश॥ जयसेनो जयबलो जयकीर्तिर्यशोधनः ॥१९॥ कण्ठभानुर्महाबुद्धिर्मानमेरुर्मनोरथः॥वराङ्गदश्चित्रसेनस्तस्य पुत्राभवन्नव ॥२०॥ सुनन्दश्चोपनन्दश्च महानन्दोऽथ नन्दनः ॥ कुलनन्दो बन्धुनन्दः केलिनन्दोऽथ सप्तमः ॥२१॥ अष्टमः प्राणनन्दश्च नन्दोऽयं परमो महान् ॥ तस्य पत्नी यशोदा च महाभाग्यवती शुभा ॥ २२ ॥ तस्याश्च भक्तिभावेन भगवानभवत्स्वयम् ॥ व्यक्तानां व्यक्तिमापन्नो नित्यानां नित्यदर्शकः ॥ २३ ॥ अनेकरूपरूपोऽसौ सुरूपश्च सनातनः ॥ श्रीकृष्णः करुणासिन्धुस्त्वधीरः सर्वशक्तिधृक् ॥ २४ ॥ व्रजे व्रजे विनोदी च विपिने विपिने सुहृत् ॥ वैकुण्ठेऽकुण्ठरूपोऽसौ जलशायी जले सदा ॥ २५ ॥

हान् नंद हुए. इन नंदकी स्त्रीका नाम यशोदा था यह महाभाग्यशालिनी थी ॥२२॥ इनकी ही भक्तिभावसे प्रसन्न हो भगवान्‌ने इन्हींके स्वयं पुत्र होना अपना स्वीकार किया था, मनुष्योंमें मानवलीला करनेवाले नित्यधाममें सर्वदा पार्षदोंके समीप नित्यरूपसे विराजमान ॥ २३ ॥ अनेकरूप और माधुर्य युक्त सनातन करुणाके समुद्र श्रीकृष्ण सर्वशक्तिसम्पन्न होकर धैर्यशून्य होकर प्रकट हुए ॥२४॥श्रीकृष्ण व्रजधामके वन २ में गोपोंके बालकोंके साथ बाल

लीलामें परायण हो वैकुंठधामके सब ऐश्वर्योंसे विराजित और क्षीरसमुद्रमें शयनकरनेवाले नारायणरूपसे प्रकाशित हुए ॥२५॥ सम्पूर्णलीलाके करनेवाले उन हरिकी इच्छासे ही सृष्टि उत्पन्न होती है; सभी भगवान्की लीला है, कहां वह उत्पन्न होता है और कहां वह लय होता है ॥ २६ ॥ वनके बीचमें गौके चरानेवाले व्रजके रहनेवाले बालकोंके साथ सखाभावसे क्रीडा करनेवाले ॥ २७ ॥ और वृन्दावनमें सैकडों व्रजकी स्त्रियोंके साथ रतिक्रीडा व रासलीला भी उन श्रीकृष्ण भगवान्ने भक्तोंके अनुरागके ही अर्थ विशेष लीला की ॥ २८ ॥ इन सब लीलाओंको प्रभु श्रीकृष्णभगवान् वन और

सृष्टिरिच्छाकृता यस्य सर्वलीलाकरो हरिः ॥ अनाविरावि: कुत्रापि न व्रजेदहितः क्वचित् ॥ २६ ॥ ये ये च सखिभिः सार्द्ध नन्दयन्ते व्रजौकसः ॥ क्रीडन्ते विपिने गावश्चारयन्तो वनान्तरे ॥२७॥ तथा वने व्रजस्त्रीभिः कोटिभिश्च व्रजौकसः ॥ क्रीडन्ते बहुधा नित्यं क्रीडन्ते रासलीलया ॥२८॥ तत्र कुञ्जनिकुञ्जेषु राधया सहितः प्रभुः राधा च नायिकाभावैरानन्दयति वल्लभम् ॥ ॥ २९ ॥ संभोगे योगकाले हि जायन्ते च पृथक् पृथक् ॥ सख्ये सख्यस्तथा सर्वा मया पूर्व्वं निवेदिताः ॥ ३० ॥ नित्यं क्रीडा निकुञ्जेषु कदाचिद्विचरन्महीम् ॥ अनन्तलीलाऽस्य हरेस्त्रिधा लीलाऽस्ति नित्यदा ॥ ३१ ॥

कुंजोंके भीतर विस्तार करते थे, और उन लीलाओंमें श्रीमती राधिकाजी भी उनकी सहायिका होकर नायिकारूपसे प्रीतमको आनंद देती थीं ॥२९॥ भगवान् श्रीकृष्णकी योगमायाके आश्रयसे श्रीमतीके मिलनेसे उनके संभोगकी आख्या और शृंगार और जो जो पृथक्२लीला हुई हैं, उनको म भली प्रकारसे तुम्हारे निकट कहता हूं॥३०॥ इस पार्थिव प्रकट लीलामें कुंजोंके भीतर जो सम्पूर्ण लीला हुई हैं वे सभी नित्य हैं, भगवान्की लीलाके अनंत होनेसे भी तीन प्रकारकी लीला प्रधान कही हैं ॥ ३१ ॥

शुकदेवजी बोले कि, भगवान् श्रीकृष्णके सखाओंकी संख्या और उनके नाम सुननेकी मेरी इच्छा होती है, इस कारण हे भृंगराज ! उन २ विषयोंका वर्णन कर मेरी मनोकामना पूर्ण कीजिये ॥ ३२ ॥ भृंगराजने कहा कि भगवान्के सखाओंकी संख्या करोड़ है, उनके बीचमें थोड़ेसे सखाओंके नाम कहता हूं तुम श्रवण करो ॥ ३३ ॥ यह प्रथम ही कह आये हैं कि, वृषभानुके वृषबन्धु, मनःसौख्य,

कीर उवाच ॥ सखायः कति कृष्णस्य तेषां नामानि वा पुनः॥ ब्रूहि मे श्रोतुमिच्छामि त्वत्तोऽहं मधुपाधिप॥३२॥भृङ्ग उवाच॥कोटि सङ्ख्याः सखीयन्ते तेषां मुख्या हरेः प्रियाः॥शतैकसंख्यया ख्याता नामान्येषां वदामि ते॥३३॥वृषबन्धुर्मनःसौख्यः स्तोककृष्ण स्तथाऽपरः ॥ श्रीदामा वृषभानोश्च पुत्राश्चत्वार एव च ॥३४॥ अनन्तभद्रो वृषभ ओजस्वी च वरूथकः ॥ देवभद्रो विनोदाख्यः सुबलश्चार्जुनोऽपरः ॥३५॥ अथ ते कथयिष्यामि कामकन्दो मरुत्सहः ॥ प्राणभानुः क्षमीरोत्सो विधृतिः श्यामसङ्गमः॥३६॥ वारिजाक्षो हंसगतिः कालकन्धो मसीहरः ॥ विनेता वसुबाहुश्च बृहद्भानुरथापरः ॥३७॥ केलिः सुकेलिः सुभगो बली च लय एव च ॥ मारकेलिः कलोत्तारः कलभाषी कलस्वनः ॥३८॥ शीतरश्मिर्विधुर्भानुर्भावितो भाविनो भवः ॥ रतिप्रीतो वीरसेनो मञ्जुबुद्धिर्बलानुगः ॥ ३९ ॥

स्तोककृष्ण और श्रीदामा ये चार पुत्र थे ॥३४॥ अनन्तभद्र, वृषभ, ओजस्वी, वरूथक, देवभद्र, विनोदाख्य, सुबल, अर्जुन ॥ ३५ ॥ कामकन्द, मरुत्सह, प्राणभानु, क्षमीरोत्स, विधृति, श्यामसंगम, ॥ ३६ ॥ वारिजाक्ष, हंसगति, कालकंध, मसीहर विनेता, वसुबाहु, बृहद्भानु ॥३७॥ केलि, सुकेलि, सुभग, बली, लय, मारकेलि, कलोत्तार, कलभाषी, कलस्वन, ॥३८॥ शीतरश्मि, विधु, भानु, भावित, भाविन, भव, रतिप्रिया, वीरसेन,

मंजुबुद्धि, बलानुग ॥३९॥ कीर्ति, सिन्धु; माल्यद चेतन, चतुरानन, रेष, परेश, रेताख्य, मानमेरु पराञ्जन ॥ ४० ॥ पावन, मदनाकान्त, कुंकुम, कमलाकर, शतेज्य, शतशक्ति, शतानंद, यशोधन, ॥४१॥ सन्तोष, शंकर, साधु, शान्तिभद्र, शम, नर, देवभद्र, भद्राश्व, सुदेव, सुखसागर ॥४२॥ परशुराम, रजनीकर, श्रीभद्र, भासुर, श्रीद, शालिभद्र, गद, पर ॥४३॥ नर, नारायण, अमल, अतिसुख, संजय; जितसंज्ञ इत्यादि गोपोंके बालक

कीर्त्तिसिन्धुर्माल्यदश्च चेतनश्चतुराननः॥रेषः परेशो रेताख्यो मानमेरुः पराञ्जनः॥४०॥पावनो मदनाक्रान्तःकुङ्कुमःकमलाकरः शतेज्यः शतशक्तिश्च शतानन्दो यशोधनः॥४१॥सन्तोषः शङ्करः साधुः शान्तिभद्रः समो नरः॥देवभद्रस्तु भद्राश्वः सुदेवः सुखसागरः॥४२॥एवं परशुरामश्च रजनीकर एव च॥श्रीभद्रो भासुरः श्रीदः शालिभद्रो गदः परः॥४३॥ नरो नारायणश्चान्योऽमलश्चातिसुखस्तथा॥सञ्जयोऽजितसंज्ञश्च कृष्णस्यासन्सखिप्रियाः॥४४॥क्रीडन्ते हरिणा नित्यं वने संचारयन्ति गाः॥न ते नश्यन्ति लोका वै वयःपरिणतिर्न हि॥४५॥इति ते कथितो ब्रह्मन्संवादः कीरभृङ्गयोः॥नित्यं रूपमिदं विष्णोः सदा क्रीडापरायणम् ॥४६॥

ये सभी श्रीकृष्णके अत्यन्त प्यारे सखा थे ॥ ४४ ॥ ये सब वनमें गौओंको चराते हुए सर्वदा श्रीकृष्णके साथ क्रीडा करते थे । श्रीकृष्णका धाम, सर्वदा नित्य और अविनाशी है उनके सखा भी आयुसंख्यासे रहित अर्थात् अविनाशी हैं ॥ ४५ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह मैंने तुम्हारे निकट शुकदेव और भृङ्गराजका अर्थात् अपना संवाद वर्णन किया, यह विष्णुभगवान्‌के रूप श्रीकृष्ण इस प्रकार सर्वदा क्रीडामें परायण हैं ॥ ४६ ॥

१ यह संवाद भृङ्गरूपधारी नारायण और ब्रह्माजीका है, परन्तु कहीं २ नारायणने अपने लिये (अस्मद्) शब्दका प्रयोग न करके केवल "भृङ्ग" शब्दका ही प्रयोग किया है, इस कारण पाठकोंको भ्रम करना योग्य नहीं ।

ब्रह्माजी बोले कि तुम महान् भ्रमरका रूप धारणकर इससमय कहांसे आये हो, हमारे ऊपर कृपा करके अपने स्वरूपका वृत्तांत वर्णन करो॥४७॥हे विद्वन्! मैं तुमको जिस भ्रमररूपसे देखता हूं तुम वास्तवमें वह नहीं हो यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा है तो सत्य २ ही अपने स्वरूपको कहो॥४८॥ भृंगराज बोले कि हे ब्रह्मन्! हमारे शरीरको कभी कोई नहीं देख सकता, हमारे स्वरूपको भी कोई भली प्रकार नहीं जान सकता॥४९॥ब्रह्माजी बोले कि केवल यह कहते ही भृंगराज अन्तर्धान हो गये, तब मैं विस्मित होकर उनको मनमें ही नमस्कार कर समस्त वृत्तांतको जाननेकी इच्छासे आसनपर बैठा

ब्रह्मोवाच ॥ कस्त्वं समागतोऽस्यत्र महाभ्रमररूपधृक्॥ समाख्याहि स्वरूपं तन्ममोपरि दयां कुरु॥४७॥ इदं तत्त्वमहो विद्वन्न त्वं मधुपरूपवान्॥यथातथमथो सत्यं ब्रूहि त्वं मयि चेत्कृपा॥४८॥भृङ्गराज उवाच ॥ ब्रह्मन्निदं मम वपुर्नहि दृष्टं हि केनचित्॥न मत्स्व रूपं केनापि सम्यग्ज्ञातं कदाचन ॥४९॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्हितो भृङ्गस्ततोऽहं विस्मितोऽभवम्॥अहं तस्मै नमस्कृत्य स्थित स्तत्रासनोपरि॥५०॥ध्यानवानस्मि सुचिरं द्रष्टुं सर्वमशेषतः॥ततो वर्षसहस्रान्ते दृष्टो नारायणो मया॥५१॥ तदाज्ञातोऽसृजं लोका न्यथापूर्वमवस्थितान्॥अनुग्रहान्महाविष्णोरपरं कथितं सुत॥५२॥ नारद उवाच॥ इति श्रुतं मे ऋषयो भवद्भ्यो विनिवेदितम् ॥ यथोक्तं ब्रह्मणा मह्यं पुरावृत्तमिदं महत्॥५३॥यदासीदद्भुततमं कन्यारूपस्यमेमहत्॥वृन्दावनेभगवता दर्शितंतद्वदामिवः ॥५४॥

॥५०॥ और ध्यानका अवलम्बन कर समस्त ब्रह्मांडको देखने लगा, इसके पीछे सहस्रवर्षके उपरान्त मैंने भगवान् नारायणका दर्शन किया॥५१॥ पीछे उनकी कृपा और आज्ञासे पूर्वकल्पके समान फिर सम्पूर्ण संसारकी सृष्टि की. हे पुत्र! वह विषय प्रथम ही तुम्हारे निकट वर्णन कर आया हूं॥५२॥ नारदजी बोले कि हे ऋषियों! मैंने आपके निकट ब्रह्माके मुखसे सुना हुआ यह वृत्तांत वर्णन किया॥५३॥मैं एक समय दैवयोगसे स्त्रीरूपी होकर

वृन्दावनमें भगवान्के इस अद्भुत चरित्रको देख उसीको मैं तुमसे वर्णन करता हूं तुम श्रवण करो ॥ ५४ ॥ भगवान्के चरणोंकी सेवासे और उनके गुणगान व श्रवण करनेसे यदि उनकी कृपा हो जाय तो मनुष्यको कुछ भी दुर्लभ नहीं है। साधुओंकी संगतिसे जन्म सफल होता है॥५५॥ इति श्रीआदिपुराणे सूतशौनकसंवादे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥ इसके उपरांत नारदजी बोले कि मैं कन्यारूपी होकर वृन्दावनमें घूम रहा था उस समयमें इस अद्भुतचरित्रको देखकर मोहित हो गया, प्रभु श्रीकृष्णचन्द्र उस समय कौतूहलके वश होकर मनोहर रूप धारणकर वहां आये१॥

कृपा भगवतो भवेद्यदि तदीयपादाम्बुजद्वयस्य हि समर्चया हरिकथासमाकर्णनैः॥तदास्य सुलभं न किं भवति साधुसङ्गस्तथा करोति दुरितापहत्सफलमेव जन्माखिलम् ॥ ५५ ॥ इति श्रीसकलपुराणसारभुते आदिपुराणे वैयासिके नारदशौनकसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ नारद उवाच ॥ महत्कौतूहलेनैव आजगाम स्वयं प्रभुः ॥ महदत्यद्भुतं रूपं यत्प्रदिष्टं ह्यहर्निशम् ॥ १ ॥ न स्मरन्ति तनुं स्वां तु गोप्यो रसविमोहिताः ॥ दृष्ट्वा संमोहितस्तत्र कन्यारूपोऽहमद्भुतम्॥२॥न मे देहमतिस्फूर्त्तिरासीत्तत्र द्विजोत्तमाः॥तमपश्यं व्रजे श्यामं कामं कञ्जविलोचनम् ॥३॥ मोचनं सर्वतापानां स्मरणात्पापिनामपि॥न तच्चित्रं द्विजाश्चित्तमवशं कृष्णदर्शनात्॥४॥भवतीह भृशं गोपगोपीभिःसह किं पुनः॥ऐरावतीशतज्योत्स्ना स्वकान्त्या च तिरस्कृता॥५॥

जिस रूपके दर्शनसे गोपियें मोहित हो अपने २ शरीरकी कांतिको भूल गयीं, मैं उस स्वरूपको देखकर शरीरहीन और हतबुद्धि होकर रह गया॥२॥हे ब्राह्मणो! मैं उन कामरूपी कमलके समान नेत्रवाले श्रीकृष्णको देखने लगा॥३। जिनके स्वरूपको स्मरण करते ही समस्त पापियोंके पाप दूर हो जाते हैं जिनके शरीरकी कांतिसे बिजली लज्जित होती है, ऐसे रूपवान् परस्परमें क्रीडा करते हुए गोपियोंके साथ श्रीकृष्णको देखकर यह चित्त अवश होजाय

तो आश्चर्य ही क्या है॥ कांतिमान् गोपियें अपनी कांतिसे बिजलीको भी लज्जित करती थीं ॥४॥५॥ कोई गोपी श्रीकृष्णके साथ अपने मधुर स्वरसे गान कर रही है ॥६॥ कोई उनके प्रेमसे व्याकुल होकर उनको आलिंगन कर रही है, कोई एकटक लोचनसे श्रीकृष्णके कमलके समान सुन्दर मुखारविंदको निहार रही है॥ ॥७॥ कोई रासमें नृत्य कर रही है और कोई श्रीकृष्णके प्रेममें मग्न है ॥८॥ कोई गोपी अपने हाथसे श्रीकृष्णके हाथोंको पकड़ रही है, उनके किंकिणीके स्वर और रससे मोहित हुए जीवोंको स्थावरत्व और स्थावरोंको सात्त्विक भावका उदय लाभ होने लगा

ताभिः समं मुकुन्देन क्रीडन्तीभिः परस्परम् ॥ काचित्सहैव कृष्णेन गायन्ती मधुरस्वरम् ॥ ६ ॥ काचिदालिङ्गनं तस्य कुर्वती प्रेमविह्वला॥काचिच्चानिमिषैर्नेत्रैः पश्यन्ती वदनाम्बुजम् ॥ ७ ॥ काचित्कराभ्यां च करौ कृष्णस्य समयोजयत्॥नृत्यगीतविनोदैश्च काचित्कृष्णमरीरमत् ॥ ८ ॥ पादन्यासविलासैश्च किङ्किणीनां स्वरैस्तथा ॥ चराणामचरत्वं च स्थावराणां च वै गतिः ॥९॥आसीत्तच्चित्रमुग्धानां रासरागवितानतः॥नानावादित्रघोषैश्च रसनानां च निःस्वनैः॥१०॥नान्तो ह्यस्य विलासस्य गम्यते विबुधैरपि॥वलयानां नूपुराणां निनादः परमो महान्॥११॥॥विलोक्याद्भुतमेतन्मे विस्मयोऽतिशयोऽभवत् ॥ किमेतदद्भुततमं किं वाऽनन्दो महोत्तमः ॥१२॥ अहो कथं मया दृष्टं किं मयाचरितं शुभम्॥इति मन्मानसं ज्ञात्वा नन्दिनी हरिमानसा ॥१३॥

॥९॥भगवान्के वस्त्रोंकी शोभा और अनेक बाजे तथा रसनाओंके शब्दसे देवता भी मोहित हो गये॥१०॥ इस विलासका अंत विद्वान् भी नहीं जान सकते, वलय और नूपुरोंका महान् शब्द होने लगा॥११॥इस अद्भुत चरित्रको देखकर मैं अत्यंत ही विस्मित हुआ, यह क्या आश्चर्य है, कैसा आनन्द है॥१२॥मैंने कौनसे भाग्यके बलसे इस रूपका दर्शन किया ? मैं इस प्रकारकी चिंता कर रहा था कि इतनेमें ही नंदनी नामकी श्रीकृष्णकी

अत्यंत प्यारी सखी मेरे समीप आकर ॥ १३ ॥ यह वचन बोली कि, हे सुंदरि ! मैंने तुम्हारी आज्ञासे श्रीकृष्णके निकट जाकर तुम्हारा समस्त वृत्तांत उनसे कहा ॥१४॥ अब उन्होंने जो कुछ मुझसे कहा है वह मैं यथावत् कहती हूं तुम श्रवण करो ॥१५॥ वह तुम्हारी वार्ताको सुनते ही तत्काल चले आये हैं, इस समय नेत्रोंको आनन्द देनेवाले श्रीकृष्णका अपने नेत्रोंसे दर्शन कर तृप्त हो॥१६॥नारदजी बोले कि उस सखीके यह वचन कहते२श्रीकृष्ण भगवान् स्वयं प्रकट होकर अपने साथकी गोपियोंको छोड़कर मेरे निकट आकर उपस्थित हुए॥१७॥और मुझसे बोले कि हे भीरु !

उवाच वचनं सत्यं शृणु कन्ये वचो मम॥यथावत्कथयाम्यद्य सौहार्दस्नेहयन्त्रिता॥१४॥त्वयाऽहं प्रेषिता बाले श्रीकृष्णाय निवेदितम्॥स श्रुत्वा त्वत्समाचारमाजगाम तवान्तिकम्॥१५॥ तं विलोकय चक्षुर्भ्यां योऽयं मधु सुचक्षुषाम् ॥१६॥ नारद उवाच॥ इति तस्यां कथयन्त्यां श्रीकृष्णो भगवान्स्वयम्॥त्यक्त्वा गोपीं नातिदूरे मत्समीपमुपागमत्॥१७॥उवाच मामागताऽसि कुतः कस्यासि शोभने॥विस्मिताऽसि कथं भीरु किं ते दृष्टमिहाद्भुतम्॥१८॥ एवं तस्य वचः श्रुत्वा न शशाकावलोकितुम्॥कृत्वा मुखमधोह्यूचे किं वदामि तवाग्रतः॥१९॥त्वं मे प्राणपतिः सम्यग्गतिस्त्वं मम जीवनम्॥नान्यं स्मरामि मनसा वचसा न वदामि च॥२०॥ त्वत्समीपे कदा स्थास्य इति मे प्रार्थनं परम् ॥ न यामि कर्हि कुत्रापि त्यक्त्वा त्वां हि प्रियोत्तम ॥ २१ ॥

तुम कौन हो?और तुम्हारा आगमन कहांसे हुआ है तुम किस अद्भुत विषयको देखकर विस्मित हुई हो ॥१८॥ उनके ऐसे वचनोंको सुनकर मुझे और उनके दर्शनकरनेकी सामर्थ्य न रही, परंतु नीचेको मुख कर बोली कि,हे प्रभो!तुम्हारे आगे मैं क्या कहूं॥१९॥तुम हमारे प्राणपति हो,तुम्हीं हमारी गति और जीवन हो!मैं तुम्हारे अतिरिक्त दूसरेको मनसे स्मरण नहीं करती और तुम्हारे विना दूसरोंके साथ वार्तालाप भी नहीं करती॥२०॥मैं तुम्हारे

निकट कब जाऊंगी केवल एक यही मेरी प्रार्थना है,हे प्रियतम ! मैं तुम्हें छोड़कर किसी दिन भी कहींको नहीं जाऊंगी ॥२१॥ हे प्रभो ! हे प्राणेश ! आज मेरे प्राण तुम्हारे अधीन हैं सम्पूर्णलोक जिस विष्णुकी कृपाके बिना क्षणमात्र भी जीवन धारण करनेमें समर्थ नहीं होते, वह विष्णु क्या तुमसे उत्पन्न नहीं हैं॥२२॥हे विश्वनाथ ! हे गोपिकाओंके अलंकार ! जिस मनुष्यका चित्त तुममें आसक्त न हो उसके जीवनको धिक्कार है॥२३॥ जो लोग तुम्हारी लीलाका दर्शन नहीं करते उनके कुलकी क्रिया निष्फल है,सेवाविमुख राजप्रियाओंसे तुम्हारी दासी चांडाली भी श्रेष्ठ है॥२४॥

प्राणेशाद्य मम प्राणास्त्वदायत्ता महाप्रभो॥को जीवति विना विष्णुं स विष्णुस्तेन संभवः॥२२॥तेषां धिग्जीवितं लोके येषां त्वय्यचला रतिः॥ न भवेदिह विश्वेश गोपिकावृन्दमण्डन ॥२३॥ यैर्न दृष्टा तव क्रीडा व्रीडा तेषां कुलेष्वपि॥वरं राजप्रियाभ्योऽपि चाण्डाली तव सेविका ॥२४॥ अहो नाथ कृपासिन्धो मम प्राणास्त्वदाश्रयाः ॥ वृन्दावनविनोदांस्ते द्रष्टुमिच्छामि मानद ॥२५॥ यद्यहं त्वां न पश्येयं चक्षुर्भ्यां प्राणवल्लभ ॥ तदा मम विलीयेत इयं प्राणान्विना तनुः॥२६॥नाग्नेर्ज्योतिस्तथा भानोः प्रभा कान्तिर्विधोर्न च ॥ एतावत्कल्पपर्यन्तं वञ्चिताऽस्मि कृपानिधे ॥ २७ ॥ काठिन्यमनुभूतं ते कृपां कुरु मयि प्रभो ॥ इति मद्गदितं श्रुत्वा कृपालुर्भगवान्प्रभुः ॥ २८ ॥

हे नाथ ! हे करुणासिन्धो ! मेरा जीवन तुम्हारे अर्पण हुआ है, हे मानद ! वृन्दावनमें तुम्हारी लीलाओंके देखनेकी अभिलाषा करती हूं ॥२५॥ हे प्राणवल्लभ!जो मैं तुमको अपने नेत्रोंसे न निहारूंगी तो मेरा शरीर प्राणोंके विना लयको प्राप्त हो जायगा ॥२६॥ हे कृपानिधान!शिखा क्या अग्निके विना रह सकती है अथवा प्रभा सूर्यके विना वा चांदनी चन्द्रमाके विना क्या कहीं ठहर सकती है,मैं इतने समयतक तुमसे वंचित रही हूं॥२७॥और तुम्हारे

कठिन विलक्षणताका अनुभव कर रही थी, हे प्रभो ! इस समय मेरे ऊपर कृपा करो, वह कृपालु भगवान् मेरे ऐसे वचनोंको सुनकर ॥ २८ ॥ मेरा विचार करते हुए उस सखीको मेरे निकट छोड़कर और गोपियोंके साथ आप अन्तर्धान हो गये ॥ २९ ॥ भगवान्के अन्तर्धान होनेसे मैं अत्यन्त व्याकुल हो गई और मृगके बच्चेके समान ऊँचे स्वरसे रुदन करती हुई ॥३०॥ पृथ्वीपर गिर हा नाथ ! हा नाथ ! कह कर मूर्च्छित हो गयी, मुझे फिर अपने शरीरकी कुछ भी सुधि न रही॥३१॥वह सखी मुझे ऐसी पतिके विना व्याकुल देख अपने हाथोंमें उठाकर मीठे

विचार्य्य देयमेतस्यै ततश्चान्तरधीयत ॥ गोपीभिः सहितस्तां तु सखीं त्यक्त्वा ममान्तिके ॥ २९ ॥ अन्तर्हिते भगवति जाता विकलिता भृशम् ॥ रुरोदोच्चैः स्वरैर्बाला मृगशावविलोचना ॥३०॥ पतिता भुवि भावेन हा नाथ इति वादिनी॥विमूर्च्छिताऽहं तत्रैव न सस्मार तनुं तदा ॥ ३१ ॥ विलोक्य सा सखीं तां तु तादृशीं पतिविह्वलाम् ॥ समुत्क्षिप्य स्वबाहुभ्यामूचे मां मधुरं वचः ॥ ३२ ॥ किमिति त्वं विस्मिताऽसि दर्शयिष्ये त्वहं हरिम् ॥ रहोविहारिणं कान्ते स्वकान्तावशवर्त्तिनम् ॥ ३३ ॥ शौनक उवाच ॥ केयं सखी किं नामास्याः किं कर्म्म तन्निवेदय ॥ यां त्यक्त्वाऽन्तर्हितः कृष्णो गोपीनां प्राणवल्लभः ॥ ३४ ॥ नारद उवाच ॥ सखीयं नन्दिनी नाम्ना दूतीकर्म्मणि योजिता ॥ नित्यं सन्निहिता विष्णोः परमानन्दवर्द्धिनी ॥ ३५ ॥

वचनोंसे कहने लगी ॥३२॥ कि तुम इतनी व्याकुल क्यों होती हो, मैं तुमको एकान्तविहारी अपनी शोभाके वशवर्ती श्रीकृष्णको दिखाऊंगी ॥३३॥ शौनकजी बोले कि गोपियोंके प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण जिस गोपीको छोड़कर चले गये थे उस सखीका नाम क्या था और उसका कार्य ही क्या था सो आप हमारे निकट वर्णन कीजिये ॥३४॥ नारदजी बोले कि यह नन्दिनी नामकी श्रीकृष्णकी सखी दूतीका काम करती थी, यह सर्वदा ही विष्णुके साथ परम

आनन्दको बढ़ाती थी॥३५॥हे द्विजोत्तम! मैं आज आपसे दूतियोंके लक्षण कहता हूं तुम सावधान होकर इस परम अद्भुत रहस्यको श्रवण करो ॥ ३६ ॥ उत्तमवेश, दुःखकी सहनशीलता, छन्दका अनुवर्तन और अलक्षता ॥ ३७ ॥ उत्साह, गुणकथाका कहना, विश्वास, श्रमरति, प्रियदर्शन, गाढ अनुरागके वचन, वाक्यसिद्धि, यह सोलह कर्म पंडितोंने दूतियोंके कहे हैं ॥३८॥ हे ऋषे! मैंने आपके निकट यह समस्त

दूतीनां लक्षणं तुभ्यं वदाम्यद्य द्विजोत्तम ॥ शृणुष्वावहितो भूत्वा रहस्यं परमाद्भुतम् ॥ ३६ ॥ सुवेषता दुःखसहिष्णुता च सुशीलता कोमलवाक्यता च॥सन्मन्त्रिताऽऽच्छादितमन्त्रता च च्छन्दानुवृत्तित्वमलक्ष्यता च॥३७॥ प्रोत्साहनं गुणकथाकथनं बलानां विश्रम्भणं श्रमरतिः प्रियदर्शनं च॥गाढानुरागवचनं वचनस्य सिद्धिः कर्म्मेति षोडशविधं कथयन्ति दूत्याः॥३८॥ समं विंशति कर्म्माणि दूतीनां गदितानि च ॥ साहचर्यं मयैवोक्तं राधामाधवयोः सदा ॥ तस्याः सर्वाणि कर्म्माणि सन्ति तानि वदामि ते॥३९॥ प्रोत्साहनं चार्थनिवेदनं च गुणप्रशंसा नितरां प्रतीतिः ॥ तत्रातिरागाभिनिवेदनं च कथाकलानां कथनं द्वयोश्च॥४०॥ शौर्य्यप्रकाशो बहुमित्रता च सुवेषता दुःखसहिष्णुता च ॥ मितोक्तिता मन्त्रनिगूढता च सुसौख्यवार्ता च स्वतन्त्रता च ॥४१॥ रूपज्ञता कालनिवेदिता च देशज्ञता वा सहजज्ञता च ॥ सर्वत्र कर्मण्यतिविज्ञता च दोषाकराच्छादनकार्यपट्वी ॥ ४२ ॥

वृत्तान्त वर्णन किया, दूतियोंके यह सब कर्म हैं, मैंने कोई भी विपरीत नहीं कहा है, राधा माधवकी सखी हैं ॥३९॥ प्रोत्साहन, अर्थनिवेदन, गुण प्रशंसा, अत्यन्त विश्वास, अतिरागाभिनिवेदन, कला सहित कथा राधामाधवके विषयकी वार्ता॥४०॥शौर्यप्रकाश, बहुमित्रता, सुवेशता, दुःखसे युक्त स्वल्पभाषण, सलाहमें चतुर, सौख्यवार्ता, स्वतन्त्रता,॥४१॥रूप अर्थात् सुन्दररूपकी माधुरीका ज्ञान, और यथार्थ समयका बोध, सब कर्मोंमें चतुर,

प्रभूत दोषोंको आच्छादन करनेमें प्रवीण ॥४२॥ शुभोदयाख्यापनशीलता, सौन्दर्यप्रकाशन, प्रेमालापमंत्रिता, मृदूक्तिता, शब्दमात्रार्थज्ञानता, विवेकविज्ञान, कथाकी प्रशंसा ॥४३॥ सर्वत्र जाकर आलापमें कुशल और अनेकवचनोंमें चतुर स्त्री और पुरुषके मनको आनंदित करना इत्यादि यह सुयोग्य दूतीके गुण हैं॥४४॥अत्यन्त प्रेममें परायण और इन सब उपरोक्त दूतीके समस्त गुणोंमे युक्त राधाकृष्णकी वह सखी मुझे व्याकुल देखकर बोली ॥४५॥कि, हे वामोरु ! तुम किस कारणसे खेदित होती हो,तुम इस स्थानमें एक अद्भुत चरित्र देखोगी मेरे साथ आओ;आज मैं तुमको जनार्दन भग-

शुभोदयाख्यापनशीलता च सौन्दर्यशंसा मिथुनोक्तमन्त्रिता ॥ मृदूक्तिता चार्थनिनादवेदिता विवेकविज्ञानकथाप्रशंसा ॥४३॥
सर्वत्र गत्वाऽभिनिवेदिता च प्रोक्ता हि दूत्याचरणे सुयोग्या॥अनेकविज्ञानवचोभिरञ्जसा वियोजयन्ती पुरुषं स्त्रियं च॥४४॥
एतैर्दूतीगुणैर्युक्ता राधामाधवयोः सखी ॥ मामुवाच तथारूपामतिप्रणयसंयुता ॥४५॥ कथं खिन्नाऽसि वामोरु द्रक्ष्यसि त्वमिहाद्भुतम् ॥ मया सह चलत्वद्य दर्शयामि जनार्दनम् ॥४६॥ तद्रूपं मे प्रियतमं राधया सहवर्त्ति यत् ॥ साऽतिप्राणप्रियाष्टाभिः सखीभिः सहिता स्थिता ॥ ४७ ॥ यस्या गुणाकृष्टचित्तः कृष्णः साध्वीवशस्थितः ॥ कुञ्जपुञ्जगताक्रीडा नवव्रीडा विराजते ॥ ४८ ॥ मानिनीमानमात्मीयं न जहाति कथञ्चन ॥ यस्यैश्वर्य्यवशाः सर्वे ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ ४९ ॥

वान्‌का दर्शन कराऊंगी॥४६॥भगवान् श्रीकृष्ण जिस प्रकार राधाजीके साथ विहार और प्रीति करते हैं उसी प्रकारसे वह हमारे भी अत्यन्त प्यारे हैं;आठ सखियोंसे युक्त श्रीराधिकाजी कृष्णको प्राणोंके समान प्यारी हैं॥४७॥ उनके शील इत्यादि गुणोंको देखकर श्रीकृष्ण सर्वदा ही उनके वशमें रहते हैं,लज्जावती श्रीराधिकाजी कुंजके बीचमें सर्वदा ही ॥४८॥मानका अवलम्बन कर विहार करती हैं. ब्रह्मा, विष्णु पुरःसर देवता जो श्रीकृष्णके

ऐश्वर्यके अधीन हैं ॥४९॥ वही स्वयं ईश्वर श्रीभगवान् राधिकाके वशवर्ती हैं, पवन जिसके भयसे सर्वदा चलता है, सूर्य जिसके डरसे सर्वदा तेज प्रकाश करते हैं ॥ ५० ॥ इन्द्र, चन्द्रमा इत्यादि देवता भी सर्वभूत कलनकारक और स्वयं काल जिसकी आज्ञासे कार्य करते हैं वही परमेश्वर श्रीकृष्णजी स्वयं श्रीराधिकाकी आज्ञासे कार्य करते हैं ॥ ५१ ॥ उन असीममहिमायुक्त श्रीराधिकाजीको वनके बीच मार्गमें जाते हुए दर्शन कराऊंगी। मनुष्य महामहिमान्वित होनेसे अपने पुंस्त्वके वश उनका दर्शन नहीं पासकता ॥ ५२ ॥ हे वरानने! तुम स्त्रीरूप हो, तुमको दर्शनका

ईश्वरा अपि कथ्यन्ते स ईशो राधिकावशः॥यद्भिया वाति वातश्च भानुस्तपति यद्भिया॥५०॥ इन्द्रश्चन्द्रस्तथा कालः स्वे स्वे कार्य्ये चरन्ति हि॥ स एव परमो विष्णुः श्रीकृष्णाख्यो वशोऽभवत्॥५१॥राधिकां त्वामथो गत्वा दर्शयिष्ये ध्रुवं वने॥नावलोकयितुं शक्तो पुंस्त्वेन पुरुषर्षभः ॥ ५२ ॥ अतस्तवाधिकारोऽस्ति स्त्रीरूपस्य वरानने ॥ तवोपरि कृपाऽत्यन्तं श्रीकृष्णस्य विराजते ॥ ५३ ॥ कदाचिद्दर्शयेत् त्वां वै लीलामात्मानमेव सः ॥ मामुक्त्वाऽन्तर्हितः कृष्णस्त्वमेतामानयान्तिके॥५४॥अस्मिन्भुवःस्थले दूति कन्येयं मत्प्रिया यतः ॥ एनां संदर्शयिष्यामि राधिकां प्राणवल्लभाम्॥ ५५ ॥ मम प्रेमधनां नारीं ललितां जीविताधिकाम् ॥ मयि प्रेममयीं देवीं युवराजविलासिनीम् ॥ ५६ ॥

अधिकार है, विशेषकरके श्रीकृष्णकी तुम्हारे ऊपर अत्यन्त ही दया है ॥ ५३ ॥ इस कारण वह स्वयं तुम्हें दर्शन देंगे, वह अन्तर्धान होनेके समय मुझसे कह गये हैं ॥ ५४ ॥ कि तुम इस स्त्रीको हमारे समीप लाना, इस संसारके बीचमें यह स्त्री मुझे अत्यन्त प्यारी है इस कारण मैं इन प्राणवल्लभा राधाको दिखाऊंगा ॥ ५५ ॥ प्रियतमा, प्रेमधना, तन्वी, वल्लभा, मनको हरणकरनेवाली श्रीराधिकाको दिखाऊंगा, यह

स्त्री मेरी प्रेमशालिनी होकर अपने जन्मसे पवित्र होगी॥५६॥स्वजनोंकी मानमर्यादाको अपने जन्ममें विभूषित करनेवाली और रासक्रीडा करनेमें निपुण वृषभानुकुलकी मर्यादा साक्षात् आह्लादिनी शक्तिरूपी,रासक्रीडा सम्पादन करनेवाली पराविद्या श्रीमती राधिकाके दिखाने योग्य है, भक्तवत्सल श्री कृष्णभगवान् मुझसे इस प्रकार कहकर अन्तर्धान हो गये हैं॥५७॥५८॥ इस कारण मेरे साथ आकर राधाकृष्णका दर्शनकर अपने नेत्रोंको सफल करो, वह वरांगना श्रीकृष्णके संगिनीके इस प्रकारके वचनोंको सुनकर उसी समय उसके साथ चली ॥५९॥थोड़ी ही दूर पहुँची थी कि सन्मुख ही

स्वजन्मभूषितोत्तुंगवृषभानुकुलस्थितिम् ॥ परां विद्यां परां शक्तिं रासक्रीडादिकारिणीम् ॥ ५७ ॥ ह्लादिनीं मे प्रियतमां दर्शयिष्ये सखिप्रियाम् ॥ एतत्कथितवान्सुभ्रु भगवान्भक्तवत्सलः ॥ ५८ ॥ अतश्चल मया सार्द्धं दर्शयामि जनार्दनम् ॥ इत्याकर्ण्य प्रचलिता सख्या सह वराङ्गना॥५९॥समुल्लङ्घ्य कियद्दूरं ततोऽपश्यमिहाद्भुतम् ॥ तेजःपुञ्जमतिश्रेष्ठमिष्टमेवावलोकितम्॥६०॥ सखीसमाजसुखदं श्रीकृष्णानन्दवर्द्धनम् ॥ महाकल्पतरुं नाम्ना हेमभूमिसमुद्भवम् ॥६१॥ सर्वत्र काञ्चनी भूमिर्नानारत्नाभिमण्डिता ॥ शरीरकान्त्या मानिन्या आदर्शमिव निर्म्मलम् ॥६२॥ भूतलं यत्र वसती राधामाधवयोः शुभा ॥ अनन्तलीलाभिरतौ श्रीराधामाधवौ सुखम् ॥६३॥

आश्चर्यदायक तेजपुंज कंचनकी भूमि अनेक प्रकारके रत्नोंसे शोभायमान निर्मल शीशेके समान मानिनी श्रीराधा मूर्तिके प्रतिबिम्बसे युक्त महान् कल्पतरुको देखने लगी ॥६०॥ सखीजनोंको आनन्द देनेवाला श्रीकृष्णके आनंदका बढानेवाला ऐसा कल्पवृक्ष कांचनभूमिमें उत्पन्न हुआ॥६१॥ अनेक रत्नोंसे अलंकृत सर्वत्र सुवर्णकी भूमि है जो शरीरकी कांतिको आदर्शके समान निर्मल करती है ॥६२॥ इस स्थानमें ही श्रीराधामाधवका

निवास है, वह दोनोंजने ही इस स्थानमें नित्य क्रीडाके सुखको अनुभव करते हैं ॥६३॥ सखीजन उस नित्यक्रीडाको देखकर नित्यानन्दको प्राप्त करती हैं, और श्रीकृष्ण भी श्रीराधाके प्रेममें मुग्ध होकर प्रसन्न रहते हैं ॥६४॥ अपनी प्यारी श्रीराधिकाके साथ क्रीडा करते २ उन्हें अपनी आत्माका विस्मरण होगया, और हावभाववाली अनेक स्त्रियें भी क्रीड़ा करती थीं ॥६५॥ जो भूमि अपने कुंजसमुदायके विनोदसे स्त्रीपुरुषोंके प्रेमसागरको प्रवाहित करती है॥६६॥ हे सुन्दरि! मैं तुमको वही किशोरी श्रीराधिकाके साथ लीला करते हुए नित्य किशोर श्रीकृष्णका दर्शन कराऊंगी, यह श्रीकृष्ण रति

क्रीडेते नित्यमेवातो मुदं यान्ति सखीजनाः ॥ सदाविहारी कृष्णस्तु श्रीराधाप्रेमयन्त्रितः ॥६४॥ क्रीडन्न वेद चात्मानं प्रियया राधया चिरम्॥हावभाववतीभिश्च नारीमण्डलकान्तिभिः॥६५॥स्त्रीनायिकं चातितरां सुखयत्येव या च भूः॥ कुञ्जपुञ्जविनोदैश्च रतिरागपयोनिध्रिम्॥६६॥किशोर्य्या राधया सार्द्धं हरिं संदर्शये सतीम्॥कथयामि ह्यनुष्ठेयं यत्र गन्तुःशुचिस्मिते।६७।दुष्प्रेक्षणीया सर्व्वेषां भूतानां गहना गतिः॥बलीयसी प्रभोरिच्छा नापमार्ष्टुं हि शक्यते॥६८॥रहो विशेषसमये प्रवेशःस्यात्तदिच्छया॥इत्याश्वास्य सखी कन्यामाजगामांतिके तयोः॥६९॥राधामाधवयोराशु नन्दिनी प्रेमसङ्कुता॥चिरं विलोक्य वदनं तयोः संक्रीडमानयोः७०

राससारके स्वरूप हैं॥६७।उनके अथवा श्रीमती सभीके दर्शन योग्य हैं, तब भगवान्की जिसके प्रति दया हो वही अपने सौभाग्यके बलसे भगवत् इच्छासे भगवान्के धाममें प्रवेश करके उनके दर्शनको पाते हैं ॥६८॥ सखी उस कन्याको इस प्रकारसे जानेके समय यथोचित वाक्योंसे सावधान करती हुई राधामाधवकी आज्ञासे उनके निकट जाने लगी ॥६९॥ राधा माधवकी प्रेमिका नंदिनी क्षणकाल तक विलम्ब कर संकीर्णमान उन दोनोंके

शरीर सुधाकरको देखकर ॥७०॥ अतुल आनंदके वश होकर मौन रहगयी। उस सुखका अनुभव केवल वह नन्दिनी ही कर सकती थी॥७१॥ नन्दिनीने जो विहार देखा वह ब्रह्मादि देवताओंको भी दुर्लभ है, इस क्रीडाको थोडी देर देखकर ॥७२॥ श्रीकृष्णको लक्ष्यकरके बोली कि हे भगवन्! आपकी मायासे जो कन्या इस स्थानमें आई हुई है ॥७३॥ वह इस समय हमारे साथ आकर भगवान्‌के दर्शनकी अभिलाषासे दूर खड़ी हुई है,

मौनमाश्रित्य सर्वज्ञा लेभे सुखमनुत्तमम्॥तत्सुखं वेत्ति सा नित्यं नन्दिनी हि तयोः प्रिया॥७१॥शक्यते न हि तद्द्रष्टुं ब्रह्मरुद्रादिकैरपि ॥ विलोक्य सुचिरं क्रीडास्तयोः सा रममाणयोः ॥७२॥ पश्चात्सा कथयामास कन्यायाः सुखदागमम् ॥ हरेर्माया समानीता कन्या प्रणयिनी तव ॥७३॥ आगता सा मया सार्द्धमदूरेऽस्ति व्यवस्थिता॥ यां निक्षिप्य मयि प्रेष्ठामन्यस्थानं गतो भवान् ॥७४॥ तवाज्ञया समानीता किं करोमि वद प्रभो ॥ भगवांस्तामुवाचेदं धन्यासि त्वं ममानुगा ॥ ७५ ॥ आनीय दर्शयेमां त्वं श्रीराधामानमुत्तमम् ॥ निकुञ्जमन्दिरे राधा तिष्ठत्यत्र विलासिनी ॥ ७६ ॥ मानिनी मानमासाद्य रसरूपं मनोरमम्॥ निकुञ्जतरुमासाद्य स्थास्येऽहमधुना सखि ॥ ७७ ॥

आप इससे पहले मुझे इसको अर्पण करगये थे॥७४॥और इस समय मैं आपकी आज्ञासे ही उसको यहां पर लायी हूं, इस कारण जो कुछ करना हो सो आप आज्ञा दीजिये। भगवान् श्रीकृष्ण बोले कि हे नंदिनी! तुम धन्य हो॥७५॥तुम उसको इस स्थानमें लाकर विलासिनी श्रीराधाके मानरसको दिखाओ, सम्प्रति श्रीराधिका लताभवनमें मानकिये विराजमान है ॥७६॥ उस मानिनीका मान देखकर अब मैं क्षणकालके लिये अन्तर्धान होकर

लतागृहमें बैठता हूँ॥७७॥हे दूती ! तू दोनोंके मध्यमें दूतीका कार्य करके बारम्बार आकर और जाकर राधिकासे सब सन्देशा कह॥७८॥तुम अनेक प्रकारके विनयवचनोंसे श्रीराधिकाको सन्तोष देकर इस कन्याको प्रियाके मानको दिखाना, नन्दिनी यह सुनकर कन्याको उस स्थानमें ॥७९॥ लाकर पहले तो इस मनोहरस्थानको दिखाने लगी। इस स्थानमें स्वर्णमयी भूमि वस्त्र और रत्नइत्यादिसे विभूषित है॥८०॥नानाप्रकारकी मणियोंसे शोभायमान अत्यन्त मनोहर मंदिर विराजमान है, स्थान २ में मनोहर सरोवर,सब विचित्र सोपान और मण्डप आदि शोभित हो रहे हैं ॥ ८१ ॥

उभयोरन्तरं दूरे दूति त्वं तु तया सह ॥ आयाहि याहि वाक्यानि वद राधां तथैव च॥७८॥विनयं मे प्रियामानं कन्यायै त्वं प्रदर्शय॥इत्युक्ता नन्दिनी नेतुं गता कन्यां वरानने॥७९॥ आनीय दर्शयामास निकुञ्जभवनं महत्॥चामीकरमयी भूमिर्वस्त्ररत्नविभूषिता॥८०॥ नानामणिगणोपेतं तत्रास्ते मन्दिरं परम् ॥ चित्रमद्भुतसोपानं वितानशयनासनैः ॥८१॥ विराजितं यत्र तत्र सरोवरसमन्वितम्॥सुगन्धिनीरसं सिक्तं कृष्णागुरुसुधूपितम् ॥ ८२ ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं कलकोकिलकूजितम् ॥ शीतमन्दसुगन्धेन वायुना परिवीजितम् ॥ ८३ ॥ आरामोपवनामोदमत्तभ्रमरनादितम्॥सुगन्धिनीरसं सिक्तं सर्वलोकमनोहरम् ॥ ८४ ॥

स्थानस्थानमें मनोहर विश्रामस्थान विद्यमान हैं, जलाशयोंमें सुगन्धित जल परिपूर्ण है उनके ऊपर समस्त॥८२॥हंस, सारस, बगले इत्यादि जलचर विहंग जन्तुओंके कुलाहलसे सम्पूर्ण दिशायें विलास कररही हैं, कहीं २ वृक्षोंपर कोयल मधुरस्वरसे कूकरही हैं,कृष्णागरुधूपगंधवाही शीतल मन्द पवन प्रवाहित होकर विजनेका काम कररहा है ॥ ८३ ॥ समस्त वाटिकाओंमें भौंरोंके गुञ्जारनेका शब्द सुनाई आरहा है, यह स्थान अत्यन्त

मनोरम है ॥ ८४ ॥ स्त्रियोंके नयनानन्दको बढानेवाला, सर्व क्लेशोंसे शून्य और अनित्य द्रव्योंसे रहित यह स्थान सम्पूर्ण सुलक्षणोंसे युक्त है ॥८५॥ और श्रीमती श्रीराधिकाजी यहां विराजमान हैं इन वरांगनाओंके शरीरकी कांतिसे समस्त वन प्रकाशमान हो रहा है॥८६॥कन्या उस अनेकप्रकारके हावभावोंको प्रकाश करनेवाली निखिल विश्वके स्वामी श्रीकृष्णके भावसे मुग्ध होकर मृगके समान नेत्रवाली ॥८७॥ मनोहरसंभाषण

मनोरमं वरस्त्रीणां नयनानन्दवर्द्धनम्॥षडूर्मिरहितं शान्तमनित्यद्रव्यवर्जितम्॥८५॥तन्मध्ये राधिकां देवीं सर्वलक्षणसंयुताम् ॥ भासयन्तीं वनं सर्वं स्वाङ्गकान्त्या वराननाम् ॥८६॥ अनेकहावभावादिद्योतयन्तीं वनेश्वरीम्॥सर्वविश्वेशभावेन मानितां मृगलोचनाम् ॥८७॥ कलस्वनां कल[illegible] शुचिस्मिताम् ॥ न भूतले तत्सदृशी मानवी नृपसम्भवा ॥८८॥ देवानामसुराणां च नागानां चापि कन्यका ॥ गन्धर्वाणां तथान्येषां [illegible]श्चोपमामियात् ॥८९॥ महामानवतीं दृष्ट्वा कन्या सा विस्मिता ऽभवत् ॥ वनेश्वरीं नमस्कृत्य विलोक्य च पुनः पुनः ॥९०॥ बद्धाञ्जलिरुवाचेदं राधिकां स्नेहयन्त्रिता ॥ त्वं मे राधेश्वरी माता सर्वेशप्राणवल्लभा ॥९१॥ स्वभावगुणधैर्येण श्रीकृष्णेन वशीकृता ॥ न त्वादृशी प्रणयिनी त्रैलोक्येऽपि विलोक्यते॥९२॥

करनेवाली,निर्मल हास्य करनेवाली,ऐसी वनेश्वरीको देखकर मनही मनमें चिन्ता करनेलगी कि, इस पृथ्वीके बीचमें राजकन्या भी ऐसी रूपलावण्य वाली नहीं होगी ॥८८॥देवता,असुर,नाग,गन्धर्व और कोई देवयोनिमें भी इसप्रकारकी कन्याका होना संभव नहीं है॥८९॥इसके पीछे महामानवती श्रीमतीके दर्शनसे विस्मितहुई वह कन्या श्रीराधिकाको एकटक लोचनसे बारम्बार देखती हुई प्रणाम कर॥९०॥अञ्जुलीबांध स्नेहके वशीभूत हो यह वचन बोली कि, हे देवि श्रीराधिके ! आप सर्वेश्वर श्रीकृष्णकी प्राणप्यारी और ईश्वरीहैं ॥९१॥ उनके स्वभावसेही धैर्यगुण आपके वशमें हुए हैं

इस त्रिलोकीके बीचमें तुम्हारे समान प्यारी स्त्री दिखाई नहीं देती ॥९२॥ तुम कृष्णकी प्यारी और हमारी जीवनस्वरूपा हो, मैंने अपने भाग्यके बलसे ही आज तुम्हारे दर्शनको पाया है॥९३॥इस स्थानमें ब्रह्मादि देवता भी इस समय प्रवेश करनेमें समर्थ नहीं हैं तब हमारे समान कामसे व्याकुलहुई स्त्रीकी तो प्रवेशकरनेकी सम्भावना ही कहां है, तब जो मैंने इस स्थानमें प्रवेश किया है सो केवल आपके अनुग्रह और अपने भाग्यसे॥९४॥यदि मैं

तवाधीनं जीवितं मे त्वमेवातिप्रिया हरेः ॥ मम भाग्यप्रयोगे च चक्षुर्भ्यामवलोक्यसे ॥ ९३ ॥ यत्र ब्रह्मादयो देवाः प्रविशन्ति न वै क्वचित् ॥ अन्येषामत्र का वार्त्ता मम भाग्यात्प्रवेशनम् ॥ ९४ ॥ यदि मे कोटिरसना भवन्ति स्तवनक्षमाः ॥ न त्वां वर्णयितुं शक्ता ते गुणान्वेत्ति माधवः ॥ ९५॥ यस्या गुणगणैः कृष्णः सर्व्वेशोऽपि वशीकृतः ॥ अतस्ते शरणं प्राप्ता ममोपरि कृपां कुरु ॥९६॥ अतिप्राणप्रिया विष्णोस्त्वदायत्तः स्वयं हरिः ॥ क्षणमात्रं त्वत्समीपान्नापसर्पति माधवः ॥९७॥ न केनापि जितः कृष्णस्तव भाग्यं मनोरमम्॥नापश्यं तत्र विश्वेशं सखीमूचे क्व मे प्रियः ॥ ९८ ॥

तुम्हारी स्तुति करनेके निमित्त करोड़जिह्वाओंको पाऊं तो भी मुझसे आपके गुणोंका वर्णन नहीं हो सकता,तुममें जितने गुण हैं उन सबको माधवही जानते हैं॥९५॥तुम्हारे गुणोंसे भगवान् सर्वेश्वर श्रीकृष्णने स्वयं वश होना स्वीकार किया है इस कारण मैं तुम्हारी शरण हूं,तुम मेरे ऊपर कृपा करो ॥९६॥ आज्ञा दो, तुम उनकी अत्यन्त प्यारी कही गयी हो, और वह भी तुम्हारे स्थानको त्याग नहीं करसकते,तुम सर्वेश्वरी हो इसी कारणसे सर्वेश्वर त्रिलोकीनाथ भी तुम्हारे वशीभूत हैं ॥ ९७ ॥ इस तरहसे अनेक प्रकारकी स्तुतियोंके पीछे वह कन्या श्रीराधिकाके निकट श्रीराधाजीकी

प्रभा श्रीकृष्णको न देखकर समीप बैठी हुई भगवानुर्का सखियोंकी ओरको देखती हुई बोली; हे सखियो ! हमारे प्यारे श्रीकृष्ण कहां हैं ॥९८॥ ऐसा प्रतीत होता है कि, श्रीकृष्ण श्रीराधाजीके निकट नहीं हैं यदि जो वह होते तो उनका दर्शन अवश्य ही होता, इस कारण जिस प्रकारसे उन दम्पतीका मिलन हो वही उपाय कीजिये, हमारे प्राणप्यारे श्रीकृष्णके दर्शनसे हमारी आत्मा सर्वेन्द्रियोंके सहित तृप्त हो जाँयगी॥९९॥ कन्याके ऐसे वचनोंको सुनकर नंदिनी बोली कि, तुम हमारी कुंजके भीतरको चलो वहां तुमको राधिकाके प्राणवल्लभ श्रीकृष्णका दर्शन होगा ॥ १०० ॥ इसके पीछे श्रीराधिकाको

स एवास्याःसमीपे चेद्भवेत्पश्यामि साम्प्रतम्॥तथा कुरु पवित्रांगि ह्यनयोः सङ्गमो यथा॥९९॥श्रुत्वाऽथ नन्दिनी वाक्यं कन्यामूचे पुनर्वचः ॥ कुञ्जान्तरे प्रविश्यावां राधिकाप्राणवल्लभम्॥१००॥नमस्कृत्य ततो राधां चलिते त्वरया च ते॥तादृशे कुञ्जभवने ददृशाते हरिंप्रियम्॥१०१॥दर्शनीयतमं श्यामं किशोरमतुलोपमम्॥शिखिपिच्छावतंसं च सुष्ठुपीताम्बरावृतम्॥१०२॥पूर्ण चन्द्रमुखं कृष्णकायं कञ्जविलोचनम्॥सुचारुतिलकं चारुकुण्डलद्वयमण्डितम्॥१०३॥सुकपोलं सुनासं च विलोलाक्षं च सुभ्रुवम्॥सुकण्ठवर मालाभिःशोभमानं महाद्भुतम्॥१०४॥वनमालानिवीताङ्गं सुगन्धिद्रव्यसंप्लुतम्॥कोटिकौशेयवसनं वसनोपरिमण्डितम्॥१०५॥

प्रणाम कर दोनों जनीं साथ२जाने लगीं, थोड़ीदेरके बीचमेंही एक और कुंजके भीतर प्यारे हरि श्रीकृष्णका दर्शन पाया॥१०१॥अनुपमदर्शन घनश्याम कान्ति शिखिपिच्छावतंस, सुन्दर पीताम्बरको धारण किये ॥१०२॥ पूर्ण चन्द्रमाके समान सुन्दरमुख कमलनयन मनोहर तिलकसे सुशोभित और मनोहर दो कुंडलोंसे अलंकृत ॥१०३॥ नूपुर और कंकण धारण किये तथा अंगुलीमें मुद्रिकाको पहरे हुए इस प्रकार मनोहर गोलकपोल, सुन्दर नासिका, चञ्चलनेत्र और कंठ रुचिर मालाओंसे विभूषित ॥१०४॥ वनमालाको वक्षःस्थलमें धारण किये और प्रत्येक अंगमें सुगंधित द्रव्यको

लेपन कर, करोड़ों रेशमी वस्त्रोंसे सुशोभित ॥ १०५ ॥ सर्वांगसुन्दर सर्वलक्षणसम्पन्न मधुरमुसकानकी दृष्टिसे समस्तसखियोंको आनंदके देनेवाले ॥ १०६ ॥ उन पुरुषोत्तम श्रीराधाके विरहसे व्याकुल श्रीकृष्णको देखकर नन्दिनी अपने मनही मनमें कहनेलगी ॥ १०७ ॥ कि, कैसा आश्चर्य है श्रीराधाके विरहमें जो कहीं भी सुखी नहीं हैं वह श्रीकृष्ण आज उन राधाजीको त्यागकर इस स्थानपर विराजमान हो रहे हैं, इसके पीछे श्रीकृष्णको लक्ष्यकरके बोली कि, हे प्रभो ! इस दासीके अपराधोंको ग्रहण न करके श्रीमतीको त्यागकर इस स्थानमें निवासकरनेका कारण कहिये॥ १०८॥

नूपुरैः कटकैर्भान्तं मुद्रिकाङ्गुलिमण्डितम् ॥ सुस्मितेनावलोकेन सुखयन्तं सखीजनम् ॥ १०६ ॥ दृष्ट्वा तं नन्दिनी प्राह कुञ्जस्थां राधिकां विना ॥ कथं प्राणप्रियां कृष्ण त्यक्त्वा भिन्नोऽद्य वर्त्तसे ॥ १०७ ॥ क्षणं न स्थीयतेऽन्यत्र विना तां प्राणवल्लभाम् ॥ सा नात्र दृश्यते नाथ किमिदं कारणं वद ॥ १०८ ॥ नारद उवाच ॥ इत्याकर्ण्य सखीवाक्यं भगवानाह तां पुनः ॥ मनसा कर्मणा वाचा नाचरेयं तदप्रियम् ॥ १०९ ॥ न वेद्मि कारणं तस्या भिन्नताया मनोरमे ॥ श्रीलाञ्छितमनुप्रायं जगं कोपः क्षणं कृपा ॥ ११० ॥ विचित्रविभ्रमासक्तो न विभक्तः कदाचन ॥ तत्प्रेमकोपकेलिभ्यां नाहं व्यग्रः शुभानने ॥ १११ ॥

नारदजी बोले कि, हे महर्षिश्रेष्ठ ! भगवान् श्रीकृष्ण अपनी दूती नन्दिनीको इस प्रकारके आग्रहसे युक्त देखते हुए बोले, कि मैंने मन कर्मद्वारा कभीभी श्रीराधाके प्रतिकूल आचरण नहीं किया परन्तु तो भी वे भिन्नभावसे इस समय व्यवहार करती हैं, यह उनका स्वाभाविक ही आचरण है ॥ १०९॥ इनसे रसमयीसे ही रसका पोषण है; इनके अतिरिक्त भिन्नभावका मैं और कोई कारण नहीं देखता, मानिनी कामिनीके कोप और लक्ष्मीके अभिलाषी पुरुषके समान पुरुषके ऊपर क्षण२में प्रकाश पाया जाता है, लक्ष्मीका कोप व उसकी दया यह दोनों जिस प्रकारसे चञ्चल हैं ॥ ११० ॥ विचित्र भ्रममें

आसक्त होकर वह हमसे विभक्त होती हैं; इसके भिन्न उनसे हमारा अभिन्नरूपसे सम्बन्ध है उनका कोप भी अनुरागका देनेवाला है। इस कारण हे श्रेष्ठ मुखवाली! उनका प्रेम वा कोप यह दोनोंही हमारे दुःखके निमित्त न होकर वरन् अपने आनंदके अनुभवकार्यकी सहायताके सम्पादनमें दुःखका कारण होते हैं, संगम वा विरह जो कुछ भी उनको प्यारा है उसीको मैं भी दिनरात सुख देता हूं ॥ १११ ॥ ११२ ॥ हे नंदिनी! इस समय उस स्थानमें जहां प्रिया विराजमान हैं तुम इस कन्याके साथ जाकर हमारी अभिलाषाको निवेदन करो और जो यदि वह हमारे अपराधोंकी वार्ता तुमसे

तस्यै या गेच्छते केलिस्सा मां सुखयतेऽनिशम् ॥ न दुःखाय कुतो रुष्टा प्रिया मे वर्त्ततेऽधुना ॥११२॥ गच्छाशु कन्यया सार्द्धं तत्र गत्वा निवेदय ॥ मद्वार्त्तां पुनरागत्य अपराधं प्रकाशय ॥११३॥ तां पृच्छस्वाग्रहेणैव तत्प्रियां राधिकां सखीम् ॥ कथं स्थिता निकुञ्जेऽस्मिन्हरिं प्राणप्रियं विना ॥११४॥ इत्यादिमधुरालापैरापृच्छ त्वमनाकुला ॥ पृष्टा मां किं वदेत्कान्ता ममैका प्राणवल्लभा ॥ ११५ ॥ दूतीविहितवाक्यैश्च समाराधय मे प्रियाम् ॥ अहं चेत्तत्र गच्छामि मानं चाधिकतां व्रजेत् ॥ ११६ ॥ पतिः प्राणप्रियः स्त्रीणां तस्यो मानो विराजते ॥ कथमन्यत्र कुर्व्वन्ति पतिप्राणाः पतिव्रताः ॥ ११७ ॥

कहें तो पुनर्वार इस स्थानमें आकर हमसे कहना॥११३॥अत्यन्त आग्रहके साथ उन प्राणवल्लभासे पूछकर वह उन अपने प्राणप्यारे श्रीकृष्णको त्याग कर किस निमित्त इकली यहांपर विराजमान हैं ॥११४॥ तुम उन प्राणप्यारीके निकट जाकर दूतीके कहे हुए वचनोंसे उनके क्रोधको दूरकर और उनको संतोष देकर फिर मेरे पास आकर उनके प्रेममय संतोष वाक्योंसे मुझे तृप्त करना, यदि मैं भी उस स्थानमें तुम्हारे साथ चला तो उनका मान और भी अधिक होजायगा॥११५॥११६॥कारण कि कामिनी मानिनी के होनेसे दूतीके द्वारा भी माननेमें किंचित् लघुता न करके स्वयं जाना अनुचित है

पतिप्राणा पतिव्रताओंका पति ही एक मात्र आश्रय है, साध्वी स्त्रियोंका मान पतिसेही शोभित होता है॥ ११७॥ इस कारण उनके इस मानको भलेप्रकारसे हमारी तृप्तिके साधन करनेमेंभी मनका अगम्य प्रेम अत्यंत आनंदका देनेवाला कहकर मैं इस समय उनके मानको भंग करनेके निमित्त तुमको वहां भेजता हूं, तुम इस स्त्रीके सहित वहांपर जाओ तांबूल और पुष्पादि ॥ ११८ ॥ देकर अपने वचनकी चतुराईसे उनके मानको भंजनकर फिर हमारे पास आकर उनके शुभ समाचारको सुनाना ॥ ११८॥ प्रियाके प्रसन्न न होनेसे प्यारीके निकट प्यारा जा नहीं सकता, ऐसा करनेसे उस पतिका अपमान

अतो याह्यनया सार्द्धं कन्यया सह नन्दिनि ॥ ताम्बूलकुसुमादीनि गृहीत्वा गन्धभाजनम् ॥ ११८ ॥ दत्त्वा वचनचातुर्या द्धृत्वा चागच्छ मां प्रति ॥ सुप्रसन्नां प्रियां ज्ञात्वा गमिष्ये दयितां प्रति ॥ ११९॥ अनाराध्य प्रियां गच्छन्पतिर्लाघवमाप्नुयात् ॥ १२० ॥ इति वचनविनोदं कृष्णदेवस्य श्रुत्वा मधुरमिदममोघं नन्दिनी वाक्यमाह॥ किमहमुपनयेयं देहि नाथाद्य वस्तु तव सखि पुरतोऽहं यामि राधासमीपम् ॥ १२१ ॥ इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे वैयासिके नारदशौनकसंवादे राधिकामानो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ नारद उवाच ॥ ततो हरिर्ददौ तस्यै ताम्बूलं कुसुमादि च ॥ गन्धभाजनमत्युच्चं दर्शनीयतमं शुचि ॥ १ ॥ नीत्वा ततः प्रचलिता नन्दिनी कन्यया समम् ॥ समाययौ निकुञ्जान्ते राधिकां कृष्णवल्लभाम् ॥ २ ॥

होता है ॥ १२०॥ नंदिनी इस प्रकारसे श्रीकृष्णके कहे हुए राधिकाविनोदको देनेमें संमत होकर सुमधुर वचनोंसे बोली कि, हे प्रभो ! उपयोगी वस्तु दीजिये मैं स्वयं श्रीराधिकाजीके निकट जाती हूं ॥ १२१ ॥ इति श्रीआदिपुराणे नारदशौनकसंवादे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

नारदजी बोले इसके उपरांत श्रीकृष्णजी नंदिनीको अतिउत्तम गंधभाजनके साथ ताम्बूल और पुष्पोंको देने लगे॥ १॥ उन संपूर्ण श्रेष्ठ उपायनोंको ग्रहण

कर नन्दिनी उसी समय उस कन्याके सहित श्रीराधाजीके निकट जानेलगी, थोड़ीही देरमें श्रीराधाजीके कुंजमें कृष्णवल्लभा॥ २॥ श्रीराधाके समीपमें जाकर विनयके साथ श्रीकृष्णजीके कहे हुए वचन कहने लगी कि आप किस कारणसे इकली इस स्थानमें बैठीहुई हो॥ ३॥ मैं आप दोनोंके वियोगको नहीं देख सकती हूं; मैं प्राणप्यारीसे रहित श्रीकृष्णको, वा प्राणप्यारेसे रहित श्रीराधाजीको देखनेमें समर्थ नहीं हूं॥ ४॥ तुम्हारे प्राणवल्लभ नागरने तो तुम्हारा कोई अपराधभी नहीं किया है। वह महान् होकरभी गोपवेषसे इस वृन्दावनके बीचमें आपके साथ विहार करते हैं॥ ५॥ तुमको देखकर जानाजाता है

आगत्य विनयेनोच्चैरूचे कृष्णवचांसि ताम् ॥ किमर्थमत्र भवने स्थिताऽस्येकाकिनी वने ॥ ३॥ मया न शक्यते द्रष्टुं विच्छेद उभयोरपि ॥ प्राणप्रियां विना तं तु त्वां विना प्राणवल्लभम् ॥ ४ ॥ न चानभिज्ञोऽयमस्ति नागरस्तव वल्लभः ॥ तवार्थं गोपवेषेण क्रीडते विपिने महान् ॥ ५ ॥ स एवातितरां दीनां कुर्वन्नातिविराजते ॥ मानिनी मानमेवात्र कुर्वती परिशोभते ॥ ६ ॥ यदि स्यान्नायको मानी नान्यथाऽसौ निरर्थकः ॥ मानिनी पटुतामेति पत्यौ मानं प्रकुर्वति ॥ ७ ॥ गुणराशिप्रियाऽत्यन्तं सा त्वं नान्या कदाचन ॥ किमत्र कारणं कान्ते वृथा मानो न राजते ॥ ८ ॥ किमद्य मौनमाश्रित्य स्थितासीत्युत्तरं वद ॥ त्वमाकर्णय मद्वाक्यं ताम्बूलं पुष्पचन्दनम् ॥ ९ ॥

कि वही तुम्हारी यंत्रणाके मूल हैं, तुम्हारा यह मान अशोभित नहीं है॥ ६॥ यदि नायक मानी न हो तो उसके प्रति मान करनेवाली मानिनी शोभाको प्राप्त होती है । अन्यथा मान निरर्थक है ॥ ७॥ तुम गुणवती प्रिया हो, किस कारणसे वृथा मान करती हो, तुम्हारा वृथा मानकरना शोभा नहीं पाता ॥ ८॥ तुम किस कारणसे आज मौन धारण करके बैठीहुई हो, उत्तर तो दीजिये, और मैं तुम्हारे ही निमित्त श्रीकृष्णके पाससे जो ताम्बूल

और पुष्प चंदन इत्यादि लाई हूं॥९॥उनको आप ग्रहण कीजिये.हरिने इन समस्त द्रव्योंको देकर तुम्हारे संतोषके निमित्त मुझे तुम्हारे पास भेजा है इन बातोंको सुनकर वह वराङ्गना श्रीराधाजी सखीसे कहने लगीं॥१०॥कि स्त्रीजातिका केवल शरीर ही सुन्दर नहीं है मनमें भी उनके गुण हैं११ पवित्र पुरुष यदि स्त्रियोंके वशीभूत हों तो स्त्री परिचितज्ञानके प्राप्त करनेमें समर्थ है, परंतु हमारे समान त्यागी हुई स्त्री क्या करे,प्रियतम हमको त्याग करके कौन जाने कहां चलेगये हैं?मैं यह कुछ भी नहीं जानती॥१२॥उस परम प्यारेने तुम्हारे मुखद्वारा धृष्टताचरण किया है,यदि उनके मनमें किसी

गृहाण हरिणा दत्तं प्रीत्याऽहं प्रेषिताऽस्मि भोः॥इत्याकर्ण्य ततःप्राह सखीं राधा वराङ्गना॥१०॥देहे न केवला श्रेष्ठा मनस्यपि विराजिताः॥भवन्ति योषितः शश्वत्परचित्तहरास्तथा ॥११॥यदि तासां वशे याति किं करिष्यति मादृशी॥न जाने क्व गतः कान्तो मां त्यक्त्वाऽत्र वनान्तरे ॥१२॥ कितवः कुरुते धाष्टर्यं त्वन्मुखेन वरानने॥यदि शुद्धं मनस्तस्य स्वयं किमिति नागतः॥ ॥१३॥ परं जानेऽत्र चातुर्य्यं कुत्राप्यभिरतोऽन्यतः॥ आदौ च सखि हृत्वा गां विनयो न विराजते॥१४॥ किमर्थं मानिनी वित्तं चोरयन्नाभिगच्छति॥ त्वरया चानया सार्धं सख्या गच्छ यथागता॥ कथयैतद्वचस्तस्मै यदानीतं नयस्व तत् ॥१५॥

प्रकारका कपट न होता तो वे स्वयं किस कारणसे न आये॥१३॥वे तो पराई स्त्रीमें आसक्त हुए हैं,उसी कारणसे इस प्रकारकी चतुरता करते हैं यही हमें विलक्षण विदित हुआ है,प्रथम इंद्रियोंको हरणकर पीछे विनयका करना किसी प्रकारसे भी शोभा नहीं पाता॥१४॥वह चित्तको हरणकरके किस निमित्त नहीं आये हैं, इस कारण तुम शीघ्र ही इस सखीके साथ वहां जाकर उनसे मेरा यह समस्त वृत्तान्त कहना और जो द्रव्य लाई हो वह सभी

फेरकर लजाओ॥१५॥नारदजी बोले कि वह सखी राधिकाके इन बचनोंको सुनकर शीघ्रताके साथ श्रीकृष्णको ताम्बूल पुष्प चन्दन इत्यादि वस्तुयें दे कर कहने लगी॥१६॥कि श्रीराधाजीने इस प्रकारसे कहा है, कि तुम हमारे प्राणप्यारे होकर पराई स्त्रियोंके प्रेममें मग्न होरहे हो,देखो तुम हमारा परित्याग कर दूसरी स्त्रीके साथ इस कुञ्जमें निवास करते हो॥१७॥ तुम्हारी प्राणप्यारी राधिकाजी इसप्रकारके वचन परस्पर कहने लगी मैंने उनको अनेक प्रकारके विनयसे सन्तोष दिया,तथापि उन्होंने आपके प्रति मानको नहीं छोड़ा है,आप उनके निकट किसी प्रकारसे अपराधी हुए हैं ॥१८॥ देखो और

नारद उवाच॥इत्याकर्ण्य सखीवाक्यं राधिकायास्त्वरान्विता ॥ उवाच दत्त्वा हरये ताम्बूलं पुष्पचन्दनम् ॥१६॥ राधयोक्तं मम प्राणप्रियोऽस्त्यन्याप्रियोऽभवत्॥मामाश्रित्य निकुञ्जेऽस्मिन्स्थितो राधां विहाय हि॥१७॥ इत्युक्ता राधिका कान्ता बहुधा तोषिता मया॥न जहाति निजं मानं त्वयि किञ्चित्कृतागसि॥१८॥न तया सदृशी कान्ता राधिका याऽतिविश्रुता ॥ तां त्यक्त्वा त्वन्यसंस्नेहस्त्वैव गुणहीनता ॥ १९ ॥ सत्यं ब्रूहि निजागस्त्वं यतोऽसि श्रेष्ठनायकः ॥ न च सामान्यगुणवांस्त्वं च वै सर्व्व संमतः ॥ २० ॥ सत्कान्तालक्षणं याति प्रिया प्राणसखी सती ॥ कथं तव निकुञ्जेऽस्मिन्प्रवेशस्तां विनाऽभवत् ॥ २१ ॥

कोई स्त्री भी राधाकी समान आपकी मनोहारिणी नहीं होगी,यह सभी जगत्में प्रसिद्ध है, आप यदि उनको त्यागके और किसीसे स्नेह करेंगे तो ऐसा होनेसे आपकी गुणहीनताका परिचय होगा॥१९॥आप सत्य २ कहिये कि आपने क्या अपराध किया है, देखो आपके समान श्रेष्ठनायक भी दूसरा नहीं है,और जैसे आप असामान्य गुणोंसे युक्त हैं उसी प्रकार सभीके निरतिशय सन्मानके पात्र हैं तब किस कारणसे राधा आपके प्रति मानवती हुई हैं क्यों नहीं कहते॥२०॥सत्कान्तामें जिन सब लक्षणोंका होना आवश्यक है श्रीराधिकाजीमें भी उनमेंके किसी अंशका अभाव दृष्टि नहीं आता,

विशेष करके वह आपकी परमप्रीतिमयी प्राणोंकी सखी हैं, और सर्वदा दोषोंसे रहित हैं इसकारण उनको त्याग करके आप किस प्रकारसे इसकुञ्जमें बैठे हुए हैं॥२१॥ आपका यदि कोई अपराध नहीं है तो हमारे साथ राधाके पासमें क्यों नहीं चलते हो, हमारे विचारमें तो यह आता है कि उनके चित्तमें आपकी ओरसे किसी प्रकारकी ग्लानि है ॥२२॥ श्रीराधाजी जिसकारणसे मानवती हुई हैं उनके इस मानको दूर करनेके लिये कोई औषधी नहीं है और यदि कोई औषधी है उसकोभी मैं नहीं जानती. इसकारण हे मनोरम ! इस विषयमें कर्त्तव्य क्या है ? सो करिये॥२३॥नारदजी बोले कि श्रीकृष्णजी

नापराध्यसि चेत्सार्द्धं मया नागम्यते कथम् ॥ विचार्य्यते मया प्रीतिर्ग्लानिस्तस्या मनस्यपि ॥२२॥ न ग्लानेरौषधं किञ्चित्प्रतीतिर्नोपजायते ॥ तस्मात्किमत्र कर्त्तव्यं वदस्वाद्य मनोरम ॥ २३ ॥ नारद उवाच ॥ काऽस्त्यत्र मेऽपरा पत्नी प्रियाऽन्यैतां विना प्रियाम्॥त्वमेव पश्य कुञ्जेऽस्मिन्वर्त्तते न्यायसंयुता॥२४॥साऽपि त्वयैवानीताऽत्र तवात्राविदितं क्वचित् ॥ इयं सकौतुका कन्या नित्यमुत्कण्ठिता सती ॥ २५ ॥ निष्कामा तव सङ्गेन विचरन्ती वने स्फुटम् ॥ इदमावेद्यतामस्यै पुनर्गत्वा वरानने ॥ २६ ॥ ममातिपरमा कान्ता त्वत्तो नास्तीह काचन ॥ कन्या त्वत्सदृशी कान्ता वर्त्तते भुवनत्रये ॥ २७ ॥

इन वचनोंको सुनकर इसप्रकारसे कहने लगे कि परमप्रीतिकी आधार श्रीराधिकाके बिना और कोई भी हमारी प्रिया नहीं है, तुमभी देख लो कि मै इकलाही इस कुञ्जमें निवास करता हूं॥२४॥मेरे साथमें और कोई भी स्त्री नहीं है तुम इस कन्याको इस स्थानपर लायी हो तुमसे छिपा हुआ और कुछ भी नहीं है यह कन्या स्वयं ही उत्कण्ठित और कौतूहलान्वित होकर॥२५॥इस वनमें तुम्हारे साथ विचरण करती है, किसीके प्रतिभी इसकी कामना वा अभिलाषा नहीं है. हे वरानने ! तुम फिर जाकर राधिकाजीको समझाना ॥ २६ ॥ कि, तुम्हारे बिना और कोई स्त्री भी हमारी मनोहारिणी

वा प्रीतिकारिणी नहीं है,मैं एकमात्र तुममें ही आसक्त हूं और आज्ञानुसार चलनेवाला हूँ,यहांतक कि इस त्रिलोकीमें तुम्हारे समान और कोई स्त्री नहीं है॥२७॥जो हमारे प्राण और मनको प्रीतिकी देनेवाली होके तुम्हारा यौवन भी इस समय शेष नहीं हुआ है,और रूपकी कांति भी किसी प्रकारसे क्षय नहीं हुई है,तुम्हारी समस्त बातें अमृतके समान मधुर और मनको हरण करनेवाली हैं, इस कारण सर्वतोभावसे तुम्हीं हमारी अनुरूपा स्त्री हो॥२८॥ मैं यदि क्षणमात्रको भी तुमको न देखूँ तो यह मेरे प्राण इस शरीरको छोड पयान कर जांयगे॥२९॥अधिक क्या कहूं हमारा मन और आत्मा

न ते वयःपरिणतिर्न रूपबलसंक्षयः॥ मयीह संगता कान्ता कलवाक्यपरायणा॥२८॥यद्यहं क्षणमात्रं हि त्वत्तोऽनुविरतोऽभवम्॥ न मे प्राणाः प्रहृष्यन्ति प्रिये प्रागसमाधृताः॥२९॥त्वदायत्तं मनो मेऽस्ति त्वदायत्तोऽस्मि सर्व्वदा॥अधीनोऽहं मीनवन्न त्वां च त्यक्तुमिहोत्सहे॥३०॥ यावद्वारिणि वर्त्तेत तावज्जलचरो भवेत्॥ततश्चेद्भिन्नतामेति न जीवति कथञ्चन ॥३१ ॥ तथा मे जीवितं राधा बल्लवी प्राणवल्लभा ॥ किमहं वर्णये तस्या गुणान्गुणमहोदधेः ॥ ३२ ॥ सैवात्र जीवनं सत्यमुरगस्य मणिर्यथा ॥ न मे कैतववृत्तिश्च एकरूपोऽस्मि सर्व्वतः ॥ ३३ ॥

तुममें ही प्रविष्ट है,और मच्छीका जीवन जिसप्रकार जलसे है मैं भी उसीप्रकारसे तुम्हारे आधीन हूं॥३०॥जलचर जबतक जलमें रहते हैं तभीतक वह जीवित हैं,अगर जलसे वह अलग हो जायं तब फिर किसी प्रकारसे भी प्राण धारणकरनेको समर्थ नहीं होते॥३१॥मेरा प्राण भी उसी प्रकार तुम्हारे आधीन है. हे गोपकुमारी प्राणवल्लभे ! तुमको त्यागकरनेसे क्षणमात्रको भी मैं जीवन धारण करनेमें समर्थ नहीं हूं,समस्त गुणोंकी खान राधाके गुणोंका वर्णन मैं क्या करूं॥३२॥जिस प्रकार सर्पमें मणि है,राधामें उसीप्रकार [illegible] रूप है,इस विषयमें किसी प्रकारका व्यभिचार नहीं है अधिक क्या

कहूं ? यद्यपि मेरे अनेक रूप हैं परन्तु आत्माके भिन्न और कुछ नहीं है,परन्तु मैं राधाके प्रति सर्वभावसे एक ही रूप हूं॥३३॥कभी भी कपटका व्यवहार नहीं करता, और यद्यपि संसारमें मेरा किसीके प्रति पक्षपात भी नहीं है, परन्तु एकमात्र श्रीराधा ही मेरी प्राणवल्लभा है ॥३४॥ यद्यपि संसारमें अनेक पदार्थ हैं परन्तु चन्द्रमा जिस प्रकार एक है,उसी प्रकारसे मैं भी सबोंकी दृष्टिमें ईश्वरस्वरूप एकमात्र पुरुषरूपसे विराजमान हूं॥३५॥ और वह राधा हमारी प्रकृति है,वही बहुतसी सखियोंके साथ विचरण करती है,मुझे जिस प्रकार उनके अतिरिक्त और कोई प्यारी नहीं है उसी प्रकार

अनेकरूपश्चैवास्मि मत्तो भिन्नं न किञ्चन॥सर्व्वेश्वरोऽहमत्रैव राधिकाप्राणवल्लभः ॥३४॥ सन्ति रूपाण्यनेकानि दृश्ये दृष्टोऽस्मि चन्द्रवत् ॥ अत्रैवाहं पुमानेकः केवलो गम्य ईश्वरः॥३५॥प्रीत्वे तु सा तु राधैव तस्याः सख्यश्चरन्ति हि॥न कस्याश्चिदहं प्रेष्ठो न तु चान्यस्य प्रेयसी॥३६॥आवयोरिह सर्व्वत्र क्रीडा नित्यं विराजते ॥ कस्मान्मानो विधेयोऽत्र यतोऽहं त्वितराप्रियः ॥३७॥ आगच्छ कुञ्जभवनं समाहूय सखीजनान् ॥ अहं चेन्नाभिगच्छामि तदा मानाधिकं प्रिये ॥३८॥ एवमेव पुनर्गत्वा सखि सर्व्वं निवेदय ॥ अहमेव ततो गत्वा तोषयिष्ये सुयुक्तिभिः ॥ ३९ ॥

मैं भी अन्य किसीका प्रिय नहीं हूं॥३६॥संसारमें सभी जगह मेरी नित्य लीलाका स्थान है,इस कारण तुमको मानकरना किसप्रकारसे भी योग्य नहीं है। देखो मैं एकमात्र तुममें ही आसक्त और प्रीतिमान हूं ॥३७॥ इस कारण अपनी सखियोंके सहित कुञ्ज भवनमें आकर मुझे अपने निकट बुला लो तुम्हारे बुलानेसे भी जो मैं न जाऊं तो इससे अधिक मेरे ऊपर फिर मान करना ॥३८॥ हे नन्दिनी ! तुम अब फिर जाकर मेरा यह समस्त समाचार श्रीराधाजीसे कहकर फिर हमारे पास आ जाओ, तुम्हारे आते ही मैं वहां जाकर अनेक प्रकारकी युक्तियोंसे राधाको सन्तुष्ट करूंगा ॥ ३९ ॥

नन्दिनी श्रीकृष्णके मुखसे निकले हुए इस प्रकारके वचनोंको सुनकर फिर राधाके स्थानको जाकर सावधानताके साथ कहने लगी ॥ ४० ॥ कि हे कान्ते! प्रियतम तुमसे सर्वथा ही प्रीति करते हैं, तुमने इस समय वृथा मान किया है, देखो! श्रीकृष्ण साक्षात् प्रेमके समुद्र और मूर्तिमान् गुणोंकी खान है उनके प्रति मानकरना कदापि उचित नहीं है॥ ४१॥ वह "राधा, राधा, राधा" इस परममंत्रकी उपासना करते हैं, तुम्हारे वह प्राणवल्लभ तुमको त्यागनकरके इकले कुंजमें ही बैठ हैं॥ ४२॥ और वह मनमें भी अन्य स्त्रीकी चिन्ता वा वचनद्वारा किसी प्रकारसे भी निर्देश नहीं करते, वह एकमात्र तुम्हारे

इत्याश्रुत्य सखी कृष्णमुखाद्वचनमुत्तमम्॥ पुनरागत्य तां राधामुवाचेदं सुयत्नतः॥४०॥ कांते कांतप्रियासि त्वं वृथा मानरतिस्तव॥ नायको गुणराशौ च श्रीकृष्णे प्रेमसागरे ॥४१॥ राधे राधेति राधेति परं मन्त्रमुपासते॥ निविष्टः कुञ्जभवने एकाकी तव वल्लभः ॥४२॥ काञ्चिन्न चिन्तयत्यन्यां वाचा न वदति स्फुटम्॥ न तत्र कुरुते कर्म त्ववशः केवलं परम्॥४३॥ त्वदर्थं कुरुते शय्यामद्भुतां कुसुमोत्तराम् ॥ ईशानामीश्वरः कांते यद्वशे भुवनत्रयम् ॥ ४४ ॥ लोकपाला विरिञ्चाद्या यस्यादेशानुवर्त्तिनः ॥ स एव परमः साक्षादधीनस्ते वशीकृतः ॥ ४५ ॥ न जहाति तवासङ्गं क्षणमात्रं कदाचन ॥ तवार्थे कुसुमानां हि सञ्चयं कर्त्तुमुद्यतः ॥४६ ॥

ही वशीभूत हैं॥ ४३॥ उन्होंने अनन्यकर्मा होकर तुम्हारे लिये फूलोंकी विचित्रशय्या बनाई है. हे सुन्दरि! जो ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं, त्रिलोकी जिनके वश में है॥ ४४॥ विरंचि लोकपालगण जिनकी आज्ञाके अनुसार कार्य करते हैं वही साक्षात् परमपुरुष ईश्वररूपधारी कृष्ण तुम्हारे आधीन और वशीभूत हुए हैं ॥४५॥ वह कभी एकक्षणको भी तुमसे अलग होना नहीं चाहते देखो! वह तुम्हारे लिये अपने आप फूलोंकी शय्याको चुननेके लिये उद्यत

हुए हैं॥४६॥और तुम्हारे ही उद्देश्यसे कुंजमें गये हैं,इस कारण उनके ऊपर मानकरना तुमको किसी प्रकारसे भी शोभा नहीं देता. हे वरानने!उन्होंने सम्पूर्ण सुगंधित फूलोंको इकट्ठाकरके कुंजके भीतर धराया है॥४७॥और तुम्हारे बुलानेके लिये मुझे भेजा है,इस कारण उनके निकट तुम्हारा चलना सर्वथा उत्तम है। हे राधे!तुम दोनोंकी युगलमूर्ति परस्पर मिले इसके समान इस संसारमें और सुख क्या है॥४८॥इसको देखकर हमारे नेत्र भी सफल होंगे इसलिये तुम मानको त्यागकर प्यारेकी सहचारिणी हो अथवा उनको इस स्थानपर स्वयं बुलवाओ ॥४९॥देखो! उन तुम्हारे प्राणप्यारे

कुञ्जान्तरगतः कृष्णस्तस्मिन्मानो विराजते॥ कुसुमानि सुगन्धीनि सञ्चितानि वरानने॥४७॥तत्पार्श्वे चलनं श्रेयः तव मानो न शोभनः॥ उभयोः संगमो राधे तस्मात्तु परमं सुखम् ॥४८॥अपास्य मानमधुना व्रज त्वं प्रियसन्निधौ ॥अथ वाहूय तं चैव कान्तं प्राणप्रियं तथा ॥४९॥ तेनातिप्रेमसंभारैः प्रेषितास्मि तवान्तिकम् ॥ आनेतुं त्वां वरारोहे देहि नाम प्रियं प्रिये ॥५०॥ राधे दग्धा रूपवती त्यज मानं सुराङ्गना॥रसाकृष्टः स वै कृष्णस्तव त्रैलोक्यसुन्दरः॥५१॥वृन्दावने निकुञ्जेषु प्रेमप्रसरसंयुतः॥ विचरत्यनिशं कृष्णो नानारसविचक्षणः ॥ ५२ ॥

कांतने मुझको अत्यन्तप्रीतिके साथ आदर कर तुम्हारे पासमें भेजा है,तुमको उनके पास लेजाना ही मुझे उनकी आज्ञा है॥५०॥संसारको दिखानेके लिये ही वह इतना गाढ़प्रेम दिखाते हैं,जो संसारमें सभीके प्यारे हैं उनके ऊपर मानकरनेसे स्वयं सुरांगनाओंके रूपकी राशि दग्ध होजायगी,वह त्रिलोकीके सुन्दर कृष्ण तुम्हारी प्रीतिके रसमें आकृष्ट होकर तुममें ही परमसमाविष्ट हैं॥५१॥ वह अनेक प्रकारके रसोंसे युक्त और अपार प्रेम

सम्पन्न हैं, सो अब तुम्हारे लिये वृन्दावनके कुञ्जके भीतर विचरण करते हैं ॥५२॥ नन्दिनीकी ऐसी अकातर वचनोंकी रचनाको सुनकर राधाजी बोलीं कि निश्चयही प्रियतम मुझसे अधिक प्रेम करते हैं॥५३॥अब मेरा सन्देह निवारण हुआ, और उसीके साथमें मान भी दूर हो गया। जो स्त्री अपने स्वामीकी आज्ञानुसारणी है वह सर्वदा उससे परमप्रीतिको भोग करती है॥५४॥मैं यह निश्चय ही जानता हूं कि वह जगत्प्रिय कृष्ण अतिधीरवान् नायक हैं,मेरे अतिरिक्त दूसरोंको नहीं जानते मैं केवल उनके रहस्यमय वचनोंको सुननेके लिये ही मानवती हुई थी॥५५॥अब तुम उनके निकट

श्रुत्वैतद्वचनं राधा सर्वेषां सुमनोरमम् ॥ तामुवाच सखीं राधा सत्यं कान्तः स मे प्रियः ॥ ५३ ॥ नष्टो ममात्र संदेहो गतो मानो विनाशताम् ॥ सा स्त्री नित्यं भवेत्कांता भर्तुर्भावानुसारिणी ॥५४॥ यास्याम्यहं कृष्णमयि भाति सक्तं जगत्प्रियम् ॥ तथाऽपि मानं यत्कुर्वे श्रोतुं तद्वचनं रहः ॥ ५५ ॥ गत्वा त्वयाऽपि तत्पार्श्वे वक्तव्यं च तव प्रिया ॥ मानं त्यजति गोविंद त्वदासक्ता च सा प्रभो ॥ ५६ ॥ नायं कामिप्रियः कृष्णः स्वामी सर्वेश्वरो महान् ॥ स्रष्टा पालयिता हन्ता कोटिब्रह्माण्डनायकः ॥ ५७ ॥ तवासौ प्रियकृद्राधाऽनुरागपरमोत्सवा ॥ सा त्वां भृशं चिन्तयति त्वत्पार्श्वं गन्तुमिच्छति ॥ ५८ ॥ मानं त्यक्त्वा मद्वचना ल्लाघवं सा कथं व्रजेत् ॥ विनाऽऽहूता गच्छति चेल्लघुता भवति ध्रुवम् ॥ ५९ ॥

जाकर कहो कि वह तुम्हारी प्रिया तुमसे अनुराग करती है और तुम्हारी प्रीतिके वशीभूत होकर मानका परित्याग करती है ॥५६॥समस्त ब्रह्माण्डके पालन पोषण कर्ता अत एव सबके स्वामी श्रीकृष्ण कामियोंके स्नेही नहीं हैं॥ ५७ ॥ अब तुम उनके निकट जाकर कहो कि तुम्हारी प्रिया तुम्हारी अनुरागिणी है,एकमात्र तुम्हारीही चिन्ता करती हैं और तुम्हारे निकट जानेके लिये सर्वदाही उत्कंठित रहती है ॥५८॥ परन्तु मेरे वच

नोंसे मानको छोड़कर किस प्रकारसे निन्दनीय है, बिना ही बुलाये जानेसे निश्चय ही उनका हलकापन विदित होगा॥५९॥और सखियोंके बीचमें हँसीका करानेवाला होगा। और उनसे प्यारेका मिलन होनेसे मन भी वैसा तृप्त नहीं होगा सारांश यह है कि मेरे कहनेपर राधा कभी मानको नहीं छोड़ेंगी॥६०॥हे प्रिये! तू उनके सन्मुख नहीं चलती वृथा मान करती है और सखियोंके साथ भी इस प्रकार विगुणता दिखाती है॥६१॥नारदजी बोले नंदिनी श्रीराधाजीकी यह बातें सुनकर उस कन्याके साथ श्रीकृष्णके निकट जाकर प्रियवचन कहने लगी॥६२॥नन्दिनी बोली कि, मैं प्रार्थना

तस्याः सखीसमाजे तु जायते चोपहासना ॥ तस्या अपि हि माधुर्य्यं न भवेत्प्रियसङ्गमे ॥६०॥ सम्मुखे नानुनीताऽसि वृथा मानं करोषि च ॥ विना सखि प्रियेणालं त्वं वै गुणगणालया॥६१॥ नारद उवाच ॥ श्रुत्वेत्थं राधिकावाचः नंदिनी कन्यया सह ॥ ययौ श्रीकृष्णपार्श्वं सा तमुवाच प्रियं वचः॥६२॥ नन्दिन्युवाच ॥ अनुनेतुं गता राधां न मानं त्यजति प्रिया ॥ उक्ता मया सा बहुशो न साऽऽयाति कथंचन ॥ ६३ ॥ त्वमेव तत्र गच्छस्व मया सार्द्धं सुरेश्वर ॥ अनुनीयाङ्कमारोप्य विलसस्व तया सह ॥ ६४ ॥ मम वाक्यं न शुश्राव हास्येन मधुसूदन ॥ न मानं ते प्रिया त्यक्त्वा इहायास्यति माधव ॥ ६५ ॥ अतो गत्वा तत्समीपं निकुञ्जभवनं हरे ॥ नानाविनोदैः क्रीडित्वा द्वयोर्देहि महासुखम् ॥ ६६ ॥

करनेके लिये गई थी परंतु राधाजीने मानको नहीं छोड़ा, मैंने बहुत भांति समझाया तथापि वह नहीं आई॥६३॥ इस कारण हे सुरेश्वर! आपही स्वयं मेरे साथ वहां चलकर राधाकी प्रार्थना कर उनको अपनी गोदीमें बिठालकर उनके साथ विहार कीजिये॥६४॥वह मेरे वचनोंको हास्य करके नहीं सुनती, राधा कभी मेरे कहनेसे मानको छोड़कर इस स्थानपर नहीं आनेकी॥६५॥इस कारण आपही उस कुञ्जभवनमें जाकर विविध प्रकारसे

क्रीड़ा करके हमारे परम आनन्दको उत्पन्न कीजिये॥६६॥ हे विभो! प्यारीके मनको दूर करनेके लिए यह समय बहुत ठीक है, इस कारण कुञ्जभवनमें जाकर कामसमागम सम्पादन कीजिये ॥६७॥ आप दोनोंके विहारको देखकर हमारा मन प्रसन्न होगा, यह कन्या आपकी विलास कलाको देखनेके निमित्त आई है ॥६८॥ इस कारण और मान करनेका प्रयोजन नहीं है, प्यारीके निकटको चलिये, आपको आपसमें विरहसे व्याकुल देखकर हमारे प्राण पलायन करना चाहते हैं॥६९॥ मैं आपकी सर्वदा साथ रहनेवाली सखी हूँ, इस कन्याके सहित जिससे आपके आनन्दको देख सकूं वही आप उपाय

समयोऽयं विभो प्रेष्ठः प्रेयस्यनुनये शुभः॥ प्रविश्य कुञ्जभवनं कुरुष्व स्मरसङ्गमम् ॥६७॥ क्रीडां हि युवयोर्दृष्ट्वा मनोऽस्माकं प्रसीदति॥ इयं च कन्या युवयोर्विलासं द्रष्टुमागता॥६८॥ एतावतालं मानेन व्रज कृष्ण प्रियान्तिकम्॥ भिन्नौ दृष्ट्वा युवां प्राणा मम यान्ति विनाशताम्॥६९॥ नित्यलीलां च युवयोरिहाहं कन्यया सह॥ यथा पश्यामि भगवंश्चिरं मा भवतु प्रभो ॥७०॥ नारद उवाच॥ श्रुत्वेत्थं नन्दिनीवाक्यमुवाच भगवान्स ताम् ॥ ७१ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ उत्कण्ठितोऽहं च भृशं यामि तत्र त्वया सह॥ धन्याऽसि नन्दिनी नित्यं नातुरा त्वं कदाभवः॥ इयं च कन्या मे द्रष्टुं रहस्यमभिकाङ्क्षति ॥ ७२ ॥ तस्मादस्यै सुखं देयं विनोदं मम पश्यतु ॥ गच्छानया सह ब्रूहि राधामागच्छति प्रियः ॥ ७३ ॥

कीजिये॥७०॥ नारदजी बोले कि नन्दिनीके ऐसे वचन सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि मैं राधाजीके मनको दूर करनेके लिये ही अत्यन्त व्याकुल हो रहा हूं, मैं इस समय तुम्हारे साथ चलता हूं॥७१॥ हे नन्दिनी! तुम धन्य हो कारण कि तुम किसी कारणसे भी व्याकुल नहीं होती, यह कन्या हमारे रहस्यको देखनेके लिये अधिक अभिलाषवती हुई है ॥७२॥ इसकी कामना पूर्ण करना उचित है, इसे हमारी विलासकी कलाको दिखाओ, तुम इस

कन्याके साथ जाकर श्रीराधाजीसे कहो कि तुम्हारे माधव आ रहे हैं ॥७३॥ इस कारण अब तुमको मान करना उचित नहीं होगा; हे कान्त ! सर्वदा मान करनेसे निश्चय ही रसमें भंग होता है॥७४॥नन्दिनी बोली कि मैं राधाजीके पासमें जाती हूं, परन्तु आप इकले ही जाइये, और इस कन्याके अभिलाषको पूर्ण करना अवश्य कर्तव्य है, न करनेसे इसका अनादर होगा ॥७५॥ देखो ! मैं आपकी सहचारिणी हूं इस कारणसे आपके रहस्यको देखनेकी अभिलाषामें हूं हमारे ही साथ आप आइये, यही राधाकी इच्छा है ॥७६॥ इस कारण आप मेरे और इस कन्याके सहित राधाके पासको

अनन्तरं हि भवती न मानं कर्तुमर्हसि ॥ मानोऽनिशं कृतः कान्ते रसभङ्गकरो ध्रुवम् ॥७४॥ नन्दिन्युवाच ॥ गच्छामि राधिकापार्श्वमागन्तव्यं त्वया लघु ॥ कर्त्तव्या कन्यकाकाङ्क्षा अकर्त्तव्यो ह्यनादरः॥७५॥पश्ये रहस्यं युवयोर्यतोऽहं सहचारिणी ॥ सहैव गमने राधाऽयाचतेति ममाग्रहात् ॥ ७६ ॥ ततोऽनया मया सार्द्धं तत्र वै गच्छ मा चिरम् ॥ एकाकिनस्ते गमनमनौचित्यकरं परम् ॥ ७७ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युदीरितमाकर्ण्य प्रस्थितः स तया सह ॥ गतो राधासकाशं स मानिनी मानमत्यजत् ॥ ७८ ॥ नानाविनोदलीलाभिश्चिक्रीडे सा वृषार्कजा ॥ आदृतो भगवान्कृष्णस्तयाऽभिमतया सह॥७९॥ कृत्वा प्रणामं बहुशस्तदोवाच तु कन्यका ॥ दृष्ट्वाद्भुतं रहस्यं सा परं विस्मयमागता ॥ ८० ॥

चलिये आपका उस स्थानपर इकले जाना किसी प्रकार भी उचित नहीं है॥७७॥नारदजी बोले,कि नन्दिनीके ऐसे वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण उसके साथ २ राधाके स्थानको जाने लगे, इनको आता हुआ देख राधाजीने उसी समय मानका त्याग किया ॥७८॥ और अत्यन्त आदरके साथ इनको ग्रहण कर लिया, तब वे परमप्यारी राधाजीके साथ अनेक प्रकारकी विहारलीलाके करनेमें प्रस्तुत हुए ॥ ७९ ॥ कन्या उनके इस परम

अद्भुत रहस्यको देखकर अत्यन्त आश्चर्यको करती हुई वारंवार प्रणाम कर हाथ जोड़ इस प्रकारसे कहने लगी ॥८०॥ कि हे कृष्ण! आपकी प्यारी श्रीराधाजी ही धन्य हैं, जिनके साथ आप आनंदमें मग्न हो, हाथ जोड़ सर्वदा विहार करते हैं।॥८१॥ आप ही हमारे प्राणनाथ हैं, मैं आपको किस प्रकार से त्याग सकती हूं अब ऐसा अनुग्रह होनाचाहिये जिससे लीलाके अनन्तर आपके अद्भुतधामका दर्शन प्राप्त हो॥८२॥ जिससे मैं कुञ्जवनमें, अथवा जहां तहां रहकर आपकी लीलाके आनन्दको सर्वथा देख सकूं ऐसा उपाय आप कीजिये देखो ऋषि भी आपके इस रहस्यको देखनेके लिये अनेक प्रकारसे

धन्या प्रिया ते श्रीकृष्ण यया त्वं रमसेऽनिशम् ॥ कृताञ्जलिर्विषयवाग्दृष्ट्वा तु परमाद्भुतम्॥८१॥ त्वमेव प्राणनाथो मे त्यक्तुं शक्नोम्यहं कथम् ॥ यथाविनोदं लीलां ते पश्येयं भुवनोत्तमाम् ॥८२॥ निकुञ्जे वनमध्ये च तत्र तत्र स्थिता ह्यहम् ॥ यद्द्रष्टुं मुनयो नित्यं तपन्ति परमं तपः ॥८३॥ अधुनाऽपि न ते द्रष्टुं शक्ता हि बहुजन्मभिः॥ दृष्टं परं कौतुकं मे तव नाथ प्रसादत ॥ ८४ ॥ धन्याऽहं ते कृपा जाता यन्ममोपरि माधव ॥ पूर्वजन्मार्जितं पापं समूलमधुना हतम् ॥८५॥ यद्रहस्यं ह्यद्भुतं ते भवत्प्रणयगोचरम् ॥ याचे वरं परं त्वतः किमन्यं पुण्यमुत्तमम् ॥ ८६ ॥

तप करते हैं ॥८३॥ और अनेक जन्मोंको धारण करते हैं परंतु तो भी वह अभिलषित मनोरथके पानेको समर्थ नहीं हैं (अर्थात् तुम्हारे रहस्यको नहीं देख सकते) परन्तु हे नाथ! आपके प्रसादसे आपके उस केलि रहस्यको भलेप्रकारसे देखकर ॥ ८४ ॥ आपकी कृपासे धन्य और पूर्वजन्मकी पीडाके हाथसे मुक्त हुई हूं, अधिक क्या कहूं, आज आपके इस सर्वलोकोंको आनन्दके देनेवाले रहस्यको देखकर मेरे पूर्व जन्मके किये हुए समस्त पाप नष्ट हो गये ॥ ८५ ॥ मुझे आपके प्रणयरूप रहस्यका दर्शन हुआ, इसके समान आपके निकट और किस पुण्यस्वरूप

वरकी प्रार्थना करूं॥८६॥हे विभो ! जो अपने कर्मोंसे प्रेरित होकर आपका भजन वा स्मरण नहीं करते हैं वह महान् होनेपर भी अपने समयको वृथा व्यतीत करते हैं॥८७॥ हे कृष्ण ! हे कान्त ! हे करुणाकर ! हे विष्णु ! हे श्रीधर! हे परमेश्वर! हे विश्वभावन ! हे परमात्मन् ! नहीं जानती कि मैंने कौनसे कर्मोंका प्रथम अनुष्ठान किया था उसीसे आज यह शुभदर्शन प्राप्त हुआ है,॥८८॥हे प्राणनाथ!अब मैं यही प्रार्थना करती हूं कि मेरा इन्हीं लताओंमें जन्म हो और मैं नहीं जानती कि तप क्या है ? क्या धर्मका अनुष्ठान है, तथा व्रतका आचरण क्या है?॥८९॥ कौनसे दूसरोंके

तेषां कालो वृथा याति त्वां भजन्ति न ये विभो ॥ संस्मरन्ति महान्तोऽपि प्रेरिता निजकर्म्मभिः॥८७॥कृष्ण कान्त करुणाकर कर्म्मसमूहकृन्तन ॥ श्रीधर विष्णो विश्वभावन परमेश्वर परात्मन्॥८८॥ मे जनुर्भवतु गुल्मलतासु प्राणनाथ इदमेव समीहे॥ किं तपः किमिह धर्म्मसमूहः किं कृतं हि धनदानमनन्तम् ॥८९॥ किं परोपकृतिरन्यजनो मे येन दृष्टमिदमेव रहस्यम् ॥ हे विभो चिरमिह भ्रमितो गां पर्यटन्सकललोकमशेषम् ॥९०॥ एतदेव सुखसिन्धुमनन्तं नावलोकितमहो क्वचिदेव ॥ नित्यमेव नियता तव लीला राधिका रसगतस्य न दृष्टा ॥ यत्क्षणं भवति ते विपिनेऽस्मिन्कोटिकल्पसुखमेति न तुल्यम् ॥ ९१ ॥ याचे विष्णो देहि मे जन्म यत्र स्थित्वा लीलां नित्यमेवानुदृश्ये ॥ वृन्दारण्ये कान्तभूमिप्रदेशे य दृष्ट्वाऽहं यामि मोदं त्वपारम्॥९२॥

उपकार हैं,अथवा कौनसे सुकृतका विधान किया था जिस कारणसे आपके इस रहस्यका दर्शन प्राप्त हुआ? हे विभो !मैं बहुतकालसे पृथ्वीपर घम रही थी ॥९०॥परंतु हाय ! किसी स्थानमें भी इस प्रकारके सुखरूपी सागरको नहीं देखा,सर्वदा प्यारी राधिकाजीके सहित आपकी रासलीलाको हम देखती रहें ॥ आपके साथमें इस वनमें रहनेसे हमारे करोड़ कल्पोंके सुख भी एकतिलके समान बोध होते हैं॥९१॥ हे विष्णो ! मैं इस लिये अभि

लाषा करती हूं कि मुझे इस प्रकारसे जन्म दीजिये। जिसे प्राप्त होकर मैं आपकी इस वृन्दावन लीलाको देखकर अपार आनन्दको पा सकूं॥९२॥कन्या बोली कि, हे भगवन्! आपकी इस अद्भुतलीलाका रहस्य मैंने देखा अब मुझको व्रजमें अपनी रासलीला दिखाइये॥९३॥हे प्रतिष्ठाके दाता! आपकी व्रजमें लीला सर्वदा विराजमान है, वही हमको दिखाइये. हे विष्णो! यदि इस कन्यारूपसे उसके देखनेका मुझे अधिकार है तो यह मुझे दिखाइये ॥९४॥ और जो मैं दर्शनयोग्य नहीं हूँ तो क्या करना योग्य है सो आज्ञा दीजिये॥९५॥ भगवान् बोले-कि सुनो मैं यथावत् कहता हूं,इस जगह

श्रीकन्योवाच ॥ दृष्टं रहस्यमेतन्मे भगवन्नद्भुतं परम् ॥ रासक्रीडास्थलं चापि व्रजलीलां प्रदर्शय ॥९३॥ नित्याश्चेद्व्रजलीलास्ते मह्यं दर्शय नारद ॥ कन्यारूपेण ते विष्णो दर्शनाधिकृतं मम ॥९४॥ न वै दर्शनयोग्यत्वं कुर्य्यां किं वद मे प्रभो॥९५॥ किशोर उवाच ॥ श्रूयतां करणीयं यद्यथावत्कथयामि ते ॥ इतो मधुवने रम्या गङ्गा श्रीकृष्णसंज्ञिता ॥ ९६ ॥ तत्र स्नानेन पुंस्त्वं स्यात्कन्यारूपस्य तेऽनघ ॥ पुंस्त्वे जाते ततस्तुभ्यं दर्शयिष्ये व्रजोत्सवम् ॥ ९७ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्ते तु समागम्य गङ्गां श्रीकृष्णसंज्ञिताम् ॥ स्नात्वा पीत्वा पयस्तस्याः पुंस्त्वं प्राप्तस्तदैव हि ॥ ९८ ॥

मधुवनमें श्रीकृष्ण नामकी परम मनोहारिणी गङ्गाजी बह रही हैं ॥ ९६॥ हे अनघ! उसमें स्नान करके तुम कन्यारूपी शरीरको छोड़कर पुरुषरूपी हो जाओगे,पुरुष मूर्तिके प्रगट होते ही मैं तुमको व्रजकी लीला दिखाऊंगा ॥९७॥ नारदजी बोले कि भगवान्के इस प्रकार कहने पर वह कन्या कृष्ण गंगाजीके निकटमें गई,और उसमें स्नानकर आचमन किया [illegible] उनकी मार्वि पुरुषरूप हो गयी,और कन्यारूपी शरीरका लोप हो गया॥९८॥

तब वह अपनेको अद्भुत पुरुषरूप देखकर सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त होकर व्रजभूमिको देखनेके लिये जाने लगे ॥ ९९ ॥ स्वरूपके वश होकर उसका मन जिसप्रकारसे आनन्दित हुआ था, व्रजभूमिको देखते ही उसी प्रकारसे एकमात्र आश्चर्यमें हुए, उसी व्यवस्थासे उसने संध्याके समय व्रजभूमिमें प्रवेश किया॥ १००॥ जाकर देखा कि भगवान् केशव गोप और गोपियोंसे युक्त होकर वहां आये हुए हैं, ग्वाल बाल उनकी परमपावनी कीर्तिकी कथाको गान करते हुए उनके साथमें हैं॥ १०१॥ इस ओर समस्तगोपी और यशोदा इत्यादि मातायें अपने २ पुत्र रामकृष्णको देखनेके लिये व्रजमण्डलसे

अपश्यमद्भुतं तत्र ह्यात्मानं पुंस्त्वमागतम्॥ लब्ध्वा मनोरथान्सर्वान्व्रजं द्रष्टुमथाययौ ॥ ९९ ॥ नारदेन स्वरूपेण सानन्दःपरमोत्सुकः ॥ तं सायन्तनवेलायां प्रविष्टो व्रजमण्डलम्॥ १००॥ ददर्शाथ समायान्तं गोपैर्गोभिरधोक्षजम्॥ वयस्यैरनुगायद्भिः कीर्त्तिं परमपावनीम्॥ १०१॥ अथो व्रजाद्विनिःसृत्य गोप्यः सर्वा दिदृक्षवः॥ मातरश्च यशोदाद्याः कृष्णरामौ सुतानपि॥ १०२॥ रामकृष्णौ च सर्वेशौ गोपवेषविभूषितौ॥ चारयित्वा वने गाश्च व्रजमेभिश्च जग्मतुः ॥ १०३ ॥ गौरश्यामौ नृणां श्रेष्ठौ सर्वविश्वेशवन्दितौ ॥ अनन्तलीलाभिरतौ गोपवेषधरावपि ॥ १०४ ॥ नित्यं क्रीडति गोपीभिर्व्रजपत्नीभिरात्मवान् ॥ आलोक्य वनिताः सर्वाः प्रीताः श्रीकृष्णदर्शने॥ १०५ ॥

बाहर निकलीं ॥ १०२ ॥ सभीके ईश्वर राम और कृष्ण गोपवेषसे शोभायमान होकर वनके बीचमें गौओंको चराते हुए व्रजकी ओरको आने लगे ॥ १०३ ॥ उनमेंसे एकका गौरवर्ण और दूसरेका श्यामवर्ण था, वह विश्वेश्वर और पूजनीय थे, अनन्तलीलाके प्रसङ्गसे उन्होंने गोपका वेष धारण किया है ॥ १०४ ॥ आत्मवान् हरि गोपियोंके सहित वहां नित्यलीला करते हैं, गोपोंकी स्त्रियें श्रीकृष्णको देखकर अपार प्रीतिके

सागरमें मग्न होकर ॥ १०५॥ आरती करके उन व्रजेश्वरको व्रजके भीतर ले गयीं । इसके पीछे समस्त व्रजकी स्त्रियें यशोदाजीके घरमें गयीं ॥ ॥१०६॥ उस समय देवर्षि नारदजी भी उनके भवनमें गये, मुनियोंमें प्रथम गणनायोग्य भगवान् केशव नारदजीको देखकर हाथ जोड़ आसनसे उठकर॥१०७॥मधुरवचन कहने लगे कि, हे महामुने!आज हमारा जन्म सफल हुआ, जिस कारणसे हमने तपस्या की थी॥१०८॥ उसी कारणसे उस पुण्यके फलसे आपके दर्शन करनेको समर्थ हुआ,आज गोपराज नंदजीका घर भी पवित्र हुआ,जिस कारणसे हे महामुनि ! आप यहांपर आये

नीराजनविधिं कृत्वा व्रजं निन्युर्व्रजेश्वरम्॥व्रजेश्वरीगृहं रम्यं व्रजस्त्रीभिरथागमत्॥१०६॥नारदोऽपि तदा प्राप व्रजेशसदनं महत्॥ तं दृष्ट्वाऽऽयान्तमुत्थाय भगवान्प्रयताञ्जलिः॥१०७॥उवाच वचनं चारु शुभायातं महामुने॥अद्य नो जन्मसाफल्यमद्य नः परमं तपः ॥१०८॥ पूर्व्वपुण्यसमूहेन लब्धं वै दर्शनं तव ॥ गोपराजगृहं धन्यं यन्निविष्टो महामुनिः ॥१०९॥ धन्यं गृहं गृहस्थानां सर्वतीर्थकरं महत्॥साधुभिर्यत्समायातं तव पादोरुपङ्कजम् ॥११०॥ पितरस्तद्गृहं यान्ति प्रसन्नाः सर्वदेवताः॥ भवन्ति नियतं तत्र यत्र गच्छन्ति साधवः॥१११॥येषां पादोदकं तीर्थं तीर्थानामपि पावनम्॥ न पतन्ति गृहे यत्र श्मशानमिव तद्गृहम्॥११२॥

॥१०९॥ साधु जिसके आगमनमे पवित्र और जिनके चरणोंको स्पर्शकर आनंदको बढाते हैं,गृहस्थियोंका वही गृह धन्य है और उस गृहमें समस्त तीर्थ विद्यमान रहते हैं,॥११०॥ जिस स्थानपर साधु जाते हैं,पितृपुरुष भी उसी स्थानमें आते हैं और समस्त देवता भी परमप्रीतिके साथ वहां सर्वदा निवास करते हैं॥१११॥साधुओंका चरणोदक परम पवित्र है और समस्त तीर्थ पवित्रताका विधान करते हैं,वह चरणोदक जिसके घरमें न गिरे वहीं

घर श्मशानके समान हैं॥११२॥जिस घरमें भगवान्‌की कथाका पाठ न हो अथवा भगवद्भक्त जिस घरमें नहीं जांय वह घर शृगालोंके घरोंके समान है उसका जन्म सर्वथा निरर्थक है॥११३॥महाभाग महात्मा पुरुष जिस घरमें जाते हैं वही गृह धन्य है,आधिकभावसे युक्त है,महात्मालोग अपने चरणोदकद्वारा जिसके घर आंगनको पवित्र करते हैं॥११४॥हे मुने!जिस कारणसे आप घूमते फिरते हैं उसी कारणसे समस्त मनुष्य परम आनन्दको भोग करते हैं, विशेषकरके आपके शुभागमनसे हमारा घर परम पवित्र होगया है॥११५॥अधिक क्या कहूं हमारे परमपिता नंदजी भी धन्य हो गये माता देवी यशोदा

न विष्णुकीर्त्तनं यत्र न च भागवता जनाः ॥ तद्गृहं क्रोष्टुसदनं तद्गृहस्थजनिर्वृथा ॥११३॥ धन्यं तत्सदनं श्रेष्ठं यत्रायान्ति भवद्विधाः ॥ ये स्वपादोदकेनैव पावयन्ति गृहाङ्गणम् ॥११४॥ मुने लोके शुभं सर्वं यतः पर्य्यटनं तव ॥ विशेषेण पवित्रं मे गृहमागमनात्तव ॥११५॥ धन्यो नन्दः पिता मेऽद्य यशोदा जननी तथा ॥ धन्योऽहं पाविताः सर्वे मुनेरागमनेन ते ॥११६॥ तथापि पृच्छे त्वामद्य यदागमनकारणम् ॥ अहं तवाज्ञाकरणात्कृतार्थः स्यां न संशयः ॥ ११७ ॥ यथा व्रजाधिराजोऽहं निवसाम्यत्र येन च ॥ तद्रहस्यं मया वाच्यमनुरागो यतस्त्वयि ॥ ११८ ॥

भी धन्य हुई और मैं भी धन्य हो गया। सारांश यह है कि हम सभी परमपवित्र हो गये है॥११६॥तथापि मैं पूंछता हूं कि आज आपका आना किस कारणसे हुआ है सो कृपाकर कहिये,आपकी आज्ञाको पालनकर मैं कृतार्थ हो जाऊंगा इसमें कुछ भी संदेह नहीं ॥११७॥ मैं जिस कारणसे व्रजके अधीश्वररूपसे यहांपर निवास करता हूं, उसका वृत्तान्त आपके निकट कहूंगा, जिस निमित्त आपके ऊपर हमारी प्रीतिकी सीमा नहीं है ॥ ११८ ॥

मैं अपनी व्रजकी लीला और अनेक प्रकारके विहारोंको आपसे कहूंगा, नंद इत्यादि गोपोंमेंसे किसीको भी हमारा रहस्य विदित नहीं है, अथवा इनमेंसे मेरे चरित्रको कोई भी नहीं जानता है, मैं जिसकारणसे गोपोंके बालकोंके साथ प्रीतिपूर्वक क्रीड़ा करता हूं उनका रहस्य भी वर्णन करूंगा. गोपी, वा गोप सम्पूर्ण अथवा गोपबालिकायें कोई भी हमारी कृपाके विना इस समस्त रहस्यको नहीं जान सकते ॥ ११९॥ नारदजी बोले, —कि मैं भगवान् श्रीकृष्णके ऐसे वचनोंको सुनकर आनन्दसे गद्गदकण्ठहो यह वचन बोला ॥१२०॥ कि हे भगवन् ! आपने नन्दजीके घर, अथवा वृन्दावनमें या पर्वतोंके बीचमें

ब्रवीमि व्रजकेलिं स्वां विहारांश्च तथा बहून् ॥ जानन्ति नैतद्गोप्यं मे गोपा नन्दादयस्तथा ॥ गोप्यो रहस्यं बालाश्च ममानुग्रहणं विना ॥११९॥ नारद उवाच ॥ निशम्येत्थं भगवतो वचनं चाहमब्रुवम् ॥ आनन्दबाष्पकलया वाचा गद्गदया भृशम्॥ ॥१२०॥ नन्दालये या लीलास्ते कृष्ण वृन्दावने गिरौ ॥ वदतां शृण्वतां गेहे रतिं छिन्दन्ति या नृणाम् ॥ १२१ ॥ बाल्यकौमारपौगण्डवयःसु च कृतास्त्वया ॥ अनेकविस्तारतया वद मे त्वं प्रियो यतः ॥ १२२ ॥ अजनस्य च ते जन्म नाशायोत्पथगामिनाम् ॥ क्षेमाय सर्व्वलोकस्य कर्त्तुं कर्म्माणि चैव हि ॥ १२३ ॥ यथैव सोऽब्धिर्मथितो लभ्यतेऽथ सुधा यथा ॥ संसेव्यमानो भक्तैस्त्वं ज्ञायसे नान्यथा क्वचित् ॥ १२४ ॥

कुमारअवस्थासे युवा अवस्थातक जो जो लीला की हैं उन सभीको कहिये; जिन लीलाओंका श्रवण और कीर्त्तनकरनेवालोंकी प्रीति बढ़ती है जिस लिये मैं आपका प्रिय हूं॥१२१॥१२२॥ आपका जन्म नहीं है, आप केवल मनुष्योंकी अभाग्यताको दूरकरने और नरकसे उद्धार करनेके निमित्त जन्म लेकर संसारके मंगलसाधनेके अर्थ समस्त कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं।।१२३॥ समुद्रको मथनेसे जैसे अमृतकी प्राप्ति होती है, उसी प्रकारसे समस्त आपकी

कथाओंके सुननेसे मंगलका उदय होता है,भक्तलोग आपकी भलेप्रकारसे उपासना करनेपर भी आपके स्वरूपसे वञ्चित रहते हैं,इस विषयमें किसी प्रकार का भी सन्देह नहीं है॥१२४॥आप उत्पत्ति वा पालन अथवा संहार जो कुछ भी करते हैं कुछ भी आपके लिये विकार नहीं हैं॥१२५॥ जिस कारणसे आपके निर्गुण स्फटिकमणिके समान रागयोगमें सम्पर्क आपके सत्त्वगुणको प्रतिपन्न होते हैं॥१२६॥आप ही सब प्राणियोंमें आत्मा और मध्यवर्त्तिरूपसे विराजते हैं,आपकी कीर्तिकथाको मनकी स्थिरताके साथ सुनकर धारणकरनेसे संसारके क्लेश दूर हो जाते हैं॥१२७॥कौनसे मूर्ख उसको श्रवण नहीं करते

न ते कश्चिद्विकारोऽस्ति सृजतो रक्षतोऽपि वा ॥ लोकान्संहरतश्चैव निर्गुणोऽसि यतो विभो॥१२५॥सगुणत्वं रागयोगात्स्फटिकस्येव ते स्मृतम् ॥ सा ज्योतिर्ज्योतिषां वारिप्रतिबिम्बो यथा भवेत्॥१२६॥आत्मा त्वं सर्व्वभूतेषु मध्यवर्ती क्वचित्स्थितः ॥ चित्तस्थैर्य्यं परं ज्ञानं संसारक्लेशकृन्तनम् ॥१२७॥ यतः स्यात्तन्न शृणुयात्को मूढो यो नरेतरः ॥ तोष्येऽहं तत्परो भूत्वा कथयस्व कृपानिधे ॥ १२८ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ शृणु त्वं मुनिशार्दूल कथयाम्यात्मकौतुकम् ॥ यथा व्रजे विहारो मे भवेत्परमदुष्करः ॥ १२९ ॥ नित्यो व्रजस्तथा नित्या य एते व्रजवासिनः ॥ गोपा गोप्यो वनं गावो विहराम्यत्र नित्यशः ॥ १३० ॥ न पश्यन्ति नरा मूढा मायया नष्टचक्षुषः ॥ कामक्रोधाभिभूताश्च विशेषेण कलौ युगे ॥ १३१ ॥

इस कारण मैं तत्पर होकर उसको सुनूंगा आप कृपाकरके मुझसे कहिये ॥१२८॥ श्रीकृष्ण बोले कि हे मुनिशार्दूल! तुम श्रवणकरो मैं आत्मलीलाका वर्णन करता हूँ,मैं जिस कारण व्रजमें परमदुष्कर कलिके प्रसङ्गसे आया हूँ वह भी कहता हूँ॥१२९॥व्रज और व्रजवासी,यह सभी नित्य विराजमान हैं,किसीका भी विनाश नहीं है. गोप, गोपी, गौओंके बच्चे वृन्दावनमें सभी नित्य हैं, मैं भी निश्चय ही वहां विहार करता हूँ ॥ १३० ॥ जो लोग मूढचित्तके

हैं, मायाके वशसे जिनके नेत्र नष्ट हैं वह इसको नहीं देख सकते, जो लोग काम क्रोधमें लिप्त हैं उनकी दृष्टि भी इस सामर्थ्यसे दूर हो गयी है। अधिकतर कलियुगमें ॥१३१॥ सभी लोग एकमात्र विषयकी अभिलाषामें तत्पर, श्रुति स्मृतिसे रहित, धर्महीन और दिन २ मेरी भक्तिसे शून्य हैं॥ १३२ ॥ मैं ही भक्त और ज्ञानीस्वरूप हूं मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं है, समस्त ब्राह्मण वेदसे वर्जित, शूद्रके समान आचार करनेवाले, कुटुम्बके पालन करनेमें आसक्त ॥१३३॥ भोजन पान और विहारादिमें लगे हुए विद्यासे रहित अनेक प्रकारके अधर्मोंसे स्वयं कुकर्ममें रत ॥१३४॥ सत्कर्मोंसे विमुख

लोका विषयिणो येऽत्र श्रुतिस्मृतिविवर्जिताः॥ धर्म्महीना ह्यनुदिनं मद्भक्तिरहिता भृशम्॥१३२॥ भक्तोऽहं ज्ञानवानस्मि मत्तोऽन्यः कोऽत्र विद्यते ॥ ब्राह्मणा वेदरहिताः शूद्राचाराः कुटुम्बिनः॥१३३॥ लोलुपा भोजने पाने विद्याविरहिताः खलाः ॥ नानापथोपदेष्टारः कुकर्म्मनिरताः स्वयम् ॥१३४॥ दूषका विष्णुभक्तानां सत्कर्मविमुखाः परम् ॥ लोकं चोपहसिष्यन्ति स्वच्छन्दा बकवृत्तयः ॥१३५॥ स्वप्नोपमे नृलोकेऽस्मिन्विशेषेण कलौ युगे ॥ तेषामहं समुद्धर्त्ताऽवश्यं संसारसागरात्॥१३६॥ यदा पूर्व्वजनुः पुण्योपचयो भविता नृणाम् ॥ तदा मद्भक्तसंयोगस्ततो मद्भक्तिसम्भवः ॥१३७॥ व्रजेऽनुरागो राधायाश्चरणानुस्मृतिः परम् ॥ गृणाम्यनुग्रहेणैव अवतारान्पृथग्विधान् ॥ १३८ ॥

बकधार्मिक मनुष्य विष्णुभक्तकी निन्दा करके उनका उपहास करेंगे॥१३५॥ मैं स्वप्नसमान संसारमें विशेषकर इस कलियुगमें उनका संसाररूपी समुद्रसे उद्धार करूंगा ॥१३६॥ लोगोंका जिस समय प्राचीनपुण्य प्रत्यक्ष होगा तभी उनमें हमारी भक्तिका उदय होगा, तभी हमारे भक्तोंके सहित हमारा समागम होगा ॥१३७॥ और उसी समय व्रजमें प्रीति और श्रीराधिकाके चरणकमल चिन्तन करनेका आविर्भाव होगा, मैं इस संसारके मनुष्योंके

ऊपर अनुग्रह करनेके लिये मनुष्योंमें पृथक् २ रूपसे आया हूं॥१३८॥ सम्पूर्ण असुर यवनांशमें जन्म लेकर त्रिलोकीको सन्तापित करेंगे, इसी लिये एकमात्र अत्याचार और अविचारका प्रादुर्भाव होगा ॥१३९॥ बुरी पवनके चलनेसे समस्त प्रजा पीडित होकर देशदेशांतरोंमें भाग जायगी परंतु कहीं भी सुखपानेको समर्थ न होगी॥१४०॥वैश्य और शूद्र यह सभी नित्य पाखंडी और कूटवृत्तिका अवलंबन करके एकमात्र विषयकोही सार मानकर उसकी प्रेरणासे अनेक प्रकारके दुराचरण करेंगे॥१४१॥समस्त ब्राह्मण धर्मसे नाशकी अवस्थाको प्राप्त होकर किसी प्रकारसे भी धर्ममें स्थित

असुरा यवनांशेषु जाता लोकोपतापिनः ॥ अनीतिनिरताः सर्वे संग्रहे च प्रबुद्धयः ॥ १३९ ॥ पलायमानास्तेषां हि प्रजाः स्युरतिपीडिताः ॥ प्रापुर्देशान्तरं चापि क्वचिन्न सुखिनोऽभवन् ॥ १४० ॥ वैश्यास्तु शुद्रपाषण्डा नियतं कूटवृत्तयः ॥ शश्वत्क्रूरक्रियाश्चैव विषये सारबुद्धयः ॥१४१॥ तेषु विप्रेषु नष्टेषु कथं धर्म्मः प्रवर्त्तते ॥ कदाचित्केऽपि मद्भक्ता भविष्यन्ति कलौ युगे॥१४२॥शूद्रा विकर्म्मनिरता गोविप्राग्निपराङ्मुखाः ॥ तदा धराऽतिभारा हि कृत्वा गोरूपमद्भुतम् ॥१४३॥ संप्राप्ता ब्रह्मसदनं स्वदुःखानि न्यवेदयत् ॥ प्रयामि पातालतलं भारं सोढुं नहि क्षमा ॥ १४४ ॥ न शैलानां च सिन्धूनां लवणानां तथा नृणाम् ॥ नहि भारः सम्भवति यथा भारोऽह्यपालनात् ॥ १४५ ॥

नहीं रह सकते, इस कलियुगमें कभी कोई मनुष्य मेरी भक्ति करेंगे ॥१४२॥ तो उस समय समस्त शूद्र कुकर्मसे निरत और ब्राह्मण भी अग्निसे विमुख हो जाते हैं,तब पृथ्वी निश्चय अधिक बोझसे गौकी मूर्तिको धारण कर॥१४३॥ब्रह्माजीके निकट जाकर अपने दुःखको कहती है"कि मैं अधिक भारको सहन न करसकनेसे पातालमें घुसी जाती हूं॥१४४॥उस प्रकारका भार मनुष्य,पर्वत और सागरको धारण करनेसे भी नहीं होगा जैसा कि इस समय

मुझे उपस्थित हो रहा है ॥ १४५॥ देखो! ब्राह्मण वेदसे रहित और सदाचारसे वर्जित, क्षत्री प्रजाके पालनकरनेसे विमुख,वैश्य अपनी वृत्तिसे रहित ॥१४६॥शूद्र अपने स्वामीकी भक्तिसे विमुख,स्त्रियें परपुरुषोंमें आसक्त,पुत्र मातापिताके प्रति स्नेहसे रहित हो उनकी शुश्रूषा नहीं करते ॥१४७॥और समस्त मनुष्य ही विषयभोगमें रत और कुकर्ममें प्रवृत्त होकर कार्य करते हैं उनका भार मेरे ऊपर अधिक हो गया है"॥१४८॥पितामह ब्रह्माजी पृथ्वीके

ब्राह्मणा वेदरहिताः सदाचारविवर्जिताः॥क्षत्रियास्त्यक्तराज्याश्च वैश्या वृत्तिप्रपीडिताः॥१४६॥शूद्राः स्वामिष्वभक्ताश्च स्त्रियः पररताः सुताः॥त्यक्तमातापितृस्नेहाः शुश्रूषारहिताः परम् ॥१४७॥ विकर्म्मनिरता लोकाः कुकर्म्मण्यतिरागिणः ॥ यदा तदा ऽतिभारो मे भवत्येव जगद्गुरो ॥१४८॥ श्रुत्वेति वाक्यं धरणेः पितामहश्चिरं समुद्विग्नमना विचार्य्य॥ सार्द्धं धरित्र्याऽमरलोक संघैर्ममालयं क्षीरनिधिं जगाम॥१४९॥इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे वैयासिके नारदशौनकसंवादे कलिप्रभाववर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ब्रह्मा क्षीराब्धिनिकटे सूक्तैश्चक्रे मम स्तवम् ॥ समाधाय ततश्चित्तं श्रुतवानथ भारतीम् ॥१॥ अहं स्वरूपं लोकेषु प्रदर्श्यातिमनोहरम् ॥ हरिष्यामि भुवो भारं मा कुरुष्व मनोऽन्यथा ॥ २ ॥

ऐसे वचनोंको सुनकर अत्यन्त ही उद्विग्नचित्तसे विचार करके देवता और पृथ्वीको साथ ले मेरे पास क्षीरसागरमें आये॥१४९॥इति श्रीआदिपुराणे सूतशौनकसंवादे भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥श्रीकृष्ण बोले, कि पितामह ब्रह्माजी मेरे पास आकर सावधानताके सहित वेदयुक्त वाक्योंसे मेरी स्तुति करने लगे,मैं उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर [illegible] तुम किसी प्रकारकी चिन्ता न करो॥१॥ मैं पृथ्वीमें अवतार ले पृथ्वीके भारको हरण

करूंगा, तुम किसी प्रकारका भ्रम मत करो॥२॥यह सुनकर ब्रह्माजी देवताओंके निकट मेरी आज्ञाको सुनाकर उनके साथ अपने लोकको चले गये ॥३॥मैंने इस प्रकारसे देवताओंके कहेजानेपर वसुदेवके औरससे देवकीके गर्भमें जन्म लिया, मेरे जन्म लेते ही वसुदेवजी कंसके डरसे मुझे उसी समय गोकुलमें पहुँचा आये॥४॥उस समय गोकुलमें समृद्धि बढ़ने लगी, नन्दगोप मेरे अद्भुत स्वरूपको देखकर मोहित हो॥५॥असंख्य गौवें दान देने लगे, और बहुतसे गोपोंके विवाह कराये, मेरे उत्पन्न होनेसे नन्दजीके घरमें अनेक उत्सव होने लगे ॥६॥ गीत, वाद्य, घोष, ब्राह्मणोंकी वेदध्वनि और

ततो ब्रह्मा ममाज्ञां यथोक्तामधिगम्य च ॥ ययौ स्वलोकं देवाश्च ययुस्स्वस्वनिवेशनम् ॥३॥ तैः प्रार्थितोऽहमभवं देवक्यां वसुदेवतः ॥ नीतोऽहं वसुदेवेन गोकुलं गोपमण्डितम्॥४॥मदागमनमारभ्य संवृद्धिर्गोकुलेऽभवत्॥दृष्ट्वा मद्रूपममलमुत्सुको नन्द गोपकः॥५॥असंख्याः प्रददौ गाश्च गोपान्गोपीरयोजयत् ॥ हृष्टः स्वभवने नन्दश्चकार परमोत्सवम् ॥६॥ गीतवादित्रघोषैश्च विप्राणां वेदनिस्वनैः ॥ गानैर्बल्लवनारीणां गायकानां च संकुलम् ॥ ७ ॥ हरिद्रादधितैलैस्ते लिलिपुर्नवनीतकम् ॥ चिक्षिपुः सिषिचुर्गोपा ननृतुश्च परस्परम् ॥ ८ ॥ आशिषं प्रददुर्विप्रा ये वाऽऽसंस्तत्र याचकाः ॥ गोपा गोप्योऽभिसंहृष्टा ददुर्वस्त्रविभू षणम् ॥ ९ ॥ केचित्स्तुवन्ति नृत्यन्ति गायन्ति ददुराशिषः ॥ अयाचितं याचकेभ्यः प्रायच्छंस्ते धनं बहु ॥ १० ॥

गोपोंकी स्त्रियोंके सङ्गीतकी ध्वनिसे नन्दजीका घर परिपूर्ण हो गया॥७॥ गोपगण आनन्दसहित हलदी दही तेल और मक्खनको देहमें लगाकर लुटाने लगे और नृत्य करने लगे ॥ ८ ॥ वहां स्थित ब्राह्मणगण मुझको आशीर्वाद देनेलगे और गोपियें प्रसन्न होने लगीं, उन्हें वस्त्र और बहुतसे अलंकार मिले ॥ ९ ॥ याचकलोग अयाचितभावके अनेकप्रकारसे धनरत्नादिको प्राप्तकर सन्तोषित हो आशीर्वाद देकर नृत्यकर गीत,

इत्यादिको गाने लगे॥१०॥सभी लोग इस परमउत्सवमें मग्न होकर शरीरकी सुधिको भूल गये और सूत मागध बन्दीजनआदि सभी लोग धनियोंके समान दान देने लगे ॥११॥ गोपगणोंके विशेषदानसे और याचकोंकी तृप्तिसे अत्यंत आनंद हुआ और मांगलिक द्रव्य दधि मक्खन घृत और जलसे ॥१२॥ स्त्रीपुरुषोंके शरीर लिप्त हो गये,उन्हें विशेष आनंद प्राप्त हुआ,इस महोत्सवको देवतागण विमानोंमें बैठकर देखने लगे॥१३॥और संतुष्ट हो गीतवाद्यादि करते हुए फूलोंकी वर्षा करने लगे, मैं उनके इस उत्सवसे प्रसन्न होकर ॥१४॥ व्रजवासियोंको सुख देने और लीला करनेके लिये रत

सर्व्वे विस्मृत्य चात्मानं समाश्च परमोत्सवे ॥ धनिका इव लभ्यन्ते सूतमागधवन्दिनः॥ ११ ॥ गोपानामतिदानैश्च याचकानां च तर्पणैः ॥ सुमङ्गलद्रव्यदधिनवनीतघृताम्बुभिः ॥ १२ ॥ सिक्ता नरास्तथा नार्य्यो मुदमापुर्महातुराः ॥ देवा विमानमारुह्य ददृशुः परमोत्सवम् ॥१३॥ चक्रुः कुसुमवृष्टीश्च स्तुत्वा वाद्यान्यवादयन् ॥ तेषां महोत्सवेनाहं प्रसन्नोऽतितरां तदा॥ ॥ १४ ॥ व्रजस्थेभ्यः सुखं दातुं लीलां कर्त्तुं समुत्सुकः ॥ द्वापरान्ते कलेरादौ व्यतीते तु शरच्छते ॥१५॥ प्रौष्ठपद्यामथाष्टम्यां कृष्णायामर्द्धरात्रके ॥ रोहिणीस्थे चन्द्रमसि स्वोच्चगेऽभूज्जनिर्मम ॥१६॥ तदा मनांसि साधूनां प्रसन्नान्यभवन्गृहे ॥ दिशोऽभवन्सुविमला वियद्विमलतारकम् ॥॥१७॥ महोत्सवस्तु सर्व्वेषां जनानां चाभवद्गृहे ॥ मद्गुणश्रवणं नाम्नां कीर्त्तनं स्मरणं मम१८॥

हुआ । हे ऋषे! इसके पीछे मैं अपने जन्मका वृत्तान्त तुमसे समस्त ही कहूंगा श्रवण करो,द्वापरयुगके अंतमें और कलियुगके प्रारम्भमें अर्थात् दोनों युगोंके सन्धिकालमें भाद्रपदमासके कृष्णपक्षमें, आधीरातके समय रोहिणीनक्षत्रमें मेरा जन्म हुआ,उस समय लग्नका स्वामी उच्चस्थानमें स्थित था ॥१५॥१६॥साधुओंका मन प्रसन्न हुआ,दशों दिशायें निर्मल हो गयीं,आकाशमंडलमें तारागणोंने विचित्र शोभा धारण की ॥१७॥ उस समय घर

घरमें मेरे नामका कीर्तन और पूजन हो रहा था, और सब ही भक्त भक्तिभावसे मुझमें आसक्त थे॥ १८॥ मेरे चरणोंकी सेवा, पूजा और दास्यभाव प्रत्येक घरोंमें हो रहा था, और इसी प्रकार शरणागतिका उच्चारण भी होता था ॥ १९॥ इस प्रकार भूमिके ऊपर सर्वत्र आनन्द मङ्गल हो रहा था, और एक प्रकारसे अधर्मका मानो विनाश ही हो गया था, विशेष क्या कहूं, सब लोग मेरी भक्तिमें ही तत्पर हो गये थे ॥ २०॥ पूर्व जन्ममें वसुदेव, देवकीने दिव्य सहस्रवर्षपर्यन्त मेरी बड़ी कठिन तपस्या की थी तब मैं उनके निकट प्रकट हुआ ॥ २१॥ उस समय मैंने उनको वर दिया था कि मैं तुम्हारा

पादसेवार्चनं दास्यं वन्दनं चाभवद्गृहे ॥ सर्वेषामभवद्विप्र तथैवात्मनिवेदनम्॥ १९॥ सर्वत्र मङ्गलं भूमावधर्मो विलयं गतः ॥ मय्येव निरताः सर्वे भक्तिभावविभाविताः ॥ २० ॥ देवक्या वसुदेवेन सेवितः पूर्वजन्मनि ॥ दिव्यवर्षसहस्रैस्तु ततोऽहमभवं तयोः॥ ॥२१॥ प्रतिज्ञातं मया तत्र भविष्ये युवयोः सुतः॥ येन रूपेण च तयोर्वरदानार्थमागतः॥२२॥ तदेव परमं रूपमादायाक्षिपथं गतः ॥ दृष्ट्वा च पितरौ हृष्टौ चक्रतुस्तौ स्तुतिं मम॥२३॥ पिता ममाद्भुतं दृष्ट्वा प्रबद्धकरसंपुटः॥ सुताभावनया वृत्त्या विनयानतकन्धरः ॥ विदित्वाऽतिगतो भावं स्तौति मां प्रणयाप्लुतः ॥२४॥ श्रीवसुदेव उवाच ॥ दृष्टं मे परमं रूपं श्यामकञ्जविलोचनम् ॥ चतुर्भुजं शङ्खचक्रगदापद्मविभूषितम्॥२५॥ अलौकिकं कुण्डलिनं किरीटाङ्गदशोभितम् ॥ त्वमेव विष्णुः परमं ब्रह्म त्रैलोक्यनायकः२६

पुत्र हूंगा, उसीके अनुसार इस समय मैंने उनके घरमें जन्म लिया है॥ २२॥ उसी परमरूपको धारण करके मैंने उनको दर्शन दिया, माता पिता मुझे देख प्रसन्न होकर मेरी स्तुति करने लगे ॥ २३॥ पिता मुझे अद्भुतरूपधारी देख हाथ जोड़ पुत्रभावसे शिर झुकाकर नम्रतासे फिर मेरी स्तुति करने लगे ॥ २४॥ वसुदेवजी बोले मैं आज आपकी मनोहारिणी श्यामकांति कमललोचन और शंख चक्र गदा आदिसे विभूषित चारों भुजा ॥ २५॥ कुंडल और किरीट अंगद आदि अलौकिक अलंकारोंसे विभूषित सुन्दर शरीरको देखकर पवित्र हो गया. हे देव ! आप ही विष्णु हैं, आप ही परब्रह्म और त्रिलो

कोंके स्वामी हैं॥२६॥और ब्रह्मांड अनन्त हैं और आप ही उस ब्रह्मांडके स्वामी हैं,तुम्हारी सत्तासे संसारकी सत्ता है,तुम हृदयमें स्थित आत्मा हो ॥२७॥ यह चराचर संसार तुमसे पृथक् नहीं है. हे नारायण ! रात्रिके समय जिस प्रकारसे दीपकसे घरमें प्रकाश होता है ॥२८॥ उसी प्रकार ज्ञानके उदय होनेसे ब्रह्मांडके भीतर तुम्हारा प्रकाश है,तुम एक होकर भी अनेक हो,और आपका कोई रूप भी नहीं है, तुम अनादि और अनन्त हो ॥२९॥ तुम इच्छाहीन होकर भी अनन्त लीला करनेवाले हो और तुम्हारी निर्गुण और सगुण दोनों आकृति हैं, तुम सृष्टिकी रक्षा करनेवाले

अनन्ताख्यं च ब्रह्माण्डमेतद्विश्वेश्वरो विभुः ॥ प्रतीयते सत्तया ते विश्वं सदसदात्मकम्॥२७॥ न किञ्चिदस्तीत्त्वत्तोऽन्यत्किञ्चिदस्ति चराचरम् ॥ प्रकाशते गृहं यद्वन्निशायां ज्योतिषां विभो ॥ २८ ॥ तथा ब्रह्माण्डभाण्डान्तः प्रकाशस्तव नान्यथा॥एकोऽनेको न ते रूपं ह्यनादिस्त्वमनन्तकः ॥२९॥ निरीहोऽनन्तलीलश्च निर्गुणः सगुणाकृतिः ॥ स्रष्टा कर्त्ता च संहर्त्ता याथार्थ्यं वेद कस्तव ॥३०॥ स एव भगवान्पूर्णस्त्वं जातोऽसि गृहे मम ॥ सतां संरक्षणार्थाय असतामभवाय च ॥३१॥ अहं ते शरणं प्राप्तो रक्ष मामखिलाद्भयात् ॥ कंसोऽपि दुष्टोऽसिधर आयास्यति वधाय ते ॥३२॥ यावन्मनोवचः स्तुत्वा वसुदेवोऽथ खिन्नवत् ॥ विरराम तदोवाच देवकी हरिमीश्वरम् ॥ ३३ ॥

और संहार करनेवाले हो, तुम्हारे स्वरूपको कोई भी नहीं जान सकता ॥ ३० ॥ तुम स्वयं भगवान् हो, पूर्ण होकर भी साधुओंके उद्धार और दुष्टोंके मारनेके लिये मेरे घरमें जन्म लिया है॥३१॥मैं तुम्हारी शरणागत हूं,तुम मेरी सब भयसे रक्षा करो,कंस हाथमें खड्ग ले तेरा वध करनेको अभी आ जायगा ॥३२॥इस प्रकार वसुदेवजी भगवान्की स्तुति करनेके पीछे खिन्न होकर मौन हुए तब देवी देवकीजी हरिकी स्तुति करने लगीं,

देवकीजी बोलीं कि हे ईश्वर ! ॥३३॥ तुम्हारा यह रूप योगियोंके ध्यानमें भी अगम्य है, और उनके योगका साधक है, जिसका वेद भी वर्णन नहीं कर सकते हैं सो मैंने आज हे देवराज ! उसका अपने इन नेत्रोंसे दर्शन किया ॥३४॥ जिसके उदरमें समस्त संसार प्रलयके समय लय हो जाता है उसीने आज मेरे उदरमें चतुर्भुज रूपसे जन्म लिया है इसके समान और आश्चर्य क्या है?॥३५॥इस समय जिससे संसारमें विडम्बना न हो ऐसा रूप धारण करो और मेरा यह भ्रम दूर हो ऐसा उपाय करो, आप मेरे पुत्र कहलाओ यही प्रार्थना करती हूं ॥३६॥ आप भक्तोंके ऊपर अनुग्रह

एतद्रूपं ध्यानगम्यं योगिनां योगसिद्धये ॥ वेदैरपि न वक्तव्यं तद्दृष्टं मे सुरेश्वर ॥३४॥ प्रलये जठरे यस्य विश्वं यात्यखिलं लयम् ॥ स त्वं मया कथं गर्भे भृतो लोकविडम्बनम् ॥३५॥ विडम्बना यथा न स्यात्तथवात्मतनुं कुरु ॥ पुत्रानुरागस्त्वयि मे न स्याच्च परमेश्वर॥३६॥ अनुग्रहाय भक्तानां त्वत्प्राकट्यं गृहे मम ॥ कंसोऽयं न यथा वेत्तु त्वज्जन्म मम वेश्मनि॥३७॥तथैव कार्य्यं भगवन्नचिरेण कृपानिधे ॥ इत्थं मुने स्तुतस्ताभ्यां भीताभ्यां कंसतो भृशम् ॥ ३८ ॥ विज्ञायातोऽभवं तूर्णं यथैव प्राकृतः शिशुः ॥ मयोक्तं च पुनस्ताभ्यां मामुपानय गोकुले ॥३९॥ तत्रास्ते च सखा नन्दस्तद्गृहे मां निधाय च ॥ तस्य कन्या मिहानीय देवकीशयने कुरु ॥ ४० ॥

करनेके अर्थ मेरे घरमें उत्पन्न हुए हैं परन्तु हे कृपानिधे ! जिससे कंसको यह समाचार विदित न हो ऐसा आप उपाय कीजिये ॥ ३७॥ हे कृपानिधान ! जिस प्रकार यह उपाय बने सो करो,हे मुनिराज ! उन्होंने कंसके भयसे भयभीत हो मेरी स्तुति की ॥३८॥ तब मैंने प्रसन्न होकर साधारण बालकके समान रूप धारण किया और फिर बोला कि आप इस समय मुझे गोकुलमें ले चलो ॥३९॥ हे पितः ! वहांपर नन्दनामवाले जो आपके

सखा हैं उनके घर मुझे रखकर चले आओ और उनके घर जो कन्या उत्पन्न हुई है उसको लाकर देवकीके शयनागारमें ले आओ॥४०॥(ऐसा करनेसे फिर तुम्हें कोई भय नहीं रहेगा)वसुदेवजी मेरी इच्छानुसार मुझे गोकुलमें लेजानेको सन्नद्ध हुए,उसी समय कारागारके सब दरवाजे स्वयं खुलगये॥४१॥ आकाशमें मेघ गर्जन लगे और मन्द२वृष्टि होने लगी. सर्पोंके राजा आकर मेरे शिरपर गिरती हुई जलधाराको अपने फणोंकी छायासे रोकने लगे ॥४२॥वसुदेवजी मुझको लेकर थोड़े ही समयमें यमुनाके निकट जा पहुँचे,उस समय श्रीयमुनाजी वर्षाके जलसे परिपूर्ण थीं उन्हें देखकर वसुदेवजी

इत्याज्ञप्तो मया शौरिश्चलितो नन्दगोकुलम्॥द्वारःसर्व्वाःस्वयं मुक्ता रुद्धाः कीलकशृङ्खलैः॥४१॥घना जगर्जुर्ववृषुर्मन्दंमन्दं फणीश्वरः॥स्वफणैर्वारयामास जलं वर्षासमुद्भवम्॥४२॥गतोऽसौ यमुनातीरे सा पूर्णा वर्षवारिभिः॥ रात्रिर्घोरा घोरतरा नदीयं बालको मम॥४३॥दुर्गं पश्यामि पन्थानं तरिष्येऽहं नदीं कथम्॥ अत्र स्थिते मयि क्रूरः कंसश्चेत्प्रेषयेन्नरान्॥४४॥ मामदृष्ट्वाऽथ ते तत्र यदीहायान्ति मामनु॥तदा किं वा करिष्येऽहं स सर्वान्मारयेद्द्रुतम्॥४५॥ भीतस्त्वेवं वासुदेवश्चिन्तयामास सङ्कटम्॥तावन्मार्गं ददौ शौरेर्जानुमात्रजला नदी॥४६॥उत्तीर्णः स ययौ घोषं गोपैर्गोभिरलंकृतम्॥ स तत्र मोहितान्सर्वान्भगवन्मायया व्रजे॥४७॥

घोर रात्रिके समय उस महाभयंकर नदी और दुर्गममार्गको लांघकर किस प्रकारसे इस बालको लेकर गोकुलमें जाऊं इस प्रकारकी चिंता करने लगे ॥४३॥बीच२में कंसके भेजे हुए अनुचरोंका स्मरण कर भयके मारे कांपने लगे॥४४॥और यह सन्देह करने लगे कि,यदि कंसके दूत वहां मुझे न देखकर यहां आ जांयगे तो मैं क्या करूंगा, और कंस हम सबको मार डालेगा ॥४५॥ वसुदेवजी इस प्रकार भयभीत हो क्लेशोंकी चिन्ता करने लगे तब यमुना नदी घोंटों २ पर्यन्त हो गयी ॥४६॥ वसुदेवजी उनके पार होकर गोपग्वालोंसे शोभित गोकुल नगरमें पहुँचे, वहां जाकर देखा कि मेरी

मायासे मोहित हुए सभी व्रजवासी घोर निद्रामें अचेत हैं॥४७॥नन्दआदि समस्त गोपोंको शयनकरते देख गोकुलनगरमें प्रवेश किया और नन्दजीके घरमें जाकर देखा कि सूतिका घरमें यशोदाजीकी शय्याके ऊपर कन्या शयन कर रही है॥४८॥तब मुझे यशोदाजीके निकट शयन कराया और उस शय्यापर लेटी हुई कन्याको उठाकर अतिशीघ्रतासे मथुराको चले यह जभी घरमें घुसे कि सम्पूर्ण द्वार पहलेकी भांति ज्योंके त्यों बंद होगये॥४९॥ और वसुदेवजी भी उस कन्याको देवकीकी शय्याके ऊपर लिटाकर पहलेके समान उपस्थित हो गये, इसके पीछे मथुराजीमें जो कुछ भी हुआ

सुप्तांश्च नन्दगोपादीन्वीक्ष्य तत्पुरमाविशत्॥दृष्ट्वा यशोदाशयने कन्यकां सूतिकागृहे॥ ४८ ॥निधाय तत्र तनयं कन्यामादाय चागमत् ॥ पूर्ववत्पिहिता आसन्द्वारः सर्वाःस्ववेश्मनि॥४९॥तां कन्यां देवकीतल्पे निधाय स उपाविशत् ॥ मथुरायां ततोऽभूद्यत्पश्चाद्वक्ष्येऽथ सांप्रतम्॥५०॥शृणु नन्दालये ब्रह्मन्मम जन्ममहोत्सवम्॥पूर्वं यशोदा मुग्धाऽऽसीन्मम मायाविमोहिता॥५१॥मा वेदकन्यकाजन्म मम चागमनं तदा॥गतेऽथ वसुदेवे सा प्रबुद्धा मां ददर्श वै॥५२॥तत्रस्था गोपिकाः सर्वा मां दृष्ट्वा मुदमाप्नुवन्॥श्रुत्वा नन्दोऽथ हृष्टः सन्स्नात्वा दानान्यथो ददौ॥५३॥असङ्ख्यं स गवां दानं सवत्सानां विधानतः॥अलंकृतानां गृष्टीनां प्रादात्परमया मुदा५४

है उसको मैं पीछे कहूंगा॥५०॥इस समय गोकुलके वृत्तान्तको वर्णन करता हूं उसको तुम श्रवण करो। हे देवर्षे ! यशोदारानी पहले ही मेरी मायासे मोहित हो गयी थीं॥५१॥इस कारण वह कन्याके जन्म और मेरे आनेके समाचारको कुछ भी नहीं जान सकी थीं,जब वसुदेवजी मुझको पहुँचाकर चले गये तब वह जागीं और मुझको देखते ही अत्यन्त आनन्दित हुईं ॥५२॥ और वहांपर आई हुई अन्यगोपोंकी स्त्रियें भी आनन्दको प्रकाश करने लगीं, गोपराज नन्दजी यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हो दान करने लगे ॥ ५३ ॥ बछड़ेवाली असंख्य गौओंको विधिविधानसे दान किया,

और बहुतसे रत्न धन इत्यादि दान करने लगे ॥ ५४ ॥ और जो ग्वालबाल मुझे देखनेको आये थे उन्हें भी प्रसन्न हो बहुतसा सुवर्ण और रत्नआदि दान करके दिया ॥ ५५ ॥ वह उस नंदजीके दिये हुए धनरत्नादिको दरिद्रोंको देने लगे, कारण कि वे गोपग्वाल मेरे भक्त थे उनका स्वभाव ही उदार था, उनको धनरत्नादिकोंकी कुछ भी अभिलाषा नहीं थी ॥ ५६ ॥ उनके मनकी वृत्ति मुझमें ही लगी हुई थी, जिस स्थानपर मैं रहता हूं उसी स्थानपर लक्ष्मी अचल होकर निवास करती है और उसी स्थानमें मुक्तिका भी निवास है ॥५७॥ उसके बिना दान पुण्य और उत्सव किस प्रकार हो

दर्शनायागतान्गोपाञ्शातकौम्भाम्बरावृतान् ॥ नानारत्नसमेतं च ददौ दानं स उत्तमम् ॥ ५५ ॥ दानानि प्रददौ तेऽपि न धनागाग्काङ्क्षिणः ॥ स्वाभाविकं महौदार्य्यं मद्भक्तेषु भृशं भवेत् ॥५६॥ मच्चितानां मनोवृत्तिर्नान्यत्रेति कदाचन ॥ यत्राहं तत्र कमला कैवल्यपदमास्थिता॥५७॥तां विना क्व भवेत्प्रेम क्व दानं क्व महोत्सवः॥नन्दोऽतिपूर्णः सम्पत्त्या तत आहूय गोपकान्॥ ॥५८॥चक्रे महोत्सवं दृष्ट्वा गोप्यश्चाजग्मुरुत्सुकाः॥सर्वाः समागताश्चासन्नानोपायनपाणयः ॥५९॥नन्दालयं प्रमुदिताः सुवस्त्रा मणिभूषिताः ॥ आगत्य मिलिताः सर्वा उत्सवं चक्रुरुत्तमम्॥६०॥नवनीतहरिद्राभिस्तथा मङ्गलवस्तुभिः॥यद्गीतं गोपगोपीभिः तच्छृणुष्व महामुने ॥ ६१ ॥

सकता है मेरे आनेसे सर्वसम्पत्तिमान् गोपराज नंद आनंदके साथ महाउत्सव करने लगे ॥५८॥ इस प्रकार गोकुलमें मेरे जन्मका महोत्सव मनाया जाने लगा; गोपियें मंगलाचरण करने लगीं, अनेकप्रकारकी भेंटें ले लेकर सब लोग नन्दजीके घर आने लगे ॥५९॥ और गोपियें भांति २के उत्तम२ वस्त्र और अलंकारोंको पहर सुन्दर२वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित होकर एकत्रित हो नंदजीके घर आ आकर उत्तम उत्सवको करने लगे॥६०॥चारों

और को मक्खन हल्दी इत्यादि मंगलकारी द्रव्योंकी वर्षा होनेलगी, गोपगोपी नंदजीके घरमें मदसे उन्मत्त हो परमानंदके साथ जिस प्रकार गान करने लगीं वह श्रवण करो॥ ६१॥ गोपराज नन्द धन्य हैं और उनकी रानी यशोदाजी भी अथवा व्रजकी युवतियें भी धन्य हैं कारण कि तुम्हारे पिछली अवस्थामें पुत्रकी प्राप्ति हुई है, इत्यादि एवम् अनेक प्रकारके वचनोंको कह२कर गान करने लगीं॥ ६२॥ इति श्रीआदिपुराणे नारदशौनकसंवादे भाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥ श्रीकृष्णजी बोले कि, हे ऋषिश्रेष्ठ! गोपराज नंदजी ग्वालबालोंके ऐसे आशीर्वादको सुनकर विनयके सहित कहने लगे कि, हे गोपगण

धन्यो नन्दो यशोदा च धन्येयं व्रजनायिका ॥ यतो भाग्यविभूत्यैव जरठत्वे सुतोद्भवः ॥६२॥ इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे वैयासिके नारदशौनकसंवादे कृष्णोत्पत्तिर्नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ श्रुत्वेति नन्दो गोपानामतिहृष्ट उवाच तान् ॥ आशीर्भिर्भवतामेव पुत्रजन्म ममाभवत् ॥१॥ बान्धवाः साधवो यस्य वाञ्छन्ति सततं सुखम् ॥ तस्यास्ति पूर्वसुकृतं यतः स्युः सर्वसम्पदः ॥२॥ गोपा ऊचुः ॥ यशोदागर्भसम्भूतेरारभ्य सकले व्रजे ॥ संपत्तिर्विपुला जाता सर्वसौख्यं दिने दिने ॥ ३ ॥ यत्र यत्र हि विश्वात्मा संभवेद्धरिरीश्वरः ॥ तत्र तत्र श्रियो वासो दृष्ट एव इहाद्भुतम् ॥ ४ ॥

आपके ही आशीर्वादसे हमारे ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ है॥ १॥ आप लोगोंके समान सज्जन जिसके बंधु जिसका सदैव भला चाहते हैं भला फिर उसका सौभाग्य क्यों न हो आपके पहले पुण्यके प्रतापसे ही मैं सब समृद्धिमान हुआ हूं। २। गोप बोले कि, हे गोपराज! तुम्हारा यह पुत्र जबसे यशोदाके गर्भमें आया है तबसे ही समस्त व्रजमें अधिक सम्पत्ति उत्पन्न हुई है, और तभीसे दिन२ सब प्रकारके सुख उत्पन्न हुए हैं। ३। अथवा विश्वात्मा भगवान् हरि जिस

जिस स्थानमें वास करेंगे उसीर स्थानमें देवी लक्ष्मी भी निवास करेंगी, इस व्रजमण्डलमें उस अद्भुत चरित्रको हमलोग प्रत्यक्ष देखते हैं॥४॥ऐसा न होनेसे इस प्रकारकी अतुल सम्पत्ति फिर किस प्रकारसे उत्पन्न हुई, लक्षण और जन्म इन दोनोंसे ही शुभाशुभका ज्ञान होता है॥५॥सभीके घरमें सर्वदा सब प्रकारकी समृद्धि उत्पन्न हुई है, पहले किसीके घरमें कभी भी ऐसा चरित्र देखा वा सुना नहीं था, यह क्या है ऐसी चिंता करके समस्त व्रजवासी आनन्दके साथ नृत्य करने लगे॥६॥सभीके असंख्य गौवें और घरके सम्पूर्णपात्र सुवर्णके हो गये, जो पदार्थ पहले कभी नहीं था वह भी अनन्त आकारसे

अन्यथा चेदीदृशी सम्पत्तथा प्रववृधे कथम् ॥ लक्षणैरेव जानीयाज्जन्मतो हि शुभाशुभम् ॥ ५ ॥ अभितः सम्पदो नित्याः सर्वेषां च गृहे गृहे ॥ न श्रुता न च दृष्टाश्च किमेतदिति नृत्यते ॥६॥ गावो ह्यसंख्याः सर्वेषां पात्रं सर्वं हिरण्मयम् ॥ कदाऽपि नासीद्यद्द्रव्यं तदनन्तं विलोक्यते ॥ ७ ॥ अतस्तवायं तनयो विष्णुरेव न संशयः ॥ उद्भूतः साधुरक्षार्थं स्वजनानां शुभाय च ॥ ॥८॥ धन्यं तव वयस्त्वं च धन्योऽयं तस्य संभवः ॥ यतो भाग्योदयो गोपगोपीष्विति वदाम्यहम् ॥९॥ अन्ते वयसि जातोऽयं यशोदायां तवात्मजः ॥ विष्णुर्वा तत्समोऽन्यो वा सर्वथा भाग्यवानयम् ॥ १० ॥

दिखायी देने लगा॥७॥इस कारण ये तुम्हारे पुत्र स्वयं विष्णु ही हैं, साधुओंकी रक्षा और अपने घरवाले तथा बांधवोंके कल्याण करनेके निमित्त संसारमें जन्म लिया है इसमें सन्देह नहीं॥८॥तुम्हारी इस चौथी अवस्था और पुत्रजन्म इन दोनोंको ही धन्य है, कारण कि आज हमें भी गोपी और ग्वालोंका समागम हुआ है॥९॥हे यशोदे! तुम्हारे इस पुत्रने वृद्धावस्थामें तुम्हारे गर्भमें जन्म लिया है, यह विष्णु ही हैं इनके समान और दूसरा कौन होगा

इस कारण तुम सब प्रकारसे सौभाग्यशाली हो ॥ १० ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि सम्पूर्ण गोपी और गोप इस प्रकारके वचन कहनेमें प्रवृत्त हुए, महात्मा नन्दजी अपनेको आशीर्वादोंसे परिपूर्ण हुआ विचारने लगे ॥ ११ ॥ उसी दिनसे व्रजमें विविध प्रकारके मंगल प्रकट होने लगे, महात्मागण आनंदित हुए और दुष्टजन दुःखसे व्यथित होने लगे ॥ १२ ॥ सम्पूर्ण व्रजवासी सुन्दर वस्त्रोंको पहिने दिव्यभूषणोंसे भूषित हो और नन्दजीसे पूजित होकर

श्रीकृष्ण उवाच ॥ वदत्स्वेवं गोपगोपीजनेषु निखिलेषु च ॥ नन्दो महामना मेन आत्मानं पूर्णमाशिषाम् ॥ ११ ॥ व्रजे तद्दिनमारभ्य मङ्गलानि दिने दिने ॥ अभूवन्मुदिताः सर्वे साधवो दुःखिताः खलाः ॥ १२ ॥ दिव्यवस्त्रावृताः सर्वे दिव्याभरणभूषिताः ॥ नन्देन पूजिताः सर्वे विरेजुस्तत्र तत्र हि ॥ १३ ॥ जगुर्नानाविधं गानं ननृतुश्च परस्परम् ॥ गावोऽथ चित्रिता वस्त्रमाल्यपर्वतधातुभिः ॥ १४ ॥ वृषा गावो वत्सतराश्चुक्रुशुर्गोपभूमिषु ॥ लिहन्ति वत्साः स्वाङ्गानि पुच्छानूर्ध्वं क्षिपन्ति च ॥ १५ ॥ इतस्ततः प्रधावन्ति निषिञ्चन्ति पयःस्रवैः ॥ चक्रुस्तथा तथा चेष्टां पुपुषुस्ते यथा तथा ॥ ॥ १६ ॥ गोपा गोप्यः प्रमुदिताश्चक्रुस्ते दधिकर्दमम् ॥ गालीभिः परिहासैश्च जगुः सर्वे मनोरमम् ॥ १७ ॥

जहां तहां इच्छानुसार विराजने लगे ॥ १३ ॥ और परस्परमें मिलकर गान करते व नृत्य करने लगे, सब गौवें और उनके बच्चे सुन्दर रंगीन झूलोंको ओढे गहनेसे चित्रित होकर ॥ १४ ॥ ग्वालोंकी भूमिमें चिल्लाते हुए फिरने लगे और सब बच्चे एक दूसरेके शरीरसे अपने शरीरको रगड़ते हुए कूदते फांदते ॥ १५ ॥ इधर उधर दौड़ने लगे. सारांश यह है कि जिससे जिसको आनन्द हो सकता है उसीको वह करने लगे ॥ १६ ॥ गोप और गोपियोंने

प्रसन्न होकर दधिकी कीचड़ कर दी, गालियें और अनेक प्रकारके उपहासोंको करते हुए मनोहर गान करने लगे ॥१७॥ जिस प्रकार वसन्त काल आनेपर आत्मप्रिय व्यक्ति परिहास करते हैं, उसी प्रकार उन्होंने मुझसे हास परिहास करना प्रारम्भ किया ॥ १८ ॥ वह लोग ऊपर कहे हुए विधानके अनुसार कौतुकके वशीभूत होकर मेरी स्तुति करने लगे कि तुम्हारे कोई माता नहीं पिता नहीं और भाई इत्यादि कोई नहीं है॥१९॥ तुम्हारी स्त्री भी जड़स्वभाववाली और यद्यपि साध्वी (पतिव्रता) है परन्तु सभी उसमें अपना आनंद मानते हैं और त्रिलोकीके बीचमें भी प्रत्येक

उग्रश्च मां प्रति तदा परिहासो यथाऽभवत्॥नित्यानन्दयुतः शश्वद्विप्यत्येप बालकः॥१८॥ कौतुकं तु समाश्रित्य नव चेष्टा प्रव
त्तत॥न ते माता पिता कश्चिन्न कश्चन सहोदरः ॥१९॥ तव माया जडा साध्वी परचित्तप्रहारिणी॥गृहे गृहे प्रविष्टेव लक्ष्यते भुवन
त्रय ॥२०॥ कोऽपि वेत्ति न ते कूटं कर्म्म यत्त्वं करोपि हि ॥ नन्दगोपगृहे पुत्रो यशोदागर्भसम्भवः॥२१॥ सर्वेषां गोपगोपीनां
नयनानन्दभाजनः ॥ अनेकलीलाविर्भावं कुर्वन्नेप व्रजोत्कमः ॥२२॥ सुपूजिताः स्तुतिं चक्रुः सूतमागधवन्दिनः ॥ श्रुतिघोपोऽभव
त्तत्र द्विजानां ब्रह्मवादिनाम्॥२३॥दुन्दुभ्यानकतूर्य्याणां शङ्खानां च निःस्वनैः ॥ बभूव नितरां तत्र देवमानुपचेष्टितम्॥२४॥

घरोंमें आपको प्रवेश करते देखा जाता है॥२०॥तुम जिस कर्मका अनुष्ठान करते हो वह महागूढ है उसको कोई नहीं जान सकता,तुमने इस समय नंद जीके घर यशोदाके गर्भमें जन्म लिया है॥२१॥और सम्पूर्ण गोप गोपियें तुम्हारा दर्शनकर आनन्द भोगती हैं ।तुम अनेक प्रकारकी लीलाओंको करनेके लिये व्रजमें उत्पन्न हुए हो॥२२॥उस समय सूत मागध और बन्दीगण मेरी स्तुति करने लगे, वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंकी श्रुतिकी ध्वनि से सम्पूर्ण ऋचायें प्रतिध्वनित हो गयीं ॥२३॥ उनके साथमें दुन्दुभी ढोल, बिगुल और शंखोंके शब्दोंसे आकाशमंडल परिपूर्ण हो गया,इस प्रकार

मेरे जन्मके हो जानेपर देवता और मनुष्य यह दोनों आपसमें अनेक प्रकारकी चेष्टा करने लगे॥ २४॥ देवता सब प्राणियोंके सम्मुख आकाशमें आकर अप्सराओंको साथ ले बारम्बार गम्भीर ध्वनिके साथ फूलोंकी वर्षाकर जय२शब्दका उच्चारण करने लगे॥ २५॥ सभीके घरके कर्म नष्ट हो गये, अधिक क्या कहें सबको अपने शरीरतककी भी सुधि न रही, गोप और गोपियें तथा देवताओंमें भी इस प्रकारकी घटना उत्पन्न हुई उसमें मनुष्योंको तो अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न हुआ ॥२६॥ इस प्रकारसे नंदजीके घरमें आठों पहरतक अखंड आनंदकी वृद्धि हुई ॥ २७ ॥ महामान्य नन्दजी समस्त मनुष्योंको

दिवि देवगणा हृष्टाः कुसुमासारवर्षिणः ॥ शब्दं जय जयेत्युच्चैरप्सरोभिः समं जगुः॥२५॥ गृहकर्म्माणि नष्टानि स्वदेहानि न सस्मरुः ॥ गोपा गोप्यश्च देवाश्च महदासीत्तदद्भुतम् ॥ २६ ॥ अहो यामाष्टपर्य्यन्तमखण्डं तत्र कीर्त्तितम् ॥ बभूव नन्दसदने मुने मोदाभिवर्द्धनम् ॥२७॥ नन्दो महामनास्तेभ्यो ददौ दानमनुत्तमम् ॥ सूतमागधबन्दिभ्यो वासोऽलङ्कारभोजनम् ॥२८॥ तेनेत्थं भक्तिभावेन याचितः पूर्वजन्मनि ॥ आविर्भूतः सूर्यवंशे भूभारमहरं मुने ॥ २९ ॥ वैवस्वतमनोः पुत्र इक्ष्वाकुरिति विश्रुतः ॥ तस्य वंशे दिलीपोऽभूद्रघुस्तस्यात्मजः स्मृतः ॥ ३० ॥

यथायोग्य दान, मान और सम्मानद्वारा अत्यन्त सन्तुष्ट कर सूत मागध और वंदीगणोंको वस्त्र अलंकार और भोजन देने लगे॥२८॥ हे मुने! पूर्व जन्ममें महामान्य नन्दजीने भक्तिभावसे इस प्रकार मेरी प्रार्थना की, इसीसे मैंने सूर्यवंशके अंशमें अवतार लेकर भूमिके भारको हरण किया था॥२९॥ वैवस्वत मनुके पुत्र इक्ष्वाकु नामसे विख्यात हुए, उनके वंशमें महाभाग राजा दिलीपने जन्म लिया, दिलीपके पुत्र रघु नामसे विख्यात हुए, रघुके महाभाग

अज उत्पन्न हुए, अजके पुत्र त्रिलोकीमें विख्यात दशरथजी हुए, उनके तीन स्त्रियां थीं पहलीका नाम कौसल्या, दूसरीका कैकेयी॥ ३०॥ ३१॥ और तीसरी रानी उनकी सुमित्रा थीं, इन तीनों रानियोंमें कैकेयी राजाको अत्यन्त ही प्यारी थी, मैंने कौसल्याके गर्भमें अवतार लिया था और भरतजी मेरे अंशसे कैकेयीके पुत्र हुए॥ ३२॥ और मेरे दो अंशोंसे लक्ष्मण और शत्रुघ्नने सुमित्राके गर्भकी शोभा बढ़ायी, सभी पुत्रोंने राजाको प्रीतिके वशमें कर लिया था॥ ३३॥ इनके बीचमें रामचन्द्र और लक्ष्मण यह दोनों जैसे आपसमें मेल और प्यार रखते थे उसी प्रकारसे भरत और शत्रुघ्नजी भी अत्यन्त

तत्पुत्रोऽजो दशरथस्तस्य पुत्रः किलाभवत् ॥ तस्य भार्य्यात्रयमभूत्कौशल्या कैकयी तथा ॥ ३१ ॥ सुमित्रा तिसृणां चैव कैकेय्यासीन्नृपप्रिया ॥ कौशल्यायामहं जातो मदंशो भरतस्त्वभूत् ॥३२॥ कैकेय्यां च सुमित्रायां मदंशौ संबभूवतुः ॥ लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नः सर्वे राज्ञः प्रियाः सुताः ॥ ३३ ॥ रामलक्ष्मणयोः प्रेम शत्रुघ्नभरतौ तथा ॥ प्रियावास्तां विशेषेण ववृधुः पितृसम्मताः ॥ ३४ ॥ विश्वामित्रो मुनिः प्राप्तो राजानमिदमब्रवीत् ॥ राजन्मदाश्रमे यज्ञश्चारब्धो राक्षसैः खलैः ॥ ॥ ३५ ॥ क्रियते नितरां विघ्नः शमयस्व महाभुज ॥ यज्ञविघ्नविनाशाय रामं प्रेषय मा चिरम् ॥ ३६ ॥ ॥ दशरथ उवाच ॥ क्लेशेन महता लब्धो वयस्यन्ते मयाऽधुना ॥ प्रियो मे तनयो रामस्तं कथं प्रेषये वने ॥ ३७ ॥

मेल रखते थे, पिता राजा दशरथजी इनको बड़े आदरके सहित लालन पालन करते थे ॥३४॥ एक समय विश्वामित्र मुनिने आकर राजासे इसप्रकार कहा कि हे राजन्! मेरे आश्रममें यज्ञ आरम्भ हुआ है सो उस यज्ञमें दुष्ट राक्षसोंने ॥ ३५ ॥ विघ्न करना आरम्भ किया है इस कारण आपको उसका निवारण करना चाहिये, आप [illegible] विलम्ब न कीजिये और यज्ञमें विघ्नोंकी शांतिके लिये रामचन्द्रको मेरे साथ भेज दीजिये॥ ३६॥ विश्वामित्रजीके ऐसे

वचन सुनकर राजा दशरथजी विस्मित हो कहने लगे कि हे मुने! मैंने वृद्धावस्थामें अनेक प्रकारके क्लेशोंको सहन कर रामचन्द्रको पाया है रामचन्द्र ही मेरे केवल एक प्रीतिकी सामग्री हैं इस कारण फिर भला मैं उनको किस प्रकारसे वनमें भेज दूँ ॥३७॥ मैं ही आपके साथ चलकर दुष्ट राक्षसोंको मार तुम्हारे यज्ञके विघ्नोंको शांतकर फिर तुरत ही चला आऊंगा॥३८॥विश्वामित्रजी बोले कि हे राजन्! जिस प्रकारसे रामचन्द्रसे निःसन्देह हमारा कार्य सिद्ध होगा आपसे कभी भी उस प्रकारका नहीं हो सकता, इस कारण रामचन्द्रको ही मेरे साथ भेजिये॥३९॥महर्षिके यह

सार्द्धमहं त्वया गत्वा हत्वा राक्षससञ्चयम् ॥ निवार्य्य यज्ञविघ्नं तु आगमिष्येऽचिरेण हि॥३८॥विश्वामित्र उवाच॥न त्वया मम कार्य्यं हि तथा सम्पत्स्यते नृप ॥ यथा रामेण सकलं भविष्यति न संशयः ॥३९॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ श्रुत्वेति वाक्यं समुनेः प्रेषयामास राघवौ ॥ ताभ्यां च यज्ञविघ्नानि शमितान्यखिलानि वै॥४०॥पुनस्तु तौ गतौ द्रष्टुं मिथिलेशस्य चाध्वरम्॥तत्र कृत्वा धनुर्भङ्गं लब्धा सीता वधूः शुभा॥ ४१ ॥रामेणान्यैश्च रघुजैः कृतोद्वाहास्ततस्तु ते॥सार्द्धं नृपेण नगरीमयोध्यां पुनरागताः॥४२॥

वचन सुनकर महाराज दशरथजीने रामचन्द्र और लक्ष्मणजीको उनके साथ भेज दिया, उन्होंने जाकर यज्ञके सम्पूर्ण विघ्नोंका नाश कर दिया ॥४०॥इसके पीछे वह अपनी नगरीको न आकर मिथिलाके राजा जनकके यज्ञको देखनेके लिये गये और वहां जाकर शिवजीका धनुष तोड़ा और पीछे महाभाग रामचन्द्रने परमकल्याणशालिनी जानकीका पाणिग्रहण किया॥४१॥ इसके पीछे और भाई भी वहां विवाह गये,फिर सबजने मिलकर

१ राजा जनकने धनुषभंग होजाने पर राजा दशरथको यह वृत्तान्त पत्रद्वारा सूचित किया था तो वे बारात ले आये। उन्हींके साथ रामचन्द्रके अन्य भ्राता भी आये थे तब चारों भ्रातओंका विवाह हुआ और अन्तमें उन्हें अयोध्यापुरीको साथ लेकर गये थे।

राजा दशरथजीके साथ पुनर्वार अयोध्यापुरीको आये ॥ ४२ ॥ नगरके सब पुरवासियोंने बहुतसा आनन्द माना इसके पीछे राजा दशरथजी रामचंद्रजीको अयोध्याके राजसिंहासनपर अभिषिक्त करनेकी इच्छा करने लगे,उस समय रानी कैकेयी राजासे कहने लगी,कि रामचंद्रको राज्य न देकर उनके बदलेमें मेरे पुत्र भरतको राज्य दीजिये॥४३॥रानीके इस वचनको सुनकर राजा दशरथजी उसी समय मूर्छित हो गये,फिर कितनीएक देरमें चैतन्य हुए और बारम्बार विलाप करने लगे॥४४॥इस ओर कैकेयीने रामचंद्रको अपने निकट बुलाया और उनसे राजाके सामने ही वन जाने

तस्यां नृपो दशरथोऽभिषेकुं राममैच्छत ॥ कैकेय्योक्तं मम सुतो भवताऽत्राभिषिच्यताम् ॥ ४३ ॥ श्रुत्वेति वचनं राज्ञ्या नृप तिर्मोहमागतः ॥ पुनस्तदागतस्वान्तो विललाप पुनः पुनः ॥ ४४ ॥ कैकेयी राममानीय वनं गन्तुमुवाच ह ॥ रामो मातृवचः श्रुत्वा सीतया लक्ष्मणेन च ॥ ४५ ॥ सार्द्धं वनमितो वासं कान्तारमकरोद्द्रुशम् ॥ रामे गते दशरथः शोकेन प्राणमत्यजत् ॥ ॥ ४६ ॥ रामोऽप्यथ कियत्कालं त्रिकूटेऽद्रावुवास वै ॥ दण्डकारण्यमासाद्य स्थितस्तस्मिन्सुखेन च ॥ ४७ ॥ आगत्य राक्षसी शूर्पणखा स्त्री दिव्यरूपिणी ॥ वत्र रामं तु चावर्ज्जी तेन क्षिप्ताऽथ लक्ष्मणम् ॥ ४८ ॥

के लिये कहा,रामचंद्रजी माताके वचनोंको सुनकर सीता और लक्ष्मणजीके साथ॥४५॥वहांसे उसी समय वन जाते हुए॥रामचंद्रजीको वनके चले जानेपर राजा दशरथजीने शोकित हो अपने प्राणोंको त्याग दिया॥४६॥इसके पीछे रामचंद्रने कुछ समयतक चित्रकूट पर्वतपर निवास किया पीछे दंडकवनमें जाकर आनंदके साथ रहने लगे ॥४७॥ उसी अवसरमें शूर्पणखानामकी राक्षसी सुन्दर स्त्रीका स्वरूप बनाकर इनके पास आकर कहने लगी,कि मैं

रामचंद्रको वरनेकी इच्छा करती हूं रामचंद्रके कहनेसे फिर वह लक्ष्मणजीके निकट गयी॥४८॥तब लक्ष्मणजीने उसका अत्यन्त निरादर कर रामचंद्रके संकेतको पाकर उसके नाक और कान दोनोंको काट लिया ॥ ४९ ॥ राक्षसीने देखा कि मैं अत्यन्त ही कुरूपा हो गयी, तो वह उसी समय अपने भाईके निकट जाकर समस्त वृत्तान्त कहने लगी, यह सुनकर वह खर दूषण त्रिशिर अत्यन्त भारी राक्षसोंकी सेनाको अपने साथ ले ॥ ५० ॥ रामचंद्रसे युद्ध करनेके लिये चले; रामचंद्रके साथ युद्ध करनेमें सभी राक्षस मारे गये उसकी चौदह हजार अत्यन्त बलवान सेना थी, सभीने रामचंद्रके अस्त्रसे

गता तेनापि च भृशमवज्ञाता च राक्षसी ॥ प्राप्ता रामनियोगेन नासिकाकर्णकृन्तनम् ॥ ४९ ॥ सा गत्वा दूषणं रक्षोऽब्रवीन्निजविरूपणम् ॥ खरत्रिशिरआद्यास्ते प्रययुः सैन्यसंयुताः ॥५०॥ रामेण युयुधुस्तेन हताः सर्वेऽपि राक्षसाः ॥ चतुर्दशसहस्रेण सैन्येन महता वृताः ॥ ५१ ॥ पुनः शूर्पणखा लङ्कां गत्वा रावणमब्रवीत् ॥ धिक्ते रक्षोऽधिराजत्वं धिग्बलं धिक्पराक्रमम् ॥ ॥ ५२॥ यन्मेऽधिकारिणो नष्टा जीवताऽपि न रक्षिताः॥ श्रुत्वेति वाक्यं तस्याश्च गतो मारीचसन्निधिम् ॥ ५३ ॥ गत्वाऽब्धिकूले मारीचमुवाच स तु रावणः ॥ मानुषेणैव रामेण हता मम निशाचराः ॥ ५४ ॥

प्राणोंको त्यागा ॥ ५१ ॥ इसके पीछे वह शूर्पणखा लंकाको गयी और रावणसे जाकर बोली कि हे राक्षसराज ! तुम्हारे स्वामित्व, बल और पराक्रमको धिक्कार है ॥ ५२ ॥ मेरे अधिकारमें जितने राक्षस थे सो सभी मारे गये, तुम्हारे जीवित रहते हुए भी तुमसे उनकी रक्षा न हो सकी, उसके ऐसे वचन सुनकर राक्षसपति रावण उसी समय मारीचके निकट गया ॥५३॥ और समुद्रके तटपर जाकर मारीचसे बोला कि देखो एक रामचंद्र मनुष्यने हमारे

अधिकारी राक्षसोंको मार डाला हैं ॥ ५४ ॥ उनके साथमें उनकी स्त्री जो वनमें रहती है वह अत्यन्त ही सुन्दरी है; मैं राम और लक्ष्मण दोनोंका ही संहार करूंगा और फिर उसकी स्त्रीको ले आऊंगा ॥ ५५ ॥ तुम मेरे साथ चलकर मेरे कार्यको साधन करो, मारीच रावणकी यह वार्ता सुनकर बोला कि हे राक्षसराज ! आप भाई बांधवों सहित अपना विनाश न कीजिये ॥ ५६ ॥ जिसको संसारमें कोई प्राणी भी नहीं मार सकता है उसी रामचंद्रके मारनेको आपने प्रतिज्ञा की है. प्रथम एक समय महर्षि विश्वामित्रके यज्ञमें मैं गया था और मैं

वने तेन सहैवास्ते भार्या चातीवसुन्दरी ॥ हत्वा रामं लक्ष्मणं च तद्भार्य्यामाहरे ततः ॥ ५५ ॥ चल त्वं च मया सार्द्धं मत्कार्य साधयाशु भोः ॥ मारीच उवाच ॥ राक्षसाधिप मागास्त्वं विनाशं सह बान्धवैः ॥ ५६ ॥ किं राममिच्छसे हन्तुम वध्यं सर्वजन्तुभिः ॥ पूर्वं च विश्वामित्रस्य यज्ञविघ्नं करोम्यहम् ॥५७॥ गतस्तत्रैव रामेण बाणेनैकेन ताडितः ॥ ततो राम शरेणैव शुष्कपत्रमिवागतः ॥५८॥ पतितोऽब्धितटे चात्र विसंज्ञो भृशमूर्च्छितः ॥ लब्धसंज्ञः कथञ्चिद्वै लोकयन्विदिशो दिशः॥ ॥ ५९ ॥ सर्वत्र रामं चापश्यं धनुर्बाणधरं पुरः ॥ त्रस्तोऽभवं भृशं तत्र क्व यामीति व्यचिन्तयम् ॥ ६० ॥

उस यज्ञमें अनेक प्रकारके विघ्न करने लगा ॥५७॥ रामचंद्रके एक ही अस्त्रके प्रयोगसे मैं उनसे परास्त हो गया, सूखे हुए पत्तेके समान उसी समय इस सागरके किनारे आकर गिर पड़ा ॥ ५८ ॥ मुझे मूर्छा आ गयी और कुछ भी चैतन्यता न रही, फिर कुछ देरके पीछे चैतन्यता हुई तो दशों दिशाओंको देखने लगा ॥ ५९ ॥ तब दशों दिशाओंमें धनुषको धारण करनेवाले रामचंद्रको ही देखा; तब मैं कहाँ जाऊं इस प्रकारकी

बड़ी भारी चिन्तामें पड़ा ॥ ६० ॥ अधिक क्या कहूं आप हमारे स्वामी हैं इसी कारणसे मेरे अन्तःकरणमें भय उत्पन्न हुआ है और मैं कंपित होता रहता हूं । अब कुछएक अपने स्वभावको स्थित करके मैं इस स्थानमें अपने समयको बिताने लगा ॥ ६१ ॥ हे राजन् ! इस कारण कहता हूं कि आप अपने वंशकी रक्षा कीजिये, रामचंद्रजीने जिस प्रकारसे खर दूषणादि राक्षसोंके कुलका संहार किया है आपने वह सभी वृत्तान्त शूर्पणखासे सुन लिया है॥६२॥देखो अकेले ही रामचंद्रने युद्धकरके उन सहस्रों राक्षसोंका संहार कर दिया है । सारांश यह है कि, इस

ततः प्रभृति मे त्रासः सुमहानभवत्प्रभो ॥ कथञ्चित्प्रकृतिं प्राप्तस्तिष्ठाम्यत्र विकम्पितः ॥६१॥ ततो ब्रवीम्यहं राजन्रक्षात्मानं स्वकं कुलम् ॥ श्रुतं त्वयैव राक्षस्या यथा ते राक्षसा हताः ॥६२॥ सहस्रैः परिसंख्याता रामेणैकेन संयुगे ॥ न रामेण समः कश्चित्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ६३ ॥ पुरुषोऽस्ति यतो राजन्निवृत्तो भव मे शृणु ॥६४॥ रावण उवाच ॥ जानामि रामं मारीच विश्वेश्वरमजं विभुम् ॥ भूमेर्भारावतारार्थमवतीर्णं जगद्गुरुम् ॥ ६५ ॥ तथाऽपि मे मनो नैव स्थैर्यं याति करोमि किम् ॥ युद्धान्निवृत्तस्त्वद्वाक्यात्तत्पत्नीं हर्तुमाशु वै ॥ ६६ ॥ गमिष्याम्येव तत्र त्वं भूत्वाऽऽश्चर्यमृगो व्रज ॥ लोभयित्वाऽप्युभौ रामलक्ष्मणौ नय दूरतः ॥ ६७ ॥

त्रिलोकीमें स्थावर जंगमात्मक रामचंद्रके बराबर दूसरा दिखाई नहीं देता;इस कारण मेरी बात मान लो इस अनिष्ट चेष्टाको छोड़ दो ॥६३॥६४॥ रावण बोला कि हे मारीच ! मैं यह जानता हूं कि रामचंद्रजी मनुष्य नहीं हैं, वह सर्व शक्तिमान् जगद्गुरु विश्वेश्वर पृथ्वीके भारके उतारनेके लिये उत्पन्न हुए हैं ॥ ६५ ॥ परन्तु तो भी मेरा मन स्थिर नहीं होता है, इस कारण मैं क्या करूं ? तुम्हारे ही कहनेसे युद्ध नहीं करूंगा, अब उनकी भार्याको हरण करनेके लिये अतिशीघ्र जाता हूं ॥ ६६ ॥ तुम विचित्र मृगकी मूर्तिको धारण कर वहांपर जाओ और राम लक्ष्मण

इन दोनोंको लोभके वशीभूत करके बहुत दूरपर ले जाओ ॥६७॥ मैं सूने आश्रममें बैठी हुई सीताजीको निःसन्देह हरण कर लूंगा, यदि तुम मेरी बात न मानोगे तो मैं निःसन्देह तुम्हें मार डालूंगा, इस कारण मेरे कार्यको करो ॥ ६८ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि मारीच रावणके यह वचन सुनकर अपने मन ही मनमें विचारने लगा कि मैं तो रामके हाथसे भी मारा ही जाऊंगा और इधर रावण भी अवश्य मेरा वध कर डालेगा, इससे तो रामचंद्रके ही हाथसे मरना ठीक है और नहीं तो रावणके हाथसे प्राण जायँगे ॥६९॥ यदि इन्हीं दोनोंके हाथसे मृत्यु है तो ऐसा होनेसे रामचन्द्रके ही

शून्याश्रमे स्थितां सीतां हरिष्यामि न संशयः ॥ त्वं वै मम वचो नैव करिष्यसि तदा ध्रुवम् ॥ त्वां हनिष्ये न सन्देहस्ततो मत्कार्यमाचर॥६८॥श्रीभगवानुवाच॥श्रुत्वा रावणवाक्यं स मनसीदमचिन्तयत् ॥ रामादपि च मर्तव्यं मर्तव्यं रावणादपि ॥ ॥६९॥उभयोर्यदि मर्तव्यं वरं रामो न रावणः ॥ तदहं यामि तत्पार्श्वं यद्भाव्यं तद्भविष्यति॥७०॥विचार्येत्थं प्रचलितो भूत्वा दिव्यमृगोऽप्यसौ॥रामाश्रममनुप्राप्तस्तत्र सीतां व्यलोकयत्॥७१॥सीतापि राममाहेदं लक्ष्मणं च वचो भृशम्॥हत्वा मृगमिहानीय स्थाप्यतामाश्रमे मम॥७२॥ततो रामोऽब्रवीत्सीतां मायावी राक्षसो ह्ययम् ॥ स्वकार्यार्थमिहायातो निवृत्ता भव मानिनि॥७३॥

हाथसे मृत्युका होना उत्तम है रावणके हाथसे ठीक नहीं, इस कारण रामचंद्रके सामने जाना ठीक है, जो होना है वह अवश्य ही होगा ॥७०॥ मारीच यह विचार कर सुंदर मृगका स्वरूप धारण कर रामके आश्रमके निकट पहुँचा और सीताको देखने लगा ॥७१॥ सीताजी भी उसको देखते ही रामचंद्र और लक्ष्मणजीसे कहने लगीं कि इस मृगको यहाँ लाकर मेरे आश्रममें रक्खो ॥७२॥ तब रामचंद्रजी बोले कि हे सीते ! यह मृग नहीं है कोई मायाका जाननेवाला राक्षस अपने कार्यको सिद्ध करनेके निमित्त यहां आया है, इस कारण हे मानिनि ! तुम इस आशाको छोड़ दो॥७३॥

श्रीरामचंद्रजीके ऐसा कहनेपर भी सीताजीने मृगके देखनेके आग्रहको न छोड़ा, तब फिर रामचंद्र लक्ष्मणजीसे कहने लगे कि हे भ्रातः! तुम यहां सावधानीसे स्थिर रहकर ॥७४॥ सीताजीकी रक्षा करते रहना. मैं तेजको प्रकाश करता हुआ मृगके लानेके लिये जाता हूं; यह कहकर श्रीराम चंद्रजी चले गये. इधर वह मृगरूपी राक्षस वहांसे कितनी ही दूर जाकर व्याकुलताके साथ रामचंद्रजीके समान स्वरको बना लक्ष्मणजीको पुकारता हुआ कहने लगा ॥७५॥ कि हे भाई ! इस समय मेरी रक्षा करो रक्षा करो यह राक्षस मुझको निश्चय ही मारे डालता है । सीताजी श्रीरामच

तथापि नाग्रहं सीता तत्याज मृगदर्शने ॥ रामो लक्ष्मणमाहेदं सौमित्रे त्वमिह स्थितः ॥ ७४ ॥ रक्ष सीतामहं यामि मृगमानेतुमोजसा ॥ रक्षो गत्वा कियद्दूरं रामवाचाऽऽह लक्ष्मणम् ॥७५॥ भ्रातर्मां रक्षरक्षेति राक्षसो मां निहन्ति वै ॥ श्रुत्वा रामवचः सीता लक्ष्मणं प्राह गच्छतु ॥७६॥ भवान्भ्रातुर्हि रक्षार्थं स च सीतामुवाच ह ॥ को हि रामं क्षमो हन्तुं त्रैलोक्ये सचराचरे ॥७७॥ तिष्ठेदानीं स्थिरा भूत्वा रामो हत्वा निशाचरम् ॥ आयास्यति ध्रुवं सीते चिन्तां कर्त्तुं हि नार्हसि ॥ ७८ ॥

न्द्रजीके ऐसे वचन सुनकर कहने लगीं कि हे लक्ष्मण ! तुम अपने भ्राताकी रक्षाके लिये शीघ्र जाओ ॥७६॥ तब लक्ष्मणजी जानकीजीसे बोले कि हे देवि ! स्थावर जंगममय त्रिलोकीमें ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं है जो रामचन्द्रको मार सके ॥७७॥ इस कारण आप धीरजको धारण किये स्थिर होकर बैठी रहिये, रामचन्द्रजी इस समय मृगको मारकर निश्चय ही आश्रमको आते होंगे, आप किसी प्रकारकी चिंता न कीजिये ॥ ७८ ॥

लक्ष्मणजीके इस प्रकार वचनोंको सुनकर सीताजी अत्यन्त कठोर वचनोंसे उनसे कहने लगीं (१) (कि हे लक्ष्मण! मैं तुम्हारे दुष्ट अभिप्रायको भले प्रकार जान गयी हूं) तब लक्ष्मणजी सीताजीके ऐसे मर्म भेदी वचन सुनकर क्रोधित हो रामचन्द्रके देखनेके लिये उसी समय चल दिये॥७९॥रावण इस अवसरको पाकर पाखण्डीका वेष बनाकर सीताजीको हरण कर विमानमें बैठा अपनी नगरी लंकाको ले चला॥८०॥इधर श्रीरामचन्द्र भी मारीचको

श्रुत्वा सौमित्रिवाक्यं सा तमुवाच खरं भृशम्॥ स च क्रुद्धः प्रचलितो रामं द्रष्टुं त्वरान्वितः॥७९॥ लब्ध्वाऽन्तरं रावणोऽपि कृत्वा पाखण्डवेषकम्॥जहार सीतामारोप्य विमाने स्वपुरीं ययौ॥८०॥रामोऽथ हत्वा मारीचं निवृत्तो लक्ष्मणं पथि॥दृष्ट्वा निर्भर्त्सयामास ततः स्वाश्रममागतः॥८१॥सीतामसौ च नापश्यज्ज्ञात्वा रावणकर्म तत्॥हरिभिश्च समं प्रायात्कूलं लवणवारिधेः॥८२॥

मारकर अपने आश्रमको लौटे तो मार्गमें ही लक्ष्मणजीको आता हुआ देखकर उन्हें भर्त्सना करने लगे, इसके पीछे अपने आश्रमको आये॥८१॥ और सीताजीको न देख तब समझ गये कि यह कार्य रावणने ही किया है तब हरिणको साथ लिये हुए समुद्रके किनारेपर पहुँचे ॥ ८२ ॥

---

(१) "तमुवाच ततस्तत्र क्षुभिता जनकात्मजा। सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि शत्रुवत्॥ यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपद्यसे। इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते॥ लोभात्तु मत्कृते नूनं नानुगच्छसि राघवम्। व्यसनं ते प्रियं मन्ये स्नेहो भ्रातरि नास्ति ते॥ तेन तिष्ठसि विस्रब्धं तमपश्यन्महाद्युतिम्॥"

तब सीताजी अत्यन्त क्षुभित होकर लक्ष्मणजीसे बोलीं कि, हे लक्ष्मण! तुम रामचन्द्रजीके मित्ररूपी शत्रु हो। देखो तुम इस प्रकारकी अवस्थामें भी उनकी रक्षा करनेके लिये नहीं जाते इससे ज्ञात होता है कि तुम मेरे लेनेके निमित्त रामचन्द्रजीके विनाशकी कामना करते हो। निश्चय ही हमारे प्रति लुभानेसे तुम उनके समीप नहीं जाते। इसी कारणसे रामचन्द्रजीकी यह विपद् तुमको प्रिय लगती है और तुमको उनमें कुछ स्नेह नहीं है, इसी कारण तुम महाद्युतिमान् रामचन्द्रजीको न देखकर भी निश्चिन्त बैठे हो॥ वा० रा० अ० का० ४५ स० श्लो० ५ से ८ तक.

वहांपर वानरोंकी सहायतासे समुद्रका पुल बांधा और फिर उसके पार होकर राक्षसराज रावणसे पाली हुई लंकापुरीको चले॥८३॥वहां जाकर वानरोंकी सहायतासे राक्षसोंके साथ युद्ध किया,कुम्भकर्ण, रावण और समस्त राक्षसोंको मारकर॥८४॥विभीषणको लंकाके चराचरका राज्य दे सीताजीको साथ ले अपनी नगरी अयोध्यापुरीको आये ॥८५॥ और भाइयोंके साथ मिलकर पूर्ण चन्द्रमाके समान राज्य करने लगे,इस प्रकारसे मैंने राजा

सेतुं बबन्ध गिरिभिरानीतैर्वानरैर्वनात्॥तेन सिन्धुं समुत्तीर्य्य गत्वा रावणपालिताम् ॥ ८३ ॥ लङ्कां तत्र राक्षसैश्च युयुधे सह वानरैः॥कुम्भकर्णं रावणं च हत्वाऽन्यानपि राक्षसान् ॥८४॥ विभीषणं राक्षसानामधिपं स चकार तम् ॥ निन्ये सीतां ततो रामः प्राप्तोऽयोध्यापुरीं स्वकाम्॥८५॥भ्रातृभिः सहितो रेजे पूर्णचन्द्र इवानिशम् ॥ इत्थं दशरथस्याहं पुत्रो भूत्वा ददौ सुखम्॥ ॥८६॥ तथा तवापि सन्दातुं वाञ्छितं वरमुत्तमम् ॥ पुत्रत्वमागतस्त्वद्य दास्ये सुखमनुत्तमम् ॥ ८७ ॥ त्वत्प्रतीत्यै सर्वमेतदुक्तं ...तं च दर्शनम् ॥ व्रजे वृन्दावने चाहं क्रीडिष्ये चिरमप्यहः ॥ ८८ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा नन्दमाभाष्य तत्रैवान्त र्हितो विभुः ॥ निद्राभङ्गे तदा नन्दो मनसीदमचिन्तयत् ॥ ८९ ॥

दशरथजीके यहां पुत्ररूपसे जन्म लिया और सभीके सुखको बढ़ाया ॥८६॥ अब तुम्हारे घरमें तुम्हारी अभिलाषाको पूर्ण करनेके लिये पुत्ररूप हो उत्पन्न हुआ हूँ,निश्चय ही मैं तुमको अत्युत्तम सुख दूँगा ॥८७॥ तुम्हारी प्रतीतिके लिये ही व्रजमें और वृन्दावन आदि वनोंमें चिरकालतक विहार करूंगा ॥८८॥ नारदजी बोले कि यह कहकर भगवान् नन्दजीको आमन्त्रण करके उस स्थानसे अन्तर्धान हो गये,जब नन्दजीकी नींद टूटी तो

वह अपने मन ही मनमें विचार करने लगे ॥ ८९ ॥ कि मैंने यह कैसा आश्चर्ययुक्त स्वप्न देखा है और रामचंद्रकी परमपुण्यकी देनेवाली कथाको आद्योपान्त सुना ॥९०॥ तब क्या महादेव, ब्रह्मा और इंद्रादि देवता भी जिनकी भलीप्रकारसे पूजा करते हैं उन्हीं नारायणने मेरे पुत्ररूप होकर जन्म लिया है॥९१॥तब तो मेरे भाग्यकी सीमा नहीं है,मैं कृतार्थ हो गया हूं इसमें कुछ भी संदेह नहीं,जो विष्णुने मेरे पुत्ररूप होकर जन्म लिया है तब त्रिलोकीमें भी मेरे समान कोई मनुष्य भाग्यवान् नहीं है॥९२॥नंदजी इस प्रकारसे स्वप्नमें देखे हुए विषयोंको चिंता करने लगे और जो रात्रि

आश्चर्यमेतत्स्वप्ने मे दृष्टं रामकथाः शुभाः ॥ श्रुत्वा क्रमेण किमसौ विष्णुर्जातो ममात्मजः ॥ ९० ॥ हरिर्ब्रह्म सुरेन्द्रादिदेवैरपि सुपूजितः ॥ स कथं पुत्रतामद्य ममायातस्त्रिलोकपः ॥ ९१ ॥ वत्सो मे एष जातश्च मम भाग्यं च उत्तमम् ॥ कृतार्थोऽहं न सन्देहो यद्विष्णुर्मे सुतोऽभवत् ॥ कोऽन्यो धन्यतरो मत्तः त्रिषु लोकेषु वर्त्तते ॥ ९२ ॥ इत्थं नन्दः स्वप्नदृष्टं विचिन्त्य रात्रेः शेषं जागरणेव नीत्वा ॥ प्रातर्हृष्टो गोपगोपीषु चोक्त्वा ददौ दानं श्रद्धया स द्विजेभ्यः ॥ ९३ ॥ इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे वैयासिके नारदशौनकसंवादे कृष्णजन्मानुकीर्त्तने नन्ददृष्टस्वप्नवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ नारद उवाच ॥ एवं दिनेष्वतीतेषु दशस्वपि महासुरः ॥ कंसः स्वप्नं व्रजे गन्तुं दृष्ट्वा प्राह बकानुजाम् ॥ १ ॥

शेष रही थी सो जागते २ ही बिताई औरप्रातःकाल ही उठ आनंदित हो गोप और गोपियोंके साथ बैठकर यह समस्त वृत्तांत उनसे कहने लगे और फिर श्रद्धाके साथ ब्राह्मणोंको दान देने लगे ॥ ९३ ॥ इति श्रीआदिपुराणे नारदशौनकसंवादे भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

नारदजी बोले कि इस प्रकारसे दश दिन व्यतीत हुए, तब महाअसुर कंसने स्वप्न देखा तब भयभीत हो बकासुरकी भगिनी पूतनाको बुलाया॥१॥

और उससे कहा कि हे भद्रे ! तुम जिस प्रकारसे हमारे मन और नेत्रोंको आनन्दकी देनेवाली हो उसी प्रकारसे सबसे अधिक हमारे कार्यको सिद्ध करती हो; आज मैंने स्वप्नमें कालरूपधारी एक बालकको देखा है ॥ २ ॥ और वह बालक मुझसे कहता है कि मैं तुम्हें निश्चय ही मार डालूंगा इसमें कुछ भी संदेह नहीं. हे मूढ ! मैं ग्यारहवें वर्षमें आकर इस कार्यको सिद्ध करूंगा, अब मैं व्रजमें वास करता हूं ॥ ३ ॥ हे भद्रे ! स्वप्नकी वार्ता प्रायः मिथ्या होती है और कदाचित् सत्य भी हो,इस कारण तुमको व्रजवासियोंके बालकोंकी हत्या करनी होगी ॥४॥ तुम मार्गमें

पूतने त्वं सदैवास्मत्प्रियं कर्त्तुं चिकीर्षसि ॥ अद्य स्वप्ने मया दृष्टो बालकः कालरूपवान् ॥२॥ तेन चोक्तमिदं भद्रे हनिष्ये त्वां न संशयः ॥ वर्षे चैकादशे प्राप्ते मूढ तिष्ठाम्यहं व्रजे ॥३॥ स्वप्नवार्ता हि मिथ्यैव कदाचित्सत्यतां व्रजेत् ॥ अतस्त्वया ह्यनुष्ठेयं व्रजे बालविहिंसनम् ॥४॥ त्वद्दृष्टिपथमायाता नहि जीवन्ति बालकाः ॥ तत्र जीवति कश्चिच्चेत्स हन्तव्यः प्रयत्नतः ॥ ॥ ५ ॥ बलेनच्छलरोपेण हन्तव्यो निश्चयेन च ॥ धर्म्मोऽस्ति नहि दोषोऽयं मम चाज्ञामुरीकुरु ॥ ६ ॥ अतो गत्वा व्रजे बाला निहन्तव्या न संशयः ॥ तुभ्यं दास्यामि रत्नानि राजभोगमनुत्तमम् ॥ ७ ॥

जिस बालकको देखोगी वह तुम्हारी दृष्टिके बलसे उसी समय अपने प्राणोंको त्याग देगा,तो भी यदि कोई जीवित रह जाय तो उसको यत्नके साथ मार डालना ॥५॥ छल, बल, रोष अथवा जिस प्रकारसे हो उसको अवश्य ही मार डालना चाहिये, इसमें धर्मके अतिरिक्त पाप नहीं है ॥ ६ ॥ इसलिये तुम व्रजमें जाकर निःसन्देह बालकोंकी हत्या करो,मैं तुमको विविध प्रकारके रत्न और अतिउत्तम राजाओंके समान सुखको दूंगा ॥ ७ ॥

बालकोंको मारनेवाली पूतना कंसके यह वचन सुनकर शंकित हो नीचेको मुख किये हुए कंसके निकट जाकर कहने लगी ॥ ८ ॥ कि हे राजन्! मैंने आज रात्रिमें एक बड़ा भयानक स्वप्न देखा है सो कहती हूं उसको सुनो पीछे आपके कार्यको सिद्ध करूंगी॥ ९॥ हे राजन्! सहसा मेरे स्तनोंमें पीड़ा उत्पन्न हुई पीछे प्रेतोंने आकर मुझे पकड़ लिया, मैं नग्न थी और जपाकुसुमके फूलोंकी मालाको पहरे हुए खुले बालोंसे तेलमें भीगे हुए शरीरसे दक्षिण दिशाको जाने लगी ॥ १०॥ उस समय कोई बालक मेरी गोदीमें था और वह मेरे स्तनोंको पी रहा था, मैं अत्यन्त पीडित और व्याकुल होकर मूर्च्छित हो

इति श्रुत्वा वचः प्राह पूतना बालघातिनी ॥ कंसमाभाष्य देवारिमधोमुखविशङ्किता ॥८॥ दुर्निमित्तानि दृष्टानि रात्रौ स्वप्ने मया नृप ॥ कथयामि शृणुष्व त्वं करिष्ये वचनं तव ॥ ९ ॥ स्तनप्रदेशपीडा मे अकस्मादुत्थिता नृप ॥ प्रेतैरालिङ्गिता नग्ना जपाकुसुममालिनी ॥ तैलाभ्यक्ता दक्षिणाशां व्रजन्ती मुक्तमूर्द्धजा ॥ १० ॥ मम क्रोडस्थितः कश्चिद्बालो मे पीतवान्स्तनम् ॥ निर्पीडिताऽहं नृपते पतिता गतजीविका ॥ ११ ॥ उत्थिता नृप गायन्ती हसन्ती नृत्यती भृशम् ॥ धावन्ती पतिता कूपे परिश्रान्तासृगासवम् ॥ १२ ॥ प्रपिबन्ती निमग्ना च शैलाग्रपतिता भुवि ॥ भयाद्विगतनिद्राहं शोचन्ती पुनरुत्थिता ॥ ॥ १३ ॥ क्षणमात्रं न सुप्ता च स्वप्नदृष्टार्थशङ्कया ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्याः कंसो वचनमब्रवीत् ॥ १४ ॥

पृथ्वीपर गिर पड़ी॥ ११॥ इसके उपरान्त फिर उठी तो कभी गाने, कभी हँसने, कभी नाचने और कभी दौड़ने लगी इसी अवसरमें कुएँमें गिर पड़ी इसके पीछे थकित होकर रुधिरयुक्त मदिराको॥ १२॥ पीते २ कुएँमें डूब गयी मानो पर्वतके ऊपरसे पृथ्वीके नीचे गिर गयी, भयके कारण निद्रा जाती रही, अब जागी तो चिन्ता करती २ उठी और शोक करने लगी ॥ १३॥ फिर क्षणमात्रको भी मैंने शयन नहीं किया, स्वप्नके देखनेसे अत्यन्त भयभीत हो

रही हूं, कंस यह वचन सुनकर पूतनासे बोला ॥ १४ ॥ कि हे पूतने ! मनुष्योंकी बातको दूर रक्खो देवताओंसे भी तुमको भय नहीं है इस कारण बालकके हाथसे तुम्हारी मृत्युका होना कभी संभव नहीं ॥ १५ ॥ और स्वप्नमें जो कुछ दिखायी देता है वह कुछ भी कभी सत्य नहीं होता, देखो मैंने स्वप्नमें अनेक प्रकारक अनिष्ट देखे और वसुदेवजीके पुत्र उत्पन्न हुआ है ॥ १६ ॥ और उसी (वसुदेवजीके पुत्र)के हाथसे अपनी मृत्युको देखकर भयभीत हो अतिशीघ्र उठकर व्याकुलताके साथ वसुदेवजीके स्थानको गया ॥ १७ ॥ और वहां जाकर देखा कि देवकीकी शय्यापर एक कन्या शयन कर

कंस उवाच ॥ कैतवे ते भयं नास्ति देवैश्च किमु मानुषात् ॥ तत्रापि बालकेभ्यस्ते मरणं भविता नहि ॥ १५ ॥ नहि स्वप्नगतं किञ्चित्सत्यं भवितुमर्हति ॥ स्वप्ने दृष्टान्यरिष्टानि वसुदेवसुतो भवेत् ॥ १६ ॥ तेनैवात्मवधं चैव दृष्ट्वा भीतवदुत्थितः ॥ गतोऽहमाकुलतरो वसुदेवनिकेतनम् ॥ १७ ॥ तत्र दृष्टा मया कन्या देवक्याङ्कगता हि सा ॥ बलाद्गृहीत्वा तां बालां शिलाया मक्षिपं तदा ॥ १८ ॥ तावदुत्पत्य मद्धस्ताद्गत्वाऽऽकाशतलेऽब्रवीत् ॥ किं मया हतया मन्द स जातः कुत्र ते रिपुः ॥ १९ ॥ त्वां हनिष्यत्यवश्यं स नात्र कार्य्या विचारणा ॥ श्रुत्वेत्थं वचनं तस्या ह्यभवद्विपुलं भयम् ॥ २० ॥ अचिन्त्यरूपमेवान्ते रात्रौ स्वप्ने विलोकितम् ॥ यथा तथोक्तं कैतव्ये तत्कार्य्यं त्वं ततः कुरु ॥ २१ ॥

रही है तो उसी समय उसको बलपूर्वक ले ज्यों ही ॥ १८ ॥ शिलाके ऊपर पटकना चाहा कि तभी वह कन्या मेरे हाथसे अतिवेगके साथ छूटकर आकाशमें जाकर यह कहने लगी कि, अरे मूढ़! तू मुझे क्यों मारता है मेरे मारनेसे तुझे क्या लाभ होगा तेरा शत्रु किसी स्थानमें जन्म ले चुका है ॥ १९ ॥ वह तुझे अवश्य ही मारेगा, इस विषयमें कुछ भी सन्देह नहीं, उसकी यह वार्ता सुनकर मुझे अत्यन्त ही भय हुआ ॥ २० ॥ हे पूतने ! स्वप्नमें जिस प्रकारके

अनिष्ट मैंने देखे हैं वह तुमसे कहे अब तुम मेरे कार्यको सिद्ध करो॥२१॥मेरे स्वप्न सत्य होते हुए दिखायी देते हैं,किसी प्रकारसे भी वह विपरीत नहीं होवे,मैंने जिस कालस्वरूपधारी बालकको स्वप्नमें देखा था,उसीको तुमसे कहता ॥ २२ ॥ कैतवी नामवाली भयंकर प्रकृतिकी जो निशाचरी मेरी रानीकी अत्यंत ही प्यारी थी,तुमने उसीके गर्भमें जन्म लिया है,तुमको देखते ही वा तुम्हारे नामको सुनते ही संपूर्ण लोग भयभीत होते हैं॥२३॥ तुम मेरे इस कठिन कार्यको सिद्ध कर सकोगी इस विषयमें मुझे पूर्ण विश्वास है इस कारण मेरे कार्यको सिद्ध करनेके लिये तुम अतिशीघ्र व्रजमंडलमें

मम स्वप्नः सत्य इव प्रतिभाति न चान्यथा ॥ बालः कालस्वरूपेण दृष्टस्ते कथितं मया ॥ २२ ॥ मम पत्न्याः प्रिया घोरा कैतवी राक्षसी मता ॥ तस्याः पुत्री पूतना त्वं जाता लोकभयङ्करी ॥ २३ ॥ त्वयि मे त्वतिविश्वासः कार्य्यगौरवसाधने ॥ अतो गच्छस्व घोषे वै मम कार्य्यपरायणा ॥ २४ ॥ पूतनोवाच ॥ भगिनी मे महाराज ख्याता नाम्ना वृकोदरी ॥ सा बुद्धि बलसंयुक्ता तां दृष्ट्वा गम्यते मया ॥२५॥ अहं व्रजं गमिष्यामि भाव्यं यद्भवति ध्रुवम् ॥ इत्युक्त्वा पूतना कंसं जगाम भगिनीं प्रति ॥ २६ ॥ पप्रच्छ तां व्रजं यामि बालकाघातहेतवे ॥ अद्य स्वप्नेऽशुभो दृष्टः कंसो मां प्रेषयत्युत ॥ २७ ॥

जाओ अब विलम्ब करनेका समय नहीं है,मेरा मन अत्यन्त ही व्याकुल हो रहा है(इससे जाना जाता है कि शत्रु इसी मुहूर्तमें मुझे मार डालेगा)॥२४॥ पूतना बोली कि हे महाराज!मेरी बहन वृकोदरी है उसके नामको सभी जानते और सबने सुना है,वह जैसी बुद्धिमती है उसी प्रकारसे उसके बलकी भी सीमा नहीं है॥२५॥मैं उसके पास जाकर फिर व्रजको जाऊंगी,ऐसा होनेसे यह निश्चय ही होगा, पूतना राजा कंससे यह कहकर अपनी बहनके पासको गयी॥२६॥और उससे आदरके साथ पूछने लगी कि मैं व्रजमें बालकोंके मारनेके लिये जाती हूं, राजा कंसने आज बुरे स्वप्न देखे हैं

इस कारण वह मुझे भेजते हैं ॥ २७ ॥ अब इस विषयमें क्या कर्त्तव्य है सो विचार करके कहो, मैंने समस्त वृत्तान्त तुमसे कह दिया, यह वचन सुन वृकोदरी पूतनासे बोली ॥ २८ ॥ कि कंस हमारे राजा हैं उन्होंने जो कुछ कहा है, उनकी आज्ञाको अवश्य ही पालन करना होगा। कैतव अर्थात् छलना ही हमारा धर्म है इस कारण हमारा दूसरा नाम कैतवी है ॥ २९ ॥ हम लोग सर्वदा ही लोगोंका अनिष्ट करनेके लिये बलवान् होकर विचरण करती हैं, इस लोकमें तो किंचित् भी हमको भय नहीं है ॥ ३० ॥ इस कारण तुम अत्यन्त सुन्दरी स्त्रीका स्वरूप धारण कर अतिशीघ्र व्रजमें जाओ और

किं करोमि वदाशु त्वं विचार्य्य भगिनी मम ॥ श्रुत्वेत्थं पूतनावाक्यं वच आह वृकोदरी ॥ २८ ॥ कंसोऽब्रवीत्तदाज्ञा वै पालनीया प्रयत्नतः ॥ अस्माकं कैतवं धर्मः कैतवख्यातिमाश्रिताः ॥ २९ ॥ विचरामः परद्रोहे कृतयत्नाः सदैव हि ॥ इहलोके कदाचिद्वै नास्माकं भयमण्वपि ॥ ३० ॥ विधाय वेषं सुस्त्रीणां व्रजं गच्छस्व सत्वरम् ॥ स्तनौ गरलसंलिप्तौ कृत्वा मारय बालकान् ॥ ३१ ॥ आग्रहेण परं कार्य्यं कर्त्तव्यं सकलं हि ते ॥ कंसे प्रीते पश्य सर्वाः प्रीताः स्युर्नात्र संशयः ॥ ३२ ॥ भगिन्युदितमाकर्ण्य पूतना पुनरायया ॥ कंसं कंसानुजा नीहि वीटकं मे प्रयच्छ वै ॥ ३३ ॥ हत्वा व्रजशिशूनद्य आगमिष्याम्यहं पुनः ॥ घटोदरो मम पतिः खेलितुं निर्गतो बहिः ॥ ३४ ॥

अपने स्तनोंमें विष लगाय बालकोंको पिला पिला कर मार डालो ॥ ३१ ॥ उत्साहके साथ दूसरोंका कार्य करना ही परम कर्त्तव्य है, कंस हमारे राजा हैं उनके प्रसन्न होनेसे सभीकी प्रसन्नता होगी इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥ ३२ ॥ अपनी भगिनीके यह वचन सुनकर पूतना लौटकर कंसके पास आयी और कहने लगी कि मुझे बिदाईका बीड़ा दो ॥ ३३ ॥ मैं शीघ्र जाकर व्रजवासियोंके बालकोंको मारूंगी और फिर लौटकर यहां

आऊंगी, मेरे पति घटोदर खेलनेके लिये बाहर गये हैं॥३४॥जबतक वह खेलकर आवेंगे तभीतक मैं भी लौट आऊंगी इस प्रकार पूतनाके वचन सुन कंसने उसे बीड़ा दिया॥३५॥ प्रसन्नताके साथ बहुतसा आदर सम्मान कर पूतनाको व्रजमें भेजने लगा ॥३६॥ बालकोंको मारनेवाली पूतनाके जानेके समय मार्गमें उसको अनेक प्रकारके अनिष्ट दिखायी देने लगे,उसका दक्षिण अंग कांपने लगा, उसी समय किसी स्त्रीने पूतनाके निकट आकर कहा॥३७॥कि मैं पहले गयी थी,इस स्त्रीका हृदय अत्यन्त ही व्याकुल था,शिरके बाल बिखरे और खुले हुए थे, इस अवस्थासे वह निरन्तर

क्रीडित्वा यावदायाति तावदागमनं मम ॥ इति श्रुत्वा वचः कंसो ददौ तस्यै सुवीटकम्॥३५॥ बहुमानेन संहृष्टः प्रेषयामास गोकुलम्॥यदा प्रचलिता योषा पूतना बालघातिनी ॥३६॥ अरिष्टमभवच्चास्या दक्षिणाङ्गे च वेपथुः ॥ काचित्संमुखमागत्य पूतनाया न्यवेदयत् ॥३७॥ पतिता व्यग्रहृदया रुदती मुक्तमूर्द्धजा॥श्रुत्वाऽथ पतिताऽशं सा पपात धरणीतले॥३८॥मुमूर्च्छ चेष्टामापन्ना रुरोद च भृशं ततः ॥ उत्थिता चलिता दृष्टा स्खलिता पतिताऽभवत्॥३९॥ विवस्त्रा शोकमूढा च दीना मुक्तशिरोरुहा॥ रुदत्येव व्रजं गन्तुं नाशकद्दुःखसंप्लुता ॥ ४० ॥ नो लङ्घनीया राजाज्ञा चेति हा सा गता त्वरा ॥ अगणय्य च दुःखानि प्राप्ताऽऽसीद्व्रजसन्निधिम् ॥ ४१ ॥

रुदन कर रही है,पूतना उसके यह वचन सुनकर उसी समय पृथ्वीपर गिर पड़ी॥३८॥और वह संज्ञाहीन हो गयी,इसके पीछे फिर रोते रोते उठी और जैसे ही वह चलनेको हुई कि उसी समय पृथ्वीपर पुनः गिर पड़ी॥३९॥उसके वस्त्र इधर उधरको पड़े हुए थे,उसके बाल खुले हुए थे और हृदय शोकित था, अत्यन्त हीन दशामें थी,उस दुःखको पाकर वह रुदन करने लगी॥४०॥राजाकी आज्ञा किसी प्रकारसे भी उल्लंघन करनी योग्य नहीं है,इस

कारण वह अतिशीघ्रतासे इन समस्त क्लेशोंकी गिनती न करके व्रजमें गयी ॥४१॥ वहां जाकर जिससे सम्पूर्ण व्रजवासी एकबार ही मोहित हो सकें ऐसा सुन्दर स्वरूप धारण किया, व्रजकी स्त्रियें ऐसी सुन्दर और मनोहर मूर्तिको देखते ही मोहित हो गयीं ॥४२॥ वह पूतना उसी वेषसे सबके मनको हरण करती हुई व्रजवासियोंके घरोंमें जाने लगी, किसीने उसको किसी प्रकारसे भी नहीं रोका ॥४३॥ बरन् सभी उससे अपना अत्यन्त सौभाग्य मानकर उसको अपने२ घरोंमें ले जाने लगे और स्वयं रोहिणी और यशोदाजी भी उसके रूपको देखकर ॥४४॥ मोहित होगयीं और उसको किसी

विधाय रूपं परमं घोषलोकविमोहनम् ॥ विलोक्य पूतनारूपं मुमुहुस्ते व्रजौकसः ॥ ४२ ॥ मनो हरन्ती सर्वेषां विशन्ती निजमन्दिरम् ॥ न वारिता सा केनापि मन्यमानेन तां रमाम् ॥४३॥ स्वभाग्यमभिलङ्घ्याशु स्वगृहे सा प्रवेशिता॥रोहिणी च यशोदा च तस्या रूपप्रधर्षिते॥४४॥विमोहिते तदा तां तु न वै वारयितुं क्षमे ॥ इति संमोहिताः सर्वे वीक्षमाणा व्रजौकसः ॥ ॥४५॥ पूतना बालरूपं मां मीलिताक्षं तु कैतवैः ॥ अबुद्ध्वा मद्बलं मूढा जगृहे सान्तकं तथा ॥ ४६ ॥ विमोहकैस्तदा वाक्यै रुदन्तं मामथाऽब्रवीत् ॥ त्वं मे प्राणधनं बाल तव मातास्मि साम्प्रतम् ॥ ४७ ॥

प्रकार भी रोकनेको समर्थ न हुई, इस प्रकारसे सभी व्रजवासी लोग उसके सुन्दर स्वरूपकी मनोहरताको देखकर अत्यन्त ही मोहित हो गये ॥४५॥ इसके छल और कपटको कोई भी नहीं जान सका,वह ऐसे सुअवसरको पाकर एकबार ही मुझ बालकरूपधारीको अपनी गोदीमें लेनेके लिये तैयार हुई, उसके मनमें ही यह विचार था,इस कारण उसको समझ न सके, फिर मैं भी तो उसके लिये साक्षात् यमराज हूँ वह मोहके वशीभूत थी,इस कारण मेरे बल और वीर्य व पराक्रमको न जान सकी, उसने सामान्य बालक जानकर मुझे गोदीमें उठा लिया ॥४६॥ मैं कपटके साथ रोने लगा,इसको देखकर

वह दुराचार करनेवाली अत्यंत मीठी मीठी बातें कहकर मुझसे कहने लगी कि हे बालक! तुम हमारे प्राण और धन हो, मैं सब प्रकारसे तुम्हारी माता हुई हूं ॥४७॥ ऐसे कहकर वह मनुष्यघातिनी विषमें लिपटे हुए स्तनको मेरे मुखमें देने लगी, इसके पीछे जब मैंने उसका नहीं पिया तब वह मुझे अपने दुपट्टेसे ढककर बड़े यत्नके साथ आदर और स्नेह कर ॥४८॥ माताके समान मधुर वचन कहते कहते बारंबार मुझे सन्तुष्ट करने लगी, मैंने जब उसके स्तनको न पिया तो उससे उसके कोटिजन्मके किये हुए कर्म क्षणमात्रमें नष्ट हो गये॥४९॥ इसके उपरांत फिर मैं मायाको विस्तार कर अपने

इत्युक्त्वा गरलालिप्तं स्तनं मम मुखे ददौ ॥ यदाऽहं न पिबाम्यङ्क वक्षस्यारोप्य पालितः ॥४८॥ मातुर्वाक्यमिवोक्त्वा च तदा सन्तोषितोऽस्म्यहम् ॥ जन्मकोटिकृतं कर्म्म तस्याः क्षीणमभूत्क्षणात् ॥४९॥ स्तनौ तस्याः कराभ्यां च समाकृष्यापिबं पयः॥ महापापनिमग्ना सा मुक्ताऽभून्मत्प्रसङ्गतः ॥ ५० ॥ विहाय कैतवं रूपं निजरूपं समागता ॥ तेषां व्यापकदेहेन महदासीत्त दद्भुतम् ॥ ५१ ॥ वर्द्धयित्वा निजं देहं महाशब्दमचीकरत् ॥ निपपात धरायां च मृताऽभूदचिरेण सा ॥ ५२ ॥ तस्या देहेन पतता त्रिगव्यूतिद्रुमा लताः ॥ पतितास्तत्स्वनेनापि पूरिताश्च दिशो दश ॥ ५३ ॥

दोनों हाथोंसे उसके स्तनोंको पकड़कर पीनेके लिये तैयार हुआ, राक्षसी उसके वेगको सहन करनेमें असमर्थ होकर ॥५०॥ उसी समय उस कपटवेष को छोड़कर उसने अपनी यथार्थ मूर्त्ति धारण की तब तो उसके महाभयंकर बड़े भारी शरीरसे समस्त व्रजमण्डल व्याप्त हो गया, उसको देखकर सभीको महा आश्चर्य होने लगा ॥५१॥ इसके पीछे वह राक्षसी अपने शरीरको विस्तार कर आकाशमें जाकर आर्त्तस्वरसे चिल्लाने लगी, सम्पूर्ण दिशायें उसकी ध्वनिसे प्रतिध्वनित होकर कम्पायमान होनेलगीं, वह उसी वज्रपातके समान शब्द करती हुई पृथ्वीमें गिर पड़ी और उसी समय परलोकगामिनी हुई,

उसके महाभारी भयंकर शरीरके गिरते हुए आघातसे वृक्ष गिर गये और सम्पूर्ण दिशामंडल भर गया॥५२॥५३॥इस प्रकारसे वह मृतक हुई तब समस्त व्रजवासी उसके आर्त्तनादसे भयभीत हो गये और शंकित हृदयसे उसी समय पृथ्वीपर गिर पड़े ॥५४॥बालोंको बखेरे हुए दोनों चरण विक्षिप्त और दोनों भुजाओंको पसारे हुए खिन्न शरीरसे मृत्युकी गोदीमें शयन किया॥५५॥ व्रजवासी भयसे उसको पृथ्वीमें पड़े हुए अत्यन्त भयंकर शरीरको॥५६॥ देखनेके लिये वहां आये, उसका मुख पहाड़की कन्दराके समान था, उसकी नासिका शृंगके समान ऊंची थी ॥ ५७ ॥ उसकी आंखें कुएँके समान

तस्यां निपतमानायां भीतास्तेऽति व्रजौकसः ॥ खवित्रस्तहृदया निपेतुर्धरणीतले ॥ ५४ ॥ विकीर्य्य केशांश्च र्णा निक्षिपन्ती भुजावपि ॥ खिन्नगात्रा तथा सौम्य मुमोह च ममार सा ॥५५॥ ततो व्रजौकसो भीताः समुत्थाय चिरेण तु॥ददृशुः पतितं देहं तस्याश्चातीव भीषणम् ॥ ५६ ॥ सर्वेऽभिजग्मुस्तं द्रष्टुं मुखं कन्दरसन्निभम् ॥ फालदन्तसमाकीर्णगिरिशृङ्गोच्चनासिकम्॥ ॥ ५७ ॥ अन्धकूपगभीराक्षं वापीवत्कर्णयुग्मकम् ॥ शैलगण्डस्तनं बाहुयुगं सेतुमिव स्थितम् ॥ ५८ ॥ आतप्तताम्रकेशान्तं संत्रासावहमेव च ॥ शुष्कसरोवदुदरमुरुद्वयशिलोच्चयम् ॥ ५९ ॥ विलोक्य देहं त्रेसुस्ते मुमुहुस्तत्र दारुणम् ॥ पूर्वं तस्याः स्वनेनैव भिन्नहृत्कर्णमस्तकाः ॥ ६० ॥

गहरी थीं, उसके दोनों कान दीर्घिका (बावड़ी)के समान थे, उसके दोनों स्तन पहाडोंकी प्रान्तभूमिके समान थे, उसकी दोनों भुजायें थम्भोंके समान थीं ॥५८॥ उसके बाल अत्यंत रूखे और तांबेके समान वर्णवाले थे, उसका उदर सूखा हुआ तालाबके समान था, उसकी दोनों जंघायें पहाड़के समान थीं ॥५९॥ उसके ऐसे भयंकर शरीरको देखते ही सभीको मोह उत्पन्न होता था, प्रथम उसके भयंकर चिल्लानेसे सभीके कानों और मस्तकोंमें पीडा उत्पन्न

हो गयी थी ॥ ६० ॥ इसके उपरांत गोप और गोपियोंने बहुत देरके उपरांत चेतनताको प्राप्त कर अत्यंत ही विस्मययुक्त हृदयसे मुझे उसकी छातीपर बैठा हुआ देख बड़े आदरके साथ उठा लिया ॥ ६१ ॥ और मुझे मृत्युसे बचे हुएके समान माताकी गोदीमें दिया मेरे शरीरमें किसी प्रकारका भी आघात नहीं लगा था यह देखकर माताके आनंदकी सीमा न रही ॥ ६२ ॥ इसके पीछे जितने गोप और गोपी इकट्ठे होकर मेरी रक्षा करनेके लिये आये थे उन्होंने गोरज मेरे शरीरमें लगाकर और गौकी पूंछ मेरे ऊपर भ्रमाकर मुझे पहले गोमूत्रसे और फिर निर्मल जलसे स्नान कराय।

चिरं संज्ञामवापुस्ते गोपा गोप्यः सुविस्मिताः । तस्या उरःस्थितं मां तु जगृहुर्गोपिकादृताः ॥ ६१ ॥ आदाय दद्युर्मां मात्रे मृतं पुनरिवागतम् ॥ कुशलावयवं दृष्ट्वा मातुर्मोदोऽभवन्मुने ॥ ६२ ॥ अथ गोप्यः समागत्य रक्षां मे चक्रुरद्भुताम् ॥ ३४ ॥ गवां रजोभिरुद्धृत्य गोमूत्रैः स्नानकर्म्म च ॥ ६३ ॥ गोपुच्छैर्भ्रामयित्वाऽथ सुजलैः स्नापयन्पुनः ॥ संस्नाताः प्रयताश्चैव न्यास चक्रुरतन्द्रिताः ॥ ६४ ॥ आत्मनोऽङ्गेषु पूर्वं तां रक्षां कृत्वा तु मेऽङ्गके ॥ न्यासं चक्रुर्विधानेन प्रसिद्धैर्विष्णुनामभिः ॥ ६५ ॥ पादौ तु पातु विश्वात्मा अजो विष्णुश्च जानुनी ॥ ओष्ठौ नरकजित्पातु घ्राणं सौमित्रिवत्सलः ॥ ६६ ॥ नेत्रे देवेश्वरः पातु भालं भुवनपालकः ॥ केशवः केशवृन्दं च कृष्णः सर्वत्र रक्षतु ॥ ६७ ॥

फिर आप स्नान करके ॥ ६३ ॥ पवित्र और जितेंद्रिय हो पहले अपना अंगन्यास कर पीछे यथाविधि ॥ ६४ ॥ विष्णुके प्रसिद्ध नामकी मालाको उच्चारण कर मेरा अंगन्यास करने लगे ॥ ६५ ॥ कि विश्वात्मा भगवान् तुम्हारे दोनों चरणोंकी रक्षा करें, अज तुम्हारे जानुयुगलकी रक्षा करें, नरकांतकारी तुम्हारे दोनों अधरोंकी रक्षा करें, सौमित्रिवत्सल तुम्हारे नासिकाकी रक्षा करें ॥ ६६ ॥ देवेश्वर नेत्रोंकी और त्रिलोकीके पालक मस्तक

की रक्षा करें, केशव तुम्हारे केशोंकी रक्षा करें, कृष्ण तुम्हारे सब शरीरकी रक्षा करें ॥६७॥ और डाकिनी, शाकिनी, भूत, प्रेत, और मातृगण तुम्हारे शरीरकी रक्षा करें, इस प्रकारसे रक्षाका विधान समाप्त हुआ ॥६८॥ सभी मिलकर पूतनाके उस शरीरको टुकडे२कर चारों ओरसे काठको इकट्ठा कर अग्निमें जलाने लगे ॥६९॥ श्रीकृष्णके शरीरके स्पर्शसे उसके उस महाअपवित्र शरीरमेंसे दुर्गंधिके अतिरिक्त एक महासुगंधि निकली ॥ ७० ॥ उसके समस्त पाप नष्ट हो गये और मुक्तिको प्राप्त हुई, इसविषयमें किंचित् भी संदेह करना योग्य नहीं है, मेरे अंगको स्पर्श करनेसे संसारमें कुछ भी दुर्लभ

डाकिनीशाकिनीभूतप्रेतमातृगणाश्च ये ॥ तावत्ते पान्तु देहं वै ततः सर्वे समेत्य च ॥ ६८ ॥ पूतनायाः शरीरं च छित्त्वा छित्त्वा सुदूरतः ॥ क्षिप्त्वा काष्ठैश्च संवेष्टय दाहयाञ्चक्रुरञ्जसा ॥ ६९ ॥ दह्यमानस्य देहस्य धूमोऽभूदतिसौरभः ॥ कृष्णागुरोरपि महान्कृष्णाङ्गस्पर्शकारणात् ॥ ७० ॥ न तन्मुक्तौ भ्रमः कार्य्यः पापराशेरपि ध्रुवम् ॥ मदङ्गस्पर्शयोगेन किं भवेन्नहि भूतले॥७१॥ अन्तर्म्मनसि मां ये च चिन्तयेयुः सकृन्मुदा ॥ तेषां मुक्तिर्भवेदेव किं पुनर्म्मेऽङ्गसङ्गतः ॥७२॥ अहं वै परमं ब्रह्म सर्वव्यापि सनातनम् ॥ यजनाद्ध्यानतो मह्यं सद्यो मुक्तिर्भवेद्ध्रुवम् ॥७३॥ आत्माऽहं परमात्मा च अहं धर्म्मश्च शाश्वतः ॥ अहं सत्यमहं ज्ञानं शाश्वतोऽनन्तसौख्ययुक् ॥ ७४ ॥ मच्चिन्तनान्मद्यजनान्मम साधनतस्तथा॥जपनात्स्थपनात्सौम्य सर्वसिद्धिर्विनिश्चिता॥७५॥

नहीं रहता ॥७१॥ और क्या कहूँ जो हृदयके भीतर एकबार भी मेरी चिंता करते हैं वे उसी समय मुक्तिको पाते हैं तब वह जो मेरे अंगको स्पर्श करके मुक्त हो गयी तो उसमें संदेह ही क्या है॥७२॥ मैं ही सबमें व्याप्त परब्रह्म हूँ; मेरा क्षय नहीं है, वृद्धि नहीं है, मेरा ध्यान करनेसे निश्चय ही मुक्तिकी प्राप्ति होती है॥७३॥ मैं ही आत्मा और परमात्मा हूँ, मैं ही सनातन धर्म हूँ, मैं ही सत्य और मैं ही ज्ञान हूँ, मुझमें ही अनंत सुख विराजमान हैं॥७४॥ मेरी चिंता

और मेरी पूजा करनेसे अथवा मेरी साधना करनेसे, मेरे नामका कीर्त्तन करनेसे और मेरा जप करनेसे सब सिद्धियें प्राप्त हो जाती हैं ॥७५॥ इस कारण मेरा अंगस्पर्श करनेसे क्या सिद्धि नहीं हो सकती ॥७६॥ नारदजी बोले कि हे देवदेव! हे व्रजेश्वर! हे आद्य! आपके यह अद्भुत उत्तम वचन मैंने सुने मैं जिस प्रकारसे आपकी चिंताका अनुगत हूँ उसी प्रकारसे आप भी मेरे चिरकालके प्रभु और स्वामी हो ॥७७॥ इस प्रकार विश्वासके वश होकर साहस करके आपसे पूछता हूँ कि उस राक्षसी पूतनाने पूर्वजन्ममें ऐसे कौनसे पुण्य किये थे ॥७८॥ कि जिसके प्रभावसे वह आपके अंगको स्पर्श कर सकी। देखो

मदङ्गस्पर्शयोगेन किं न सिद्धिर्भविष्यति ॥ ७६ ॥ नारद उवाच॥ देवदेव व्रजेशाद्य श्रुतं ते वचनं महत् ॥ अहं ते सततं भृत्यस्त्वं मे नाथश्चिरं ततः ॥७७॥ इति विश्वासभावेन ततः पृच्छामि तेऽनघ॥ किं पुण्यं पूर्वमस्यास्तु पूतनाया बभूव ह ॥७८॥ तवाङ्गस्पर्शनं लोके योगीशात्यन्तदुर्लभम्॥तपस्विनस्तपो घोरं कृत्वाऽपि परमर्षयः॥कथञ्चिदपि न प्राप्तास्तवाङ्गस्पर्शनं महत् ॥७९॥ ईषद्विस्मयमानोऽहं श्रुत्वा तस्यास्तु सद्गतिम् ॥ ८० ॥ पृच्छामि त्वां कृपासिन्धो संशयं छेत्तुमर्हसि ॥ ८१ ॥

बड़े बड़े तपोनिष्ठ योगी भी अत्यन्त क्लेशोंको सहन कर जिसको नहीं पा सकते, मुनियोंमें इन्द्र भी कठिन तपके अनुष्ठान करनेसे इस विषयमें कृतकार्य नहीं होते, लोमश इत्यादि ऋषियोंने इसके लिये कितनी ही तपस्या की थी ॥७९॥ तो भी वह आपके अंगस्पर्शको नहीं पा सके थे. परन्तु यह राक्षसी पूतना सहस्रों महापापोंके करने पर भी इस विषयमें समर्थ हुई अर्थात् तुम्हें प्राप्त हुई इसका क्या कारण है, मुझको अत्यन्त मोह और अत्यन्त आश्चर्य हुआ है इससे कृपाकर कहिये ॥८०॥ कि पूतनाने प्रथम जन्ममें किस तपका अनुष्ठा[illegible] कृपासिंधु और भक्तवत्सल हैं इसकारण आपसे पूछता हूँ,

आप मेरे इस सन्देहको दूर कीजिये ॥८१॥ श्रीकृष्ण बोले कि हे विप्र! तुमने सम्पूर्ण लोकोंके कल्याणके लिये यह प्रश्न किया है इस कारण मैं पूतनाके पूर्वजन्मका वृत्तान्त वर्णन करता हूँ तुम श्रवण करो ॥८२॥ यह पूतना पहले जन्ममें जिस स्थानपर थी और इसने जो कर्म किये थे और क्यों राक्षसी होकर मनुष्योंके प्राणनाश करनेमें प्रवृत्त हुई थी, यदि तुम्हें इसके सुननेकी श्रद्धा है तो मैं समस्त वृत्तान्त आदिसे अन्ततक तुमसे कहता हूँ ॥८३॥ इति श्रीआदिपुराणे सूतशौनकसंवादे भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥ श्रीकृष्णजी बोले कि प्रथम सरस्वतीके किनारे कक्षीवान् नामक

॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ साधु पृष्टं त्वया विप्र लोकान्साध्वनुगृह्णता ॥ कथयामि मुनिश्रेष्ठ पूतनापूर्वसम्भवम् ॥८२॥ यत्रासीत्सा यच्च कर्म्मा करोद्वै यस्मादाप प्राणिहिंसामवश्यम्॥ सर्वं तुभ्यं विस्तरेण ब्रवीमि श्रोतुं श्रद्धा विद्यते चेत्तवात्र ॥८३॥ इति श्रीसकल पुराणसारभूते आदिपुराणे वैयासिके नारदशौनकसंवादे पूतनावधो नाम सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥श्रीकृष्ण उवाच॥पुरा सरस्वती तीरे वसति स्म द्विजोत्तमः॥ कक्षीवान्परमब्रह्म ध्याता विष्णुपरायणः ॥१॥ जितेन्द्रियो जितश्वासस्तपस्तेपे सुदुष्करम्॥ अध शिरा ऊर्ध्वपादः समुत्साहमना भृशम्॥ तस्यैवं तप्यमानस्य तपसा भूरितेजसः ॥ तदाश्रममनुप्राप्तः कालभीरुर्महातपाः॥३॥ सपत्नीकः सुतां रम्यां समादाय स्वयंवराम् ॥ नाम्ना चारुमतीं बालां सर्वाभरणभूषिताम् ॥ ४ ॥

ब्राह्मण निवास करते थे, वे परब्रह्मका ध्यान करते हुए विष्णुपरायण थे ॥१॥ जितेन्द्रिय हो श्वासको रोककर नीचेको मस्तक और ऊपरको पैर किये उत्साहके साथ महाकठिन तपको करने लगे ॥२॥ कालभीरु नामके महातपा महर्षि अपनी सर्वलोकमनोरमा समस्त आभरणोंसे भूषित चारुमती नामवाली कन्याको साथ लेकर स्त्रीक सहित इनके आश्रममें आये ॥३॥ कक्षीवान् महर्षिको आता हुआ देखकर दूरसे ही उसी समय आसनसे उठ

खड़े हुए और यथाविधिसे उनकी पूजा करने लगे ॥३॥४॥५॥ उस समय महर्षि कालभीरुके साथमें मनको हरण करनेवाली कन्याको देखकर कक्षीवान्‌के हृदयमें उसके साथ सहवासकी इच्छा हुई और कन्याका भी मन उन कक्षीवान्‌के सुन्दर शरीरको देखकर उनके प्रति अनुरागके वश हुआ, इसी रीतिसे उन दोनोंके मनमें परस्पर गाढ स्नेह हुआ ॥६॥ कालभीरुने कन्याके ऐसे मनोरथको देखकर उसी समय गुणवान् कक्षीवान्‌के हाथमें उसको दान कर दिया ॥७॥ विवाह विधिसे रूपवती कन्याका दान कर महाभाग कालभीरुजी अत्यन्त प्रफुल्लित हो कक्षीवान्‌से बोले ॥८॥ कि

तं समायान्तमालोक्य कक्षीवान्द्विजसत्तमः ॥ समुत्थायासनात्तूर्णं विधिना समपूजयत् ॥ ५ ॥ तां विलोक्य मुनेः कन्यां चकमेऽतिमनोहराम् ॥ साऽपि तं चकमे स्त्रीणां मनोनयननन्दनम् ॥ ६ ॥ समीक्ष्य कालभीरुश्च सुतायास्तं मनोरथम् ॥ ददौ तस्मै गुणाढ्याय कन्यां कक्षीवशर्म्मणे ॥७॥ दत्त्वा सम्यग्विवाहे तु कन्यां कमललोचनाम् ॥ तमुवाच महाभागः कालभीरुः प्रहर्षितः ॥८॥ कालभीरुरुवाच ॥ मुने कन्यापरित्यागः कर्त्तव्यो न कदाचन ॥ परत्र भीतैः पुरुषैरिति प्रोक्तं महर्षिभिः ॥९॥ देवविप्राग्निसान्निध्ये परिणीता हि कन्यका ॥ ज्ञातिदत्ता मन्त्रपूर्व्वं न त्याज्या सा कदाचन ॥१०॥ कक्षीवानुवाच ॥ सत्यं त्याज्या न कुलजा देवविप्राग्निसन्निधौ ॥ परिणीता यदा गृह्यश्रुत्युक्तेः संमता भवेत ॥ ११ ॥

पहले जिस प्रकार महर्षियोंने कहा है, कि जिनको परलोकका भय है ऐसे मुनिलोग कभी भी कन्याओंका त्याग नहीं करते ॥ ९ ॥ देवता, ब्राह्मण और अग्निके सामने जिसका दान किया जाता है उसका त्याग करना किसी प्रकार भी योग्य नहीं ॥१०॥ कक्षीवान् बोले कि जो उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई है और जिसको देवता, ब्राह्मण व अग्निके बीचमें सौत्रमें वरण किया है उसका त्याग करना किसी प्रकार भी योग्य नहीं

हो सकता ॥ ११ ॥ जो स्त्री पतिव्रता है और जो अपने [illegible] के गुणोंसे पतिके प्रेमको बढ़ाती है उसका त्याग करना किसी प्रकार भी उचित नहीं अथवा जो स्त्री सुशीला, सत्यशीला, तथा घरके कामकाजमें चतुर ॥ १२ ॥ पतिव्रता और बन्धुओंवाली है, उसको कभी नहीं त्यागना अथवा जो स्त्री अतिथियोंका आदर कर अनेक प्रकारसे उनको सन्तुष्ट करती है और जिसका जन्म उत्तम कुलमें हुआ है, उसका त्याग नहीं करना चाहिये ॥ १३ ॥ जिसके वचन अत्यन्त मधुर हैं, जिसमें कठोरताका लेश भी नहीं है, जिसको क्रोधने कभी स्पर्श नहीं किया अथवा जिसको ईर्षा और

पतिव्रता गुणगणैरुपेता ह्यनुरागिणी ॥ सुशीला सत्यसंयुक्ता गृहकार्य्यपरायणा ॥ १२ ॥ पतिव्रता बन्धुयुक्ता आगतेष्वतिथिष्वपि ॥ अत्यादरपरा नित्यं न त्याज्या कुलजा वधूः ॥ १३ ॥ पतिधर्म्मरता या च अविमुक्तकरा शुभा ॥ मिष्टवागनसूया च क्रोधेर्ष्यामानवर्जिता ॥ १४ ॥ कठोरवाक्या निद्रालुः पतिदूषणवादिनी ॥ रता परगृहद्वारि त्याज्यैवेत्थंविधा वधूः ॥ १५ ॥ हीनजातिरता नारी पथि चान्यनिरीक्षिणी ॥ आत्मलावण्यनिरता संत्याज्येत्थंविधा वधूः ॥ १६ ॥

अभिमानकी सुगंधितक भी नहीं लगी, ऐसी स्त्रीको कभी त्याग नहीं करना चाहिये; पतिधर्ममें परायण और अकृत्रिम भक्तिवाली स्त्रीको कभी त्यागना योग्य नहीं ॥ १४ ॥ जो स्त्री कठोर वचन कहनेवाली और सर्वदा निद्रामें रहती है या जो नारी सर्वदा ही कटुवचनोंसे अपने पतिको पीड़ित करती है, अथवा जो स्त्री दूसरोंके घरोंमें फिरनेवाली है और सर्वदा ही अपने द्वारपर खड़ी रहती है उसको अवश्य त्याग देना चाहिये ॥ १५ ॥ अथवा जो स्त्री अपनेसे निकृष्ट जातिके मनुष्योंसे मिलती है और मार्गमें सर्वदा खड़ी रहती है और जो स्त्री अपने रूपलावण्यसे युक्त हो इधर उधर घूमती है उसको त्याग

देना चाहिये ॥ १६ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि कालभीरुने ऐसे मधुर वचन कहकर उनको भलीप्रकार सन्तोष दे यथारीतिसे कन्या समर्पण की ॥ १७ ॥ इसके पीछे कालभीरु कन्याको कक्षीवान्‌के हाथमें देकर अत्यन्त आनंदित हृदयसे अपनी स्त्रीको साथ लिये हुए अपने आश्रमको चले गये ॥ १८ ॥ पिताके चले जानेपर पतिधर्ममें परायण चारुमती अपने स्वामी कक्षीवान्‌से बोली कि, हे नाथ ! भगवान् हरि समस्त संसारके ईश्वर हैं सम्पूर्ण लोक उनकी भलीप्रकारसे पूजा करते हैं ॥ १९ ॥ इस कारण हम तुम दोनों ही पवित्र अंतःकरणसे उनकी पूजा करेंगे; देखो ! विषयभोगमें

श्रीकृष्ण उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं मुनिर्विप्रः सन्तोषवचनैः शुभैः ॥ कन्यायास्तु करं तत्र जगृहे विधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥ कालभीरुरथो कन्यां दत्त्वा कक्षीवते ततः ॥ सपत्नीकः समायातः स्वाश्रमं मुदितो भृशम् ॥ १८ ॥ प्रस्थिते पितरि प्राह पतिधर्म्मपरायणा ॥ विश्वेशो हरिरेवैकः सेव्यः सर्वजनैरिह ॥ १९ ॥ आवयोः समयो नूनं तत्सेवोपयिकः प्रभो ॥ पत्नीपरिग्रहो नूनं पतीनां नरकाय च ॥ २० ॥ यदि कृष्णो न मनसि धृतो विषयलम्पटैः ॥ एवं प्रबोधितः पत्न्या ततः प्रारभ्य शक्तिमान् ॥ २१ ॥ अभूत्कर्म्म परित्यज्य आत्मनो बन्धमुक्तये ॥ न पिबत्यम्बुमात्रं हि विना विष्णुसमर्पितम् ॥ २२ ॥ हरिं त्रैलोक्यनाथं हि प्रत्यहं तोषयत्यलम् ॥ एवं गच्छति काले तु भजतोरुभयोरपि ॥ २३ ॥ नित्यं हि कृष्णपदयोः प्रीतिरासीन्निरन्तरम् ॥ स्वयं वक्ति कथां विष्णोः प्रीत्या चैव शृणोति सः ॥ २४ ॥

अत्यन्त आसक्त होकर भगवान् वासुदेवको भूल गये हैं और संसारमें स्त्रीका पाणिग्रहण पतिको नरकमें ले जाता है ॥ २० ॥ यदि विषयी पुरुष श्रीकृष्णका ध्यान न करें । महात्मा कक्षीवान् स्त्रीसे इस प्रकार कहे जाकर उसी समयसे सम्पूर्ण कर्मोंको त्याग अपनी बंधनसे मुक्तिके लिये श्रीकृष्णका ध्यान करनेमें उसी समयसे लगे, विष्णुको विना स्पर्श किये हुए जलतक भी नहीं पीते थे ॥ २१ ॥ २२ ॥ उन त्रिलोकीनाथ भगवान्‌के संतोष साधनेके लिये वह मन वचनसे भगवान्‌की पूजामें अत्यन्त ही आसक्त होकर स्त्री पुरुष दोनों ही अपने समयको बिताने लगे ॥ २३ ॥ उसके

प्रभावसे कृष्ण भगवान्के चरणोंमें उनकी अत्यन्त प्रीति उत्पन्न हुई । कक्षीवान् स्वयं ही प्रीतिभरे वचनोंसे सर्वदा ही भगवान्की कथाका कीर्तन करते थे और उन्हींके नामका स्मरण करते थे ॥२४॥ उन्हींके चरणोंकी वंदना करते, उन्हींकी पूजा करते, सेवा करते, अपनेको उन्हींका सेवक मानते और उन्हींकी चर्चा करते हुए उन्हींमें अपनेको समर्पण किया ॥२५॥ इस प्रकारसे नौ प्रकारकी भक्ति भगवान्में उनकी दिन२ बढ़ने लगी एस महाभाग कक्षीवान् अपनी स्त्रीके साथमें समयको बिताने लगे ॥२६॥ स्त्री पुरुष दोनों ही ऊपर लिखे हुए विधानसे मेरी आराधना करते हुए, इससे मैंभी उनके ऊपर

सेवने च सदा विष्णुं पादसेवां करोति च ॥ अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ २५ ॥ इत्थं नवविधां भक्तिं कुर्वन्नन्वहं द्विजः ॥ नयत्यहोरात्रयामान्प्रियया सह सदैव हि ॥ २६ ॥ भजनोरथ दम्पत्योः सन्तुष्टोऽहं मुनीश्वर ॥ कदाचित्तीर्थयात्रायै द्विजो गेहाद्विनिःसृतः ॥२७॥ उपादिशत्प्रियां भार्य्यां पातिव्रत्येन रागिणीम् ॥ न कार्य्यो देहसंस्कारो विना मुद्रानुधारणम् ॥ २८ ॥ भूषणानि न धार्य्याणि तुलसीमाल्यमन्तरा ॥ भोग्यानि नित्यं त्याज्यानि विना विष्णुनिवेदितम् ॥२९॥ स्मर्त्तव्यो भगवान्विष्णुर्न विस्मर्त्तव्य एव हि ॥ परगेहे न गन्तव्यं विना बन्धुनिमित्तकम् ॥ ३० ॥

अत्यन्त प्रसन्न हुआ । इसके पीछे वह महाभाग कक्षीवान् तीर्थकी यात्राके लिये अपने आश्रमसे बाहर हुए ॥२७॥ और परमप्यारी अपनी स्त्रीसे कहने लगे कि तुम कभी भी पराये धर्ममें अनुरागिणी न होना और मुद्राधारणके अतिरिक्त और किसी प्रकारसे शरीरका संस्कार न करना ॥२८॥ तुलसीकी मालाके अतिरिक्त और किसी प्रकारका आभूषण न पहरना, भगवान्के नैवेद्यके अतिरिक्त और किसी प्रकारके पदार्थोंका भोग न लगाना ॥२९॥ सर्वदा ही उन भगवान् विष्णुका ध्यान करती रहना, एक दिन क्या एक पलको भी उनको अपने हृदयसे न भूलना, अपने भाई और

बांधवोंके घरके सिवाय और दूसरोंके घर कभी न जाना ॥३०॥ नन्दमहोत्सवके अतिरिक्त पुरुषोंके साथ कभी कुछ वार्तालाप न करना, वा एक जगह न बैठी रहना, विष्णुके परमोत्सव वा देवालयके उत्सवके विना नृत्य, गीत और उत्सव इत्यादिको देखनेके लिये दूसरोंके घरमें न जाना॥३१॥ भगवान्से वैर करनेवालेके अतिरिक्त और किसीकी निन्दा न करना ॥३२॥ देवमूर्तिकी याचना करनेवालेके अतिरिक्त और किसी अतिथिको विमुख न करना, भगवान्की सेवाके लिये सर्वदा अपने घरमें बैठी रहना ॥ ३३ ॥ वृथा कार्यमें कभी भी अपने समयको न बिताना, मैंने

पुंभिर्नास्यं न वक्तव्य विना नन्दमहोत्सवम् ॥ नृत्यगीतोत्सवं द्रष्टुं न गमः परवेश्मनि ॥ विना पर्वोत्सवं विष्णोस्तथा देवालयोत्सवम् ॥३१॥ परनिन्दा न कर्त्तव्या विना विष्णुविरोधिनः ॥ ३२ ॥ नातिथिर्विमुखः कार्य्यो विना देवनयाचकम् ॥ स्वगेहे स्थितया कार्यं मनः श्रीकृष्णपादयोः ॥ ३३ ॥ कालो नेयो वृथा नैव विना श्रीकृष्णसेवया ॥ एवमादिश्य भार्यां स्वां नाम्नीं चारुमतीं तदा ॥३४॥ कक्षीवांस्तीर्थयात्रायै निर्जगाम गृहादपि ॥ साऽकरोत्तानि कर्म्माणि यथोद्दिष्टं महात्मना ॥३५॥ कदाचिद्धरिसेवार्थं फलपुष्पार्थिनी गता ॥ कानने स्वाश्रमप्रान्ते पातिव्रत्यपरायणा ॥ ३६ ॥ चिरादादाय पुष्पाणि परावृत्ता गृहं प्रति ॥ आगच्छन्ती गृहं साध्वी ददर्शागतमन्तिके ॥ ३७ ॥

जो कुछ तुम्हें उपदेश दिया है उसीके अनुसार कार्य करती हुई अपने समयको बिताती रहना, अपनी स्त्री चारुमतीको इस प्रकार उपदेश देकर ॥३४॥ कक्षीवान् तीर्थयात्रा करनेके लिये घरसे बाहर हुए। चारुमती भी पतिके उपदेश किये हुए विषयोंमें मन लगाकर यथाविधि उनका अनुष्ठान करने लगी ॥३५॥ किसी समय वह पतिव्रता भगवान् वासुदेवकी पूजाके लिये फल और पुष्पोंको इकट्ठा करनेकी इच्छासे वनको गयी ॥३६॥ और इच्छा

नुसार फल फूल इकट्ठेकर वह अपने आश्रमको लौटी तो मार्गमें आते हुए उसने किसीको देखा ॥ ३७ ॥ कि एक कामी शूद्र मनुष्य दासीके सहित आ रहा है, वह महापापी शूद्र इसको देखकर इसके प्रति कामनाके वश हुआ और चारुमतीके निष्काम होनेपर भी ॥ ३८ ॥ उसके सम्मुख आकर मार्गको रोक दुष्टतापूर्वक अनेक प्रकारके मोहयुक्त वचन कहने लगा ॥३९॥ हे नारद ! उस दुराचारी शूद्रने उस समय जो कुछ कहा था वह मैं सभी कहता हूं तुम श्रवण करो। वह कहने लगा कि प्राणियोंके शरीरको विषय ही सम्पूर्ण सुखोंका देनेवाला है ॥४०॥ भोगके

कामिनं कञ्चिदायान्तं शूद्रं सह भुजिष्यया ॥ स दृष्ट्वा तां महापापी अकामामप्यकामयत् ॥३८॥ आगत्य सम्मुखं तस्यास्तां बालां समबोधयत् ॥ बहुधा मोहकैर्वाक्यैर्भ्रान्तिमेवालपच्छठः ॥३९॥ तानि वाक्यानि जानीहि तेनोक्तानि शृणुष्व मे ॥ देहिनो देहयोगेन विषयाः खलु सौख्यदाः ॥४०॥ आब्रह्मकीटपर्य्यन्तं विषयेऽभिरतं सदा ॥ अज्ञा अन्यद्वदन्त्यत्र कुर्वन्तो यत्नसञ्चयम् ॥४१॥ देहान्ते मुक्तिकामास्ते मुक्तिं नैव समागताः ॥ नैवापुर्मुनयो मुक्तिं वृथा कष्टं समाश्रिताः ॥ ४२ ॥ तस्मान्न कार्यं देहस्य कदनं भोगभागिनः ॥ ततोऽनेकविधैर्भावैर्भजन्तं मां भजस्व च ॥ ४३ ॥

न करनेपर मनुष्यको किसी प्रकारके विषयमें भी प्रीतिका योग नहीं मिलता, देखो ब्राह्मणोंसे लेकर कीड़े तक सभी सदा विषयकी सेवामें आसक्त रहते हैं ॥४१॥ जिनको इस विषयमें ज्ञान नहीं है वे ही इसके विरुद्ध करते हैं और वे ही अत्यन्त यत्नके साथ शरीरके अन्तमें मुक्तिकी अभिलाषा करते हैं, और इस रीतिसे मुक्ति होती है यह कहते तो हैं परन्तु मुनि लोग कभी भी मुक्तिको पानेमें समर्थ नहीं होते, केवल वृथा कष्टको ही पाते हैं ॥ ४२ ॥ इसलिये भोगसे हीन होकर ऐसा शरीरको क्लेश देना किसी प्रकारसे भी योग्य नहीं, मैं अनेक प्रकारसे तुम्हारा भजन करूंगा

और तुम मेरा भजन करना ॥४३॥ भोग ही जीवनका प्रत्यक्ष फल है और भोगके ही लिये स्त्री पुरुषोंकी सृष्टि हुई है, हे कल्याणि! स्वामीके विना इकली रहकर तुम ऐसे कष्टोंको सहन कर वृथा समयको बिताती हो॥४४॥इस प्रकार क्लेशोंको सहनकर शरीरके धारण करनेसे क्या फल है? तुम्हारा स्वरूप जैसे त्रिलोकीमें सुन्दर है, वैसे ही तुम्हारी आयु भी नवीन है ॥४५॥ ऐसे अमूल्य यौवन और अमूल्य समयकी सम्पत्ति जिससे वृथा न जाय हे नितम्बिनि! ऐसा उपाय करो ॥४६॥ यह शरीर साधारण है जिसको इसका ज्ञान नहीं वही इसमें वृथा भेद और वृथा जाति वृत्तादिकी

जीवितस्य फलं भोगो न भोगो दम्पती विना ॥ पतिं विनाऽतिक्लेशेन कालो याति मुधाऽबले ॥४४॥ किं क्लिष्टेन शरीरेण कोमलाङ्गि फलेच्छया ॥ दृश्यते परमं रूपं वयश्चापि मनोहरम् ॥४५॥ न यथा ते वृथा यातु तथा कुरु नितम्बिनि ॥ ४६ ॥ यत्साधारणदेहोऽयं मनुष्यस्याबुधैः कृतः ॥ वर्णभेदो हि तत्रापि जातिवृत्तादिकं वृथा ॥ पूज्यते विषयस्तावद्देहस्यैव च धारणे ॥ ॥ ४७ ॥ नष्टे देहे क्व विषयः क्व स्वर्गो मुक्तिरेव वा ॥ अतो मया सह शुभे भोगान्भुङ्क्ष्व मनोरमान् ॥ ४८ ॥ इत्यादिभिस्तस्य वाक्यैर्मूढा मूढत्वमागता ॥ न शशाक मनो धर्तुं कामस्य वशमागतम् ॥ ४९ ॥

कल्पना करते हैं, संसारमें केवल एक विषय ही पूजनीय है; उसीके अनुरोधसे शरीर धारण किया है ॥४७॥ शरीरके नाश होते ही विषय फिर कहां है स्वर्ग और अपवर्ग कहां है, इस कारण हे कल्याणि! मेरे साथमें तुम मन इच्छित विषय भोगको भोगो ॥४८॥ उस दुराचारी शूद्रने इस तरह विविध प्रकारके वचन कहे तब मूढ़ा चारुमतीकी भी बुद्धिको भ्रम हुआ और उसका मन भी इसकी ओर जाकर कामके वशीभूत हुआ ॥ ४९ ॥

वह किसी प्रकारसे भी इसको सुमार्गमें रखनेको समर्थ न हुई, मन तो स्वभावसे ही चञ्चल है और दुष्ट भावोंसे पूर्ण है, फिर संगतिको पाकर बुरे आचरणोंसे युक्त हो जाता है ॥५०॥ संगतिके होनेसे ही जैसे उसकी साधुताका संचार होता है उसी प्रकारसे असत् संगतिके होनेमें असद्भाव उत्पन्न होते हैं, इस कारण अपने हितकी अभिलाषाके लिये बुरे संगका परित्याग करना मनुष्यमात्रको ही कर्तव्य है, और क्या कहूं सत्संगतिके होनेसे ही संसारके दोनों लोकोंमें सुख उत्पन्न होता है ॥५१॥ चारुमती भी उसी दुष्ट संगतिके वशीभूत होकर थोड़े दिनोंके बीचमें ही दुष्टस्वभाववाली हो गयी। इस ओर उसका

मनो दुष्टं चञ्चलं च सङ्गाच्च परिवर्त्तते ॥ सत्सङ्गात्साधुतामेति दुस्सङ्गाद्याति दुष्टताम् ॥५०॥ दुष्टसङ्गो न कर्त्तव्य आत्मनः श्रेय इच्छता ॥ सतां सङ्गाद्धि मनुजो लोकद्वयसुखं व्रजेत् ॥५१॥ सा तस्य सङ्गाद्दुष्टस्य दुष्टा स्वल्पदिनैरभूत् ॥ चिरं समागतस्तस्याः पतिस्तीर्थान्तरं गतः ॥ ५२ ॥ नाऽपश्यत्तां तथाभूतामपूर्वामतिकामुकीम् ॥ चलचित्तां पररतां गृहकार्य्याविधायिनीम् ॥५३॥ तथाप्यसौ द्विजो दुष्टां वनितां संन्यवारयत् ॥ तर्जनैः सान्त्ववचनैर्यदा तस्या मनोऽन्यथा ॥५४॥ कर्त्तुं न शक्तः कक्षीवान्क्षुब्धचित्तः शशाप ताम् ॥ प्रयातु राक्षसीं योनिं दुष्टे दुष्टप्रदूषिता ॥ ५५ ॥

पति अनेक तीर्थोंसे होता हुआ बहुत समयके पीछे अपने आश्रममें आया ॥५२॥ तब आकर देखा कि चारुमती अब उस प्रकारके पवित्र आचरण करनेवाली नहीं है; वह अत्यन्त ही कामिनी हो गयी है और उसका मन भी चञ्चल हो गया है, इसपर भी वह पराये पुरुषमें मनको लगाये हुए है, घरके कार्यमें भी अब उसका मन वैसा नहीं लगता ॥५३॥ परन्तु तो भी कक्षीवान्ने उसका एकबार ही त्याग नहीं किया, इसके उपरान्त जब बहुत प्रकारसे समझाने बुझाने पर भी उसका मन पापसे अलग नहीं हुआ ॥५४॥ तब निरुपाय होकर क्रोधित हो उसको कक्षीवान्ने शाप दे दिया और बोले

कि हे पापिनि! तू जैसे पाप करनेमें रत हुई है और मेरा जैसे निरादर किया है, जिसकी संगतिसे बद्धाचित हुई है उसी प्रकारसे राक्षसी योनि तुझको मिले, और सदा ही मनुष्योंकी अनिष्टकामना करती हुई विविध प्रकारके पाप करती रहे ॥५५॥५६॥ ऐसी अवस्थासे बहुतसे समयको बिताना वह करुणासिन्धु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी संसारके उद्धारके लिये अवतार लेकर किसी समयमें तेरा उद्धार करेंगे, भक्त अपनी भक्तिके ही प्रभावसे कभी दुर्गतिको नहीं भोगते ॥५७॥ कारण कि तूने जो कुछ भी विष्णुभगवान्का पूजन और भजन किया है उसीके प्रभावसे तुझको नरकमें जाना नहीं

त्वं वञ्चयित्वा मां नित्यं यदभूः कितव रता ॥ पापकर्म्माणि कुर्वाणां दुष्टां लोकाहितैषिणीम् ॥५६॥ कदाचित्करुणासिन्धुः कृष्णः सन्तारयिष्यति ॥ निजभक्तिप्रभावेण भक्ता नो यान्ति दुर्गतिम्॥५७॥सख्यं कथञ्चिद्विष्णोस्त्वमकरोः सेवनं यतः॥ततो न सन्तु नरका नोचितं तव वर्तते ॥ ५८ ॥ इत्थं ब्राह्मणशापेन पूतना साऽभवन्मुने ॥ एतत्तेऽभिहितं सर्वं किमन्यच्छ्रोतु मिच्छसि॥५९॥नारद उवाच॥कृष्ण तस्यास्तु दुष्टायास्त्वया स्पर्शः कथं कृतः॥न तदेयं विशुद्धा किं स्तनं तस्याः पपौ भवान् ॥ ॥६०॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ च्यवनः स्वाश्रमे पूर्वं तपसा गतकल्मषः ॥ मनो दधौ चात्मना तु सर्वात्मन्यखिलेश्वरे ॥ ६१ ॥

होगा, और जाना किसी प्रकार भी योग्य नहीं हो सकता॥५८॥हे मुने! इस प्रकारसे ब्राह्मणके शापसे चारुमतीने पूतना होकर जन्म लिया सो मैंने तुम्हारे निकट इसका समस्त वृत्तान्त आदिसे अबतक वर्णन किया; अब तुम्हारे क्या सुननेकी इच्छा है सो कहो ॥५९॥ नारदजी बोले कि जिसका पारा वार नहीं पूतना तो ऐसी पापिनी थी फिर तुमने उसके अंगको स्पर्श कर किस प्रकारसे उसके स्तनका पान किया सो कहिये॥६०॥श्रीकृष्णजी बोले! कि पहले महाभाग च्यवनजीने अपने तपके प्रभावसे पापोंको नष्टकर अपने आश्रममें बैठे हुए उन अखिलेश्वर सर्वात्मा भगवान्की आत्मामें अपने मनको

लगा दिया ॥ ६१ ॥ इस प्रकारसे शांतिका आश्रय लेकर बहुत समय तक तप करते रहे, पृथ्वीके नीचे रहनेवाले राक्षसगण उनको भक्षण करनेके लिये आये ॥६२॥ और ऐसे कहने लगे कि छेदन करो "मार डालो" यह कहते हुए इनके पीछे दौड़े, यह उनके बड़े भारी ऊंचे शब्दको सुनकर उसी समय उठे और इन दैत्योंको देखकर क्रोधित हो अपने शरीरकी ओरको देखा, देखते ही उसी समय इनके शरीरसे महाबलवान् देव उत्पन्न हुए। उन्होंने एक पलके बीचमें ही उन समस्त राक्षसोंको मार डाला, सम्पूर्ण दैत्योंकी संख्या सोलह हजार थी। उन राक्षसोंके मर जानेपर देवता हाथ जोड़

चिरमेवं प्रतपति मुनौ शान्तिमुपेयुषि ॥ जग्धुमारेभिरे दैत्याः पातालतलवासिनः ॥६२॥ च्यवनो ब्रह्म निर्व्वाणपरमं सुखमाश्रितः ॥ श्रुत्वा वचः समुत्तस्थौ छिन्धिभिन्धीतिवादिनाम्॥६३॥चुकोप दृष्ट्वा तान्दैत्यान्स्वांतनुं च व्यलोकयत्॥अथ तस्य ततो देवाः समुत्पन्नास्त्वरान्विताः॥असुरांस्तान्निहन्युश्च षष्टिसाहस्रसंमितान्॥६४॥बद्धाञ्जलिसुराः प्रोचुः निहतेष्वसुरेष्वपि ॥ मुने ते किङ्कराः सर्व्वे किं कुम्मस्त्वं वदाशु नः॥६५॥च्यवन उवाच॥प्रयात गिरिशं देवमुपधावत सर्व्वशः॥प्रणम्य परया भक्त्या ध्यानोपरतमीश्वरम् ॥६६॥ ते तथोक्तास्तत्र जग्मुर्ददृशुः शिवमव्ययम्॥ध्यानसंस्थं तदंके च पार्व्वतीं वीक्ष्य विस्मिताः॥६७॥

महर्षि च्यवनजीसे बोले ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ कि हे मुने! हमलोग सभी आपके सेवक हैं, अब हम कौनसा आपका कार्य करें सो कहिये ॥ ६५ ॥ च्यवनजी बोले कि हे देवताओ! तुम सब अतिशीघ्र देवदेव महादेवके निकट जाओ, वह समाधिमें बैठे हुए अध्यात्मका ध्यान करते हुए मग्न हो रहे हैं, तुम भक्तिसहित उन्हें प्रणाम कर अपना परिचय दो ॥६६॥ महर्षि च्यवनजीके ऐसा कहनेपर देवता उस स्थानसे उसी समय चले गये और वहां जाकर देखा कि वह अनादिनिधन आदिदेव महादेवजी योगका अवलम्बन किये हुए ध्यानमें निमग्न आसनके ऊपर आनन्दके साथ विराजमान हैं, और देवी

पार्वतीजी भी ध्यानको धारण किये उनके अंगका आश्रय किये हुए बैठी हैं ॥६७॥ ऐसा देखकर इनको बड़ा ही विस्मय हुआ, यह हँसने लगे, उसी समयमें भगवती पार्वतीजीकी चन्द्रमाके समान माधुरी रूपकी कलाको देखकर यह कामके वशीभूत हो मोहित हो गये, इसके पीछे जब इनको ज्ञान उत्पन्न हुआ तब आपसमें एक २ की निन्दा करते हुए कहने लगे कि॥६८॥धिक्कार है सहस्रवार धिक्कार है, धिक्कार है हमारा मन ही हमारा शत्रु हो गया है, इसी कारण तो हम संसारके माता पिताकी निन्दा करनेमें प्रवृत्त हुएथे, महाप्रभाववाले पुरुष भी परायी स्त्रीको देखकर मोहके वश हो जाते हैं॥६९॥

जहसुश्च परं रूपं दृष्ट्वा कामविमोहिताः॥ततस्ते संस्मरुर्देवा निन्दां चक्रुर्मनस्सु च ॥६८॥ धिङ् मनो नः परं शत्रुभूतं धिक्छत शस्तथा॥दृष्ट्वा परस्त्रियं मोहं नाप्नुवन्ति महाबलाः ॥६९॥ परस्त्रीस्मरणे पापं किं पुनर्दर्शनादिषु ॥ अतः प्रसादयिष्यामः शिवं सर्वसुरेश्वरम् ॥ ७० ॥ यदा ध्यानावसाने तु बहिर्दृष्टिर्भविष्यति ॥ एवं ते चिरमातस्थुर्वीक्षन्तो ध्यानमोचनम् ॥७१॥ वर्षाणा मयुते जाते महेशो ध्यानमत्यजत् ॥ अपश्यत्पार्वतीं शुद्धां ततस्ते तं व्यजिज्ञपन् ॥ ७२ ॥ बद्धाञ्जलिपुटाः सर्वे अपराधं यथा कृतम् ॥ समागता महादेव वयं ते दर्शनार्थिनः ॥ ७३ ॥

पराई स्त्रीके स्मरण करनेसे भी महापाप लगता है फिर देखनेकी तो बात क्या कहें, जिसका ठिकाना नहीं. हमने ऐसे बड़ेभारी महापापका अनुष्ठान किया है इस कारण जिस समय सर्वसुरेश्वर ॥७०॥ महादेवजीकी समाधि छूटेगी उसी समय हम उनको प्रसन्न करेंगे। इस प्रकारकी चिंता करते हुए उन्होंने महादेवजीकी समाधिकी प्रतीक्षासे बहुत समयतक निवास किया॥७१॥ दशहजार वर्षके बीतनेपर महादेवजीका ध्यान छूटा, तब उन्होंने पार्वतीजी के साथ देवताओंको शुभदृष्टिसे देखा॥७२॥देवताओंने भी हाथ जोड़कर विनयसहित अपने अपराधोंको कहा कि, हे भगवन् ! हम आपके दर्शन

की अभिलाषासे यहां आये हैं ॥७३॥ और महर्षि च्यवनजीने अपने शरीरसे हमें उत्पन्न कर आपके निकट भेजा है, हमने यहां आकर भगवती पार्वतीजीके रूपकी छटाको देखकर चिरकालतक निवास किया ॥७४॥ इसके अतिरिक्त एक महापापका अनुष्ठान करके हमने जो आपका बड़ा भारी अपराध किया है उसमें आपको हमारा उद्धार करना होगा, और फिर जिससे कभी भी ऐसे अनिष्टकार्यमें हमारी इच्छा न हो ऐसा आप हमको दंड दीजिये ॥७५॥ महादेवजी उनके ऐसे विनययुक्त वचनोंको सुनकर कहने लगे कि हे देववृन्द ! मेरी तुम्हारे ऊपर अत्यंत प्रीति हुई है, तुम सभीने

च्यवनाङ्गसमुद्भूता आगतास्तन्निदेशतः ॥ चिरं स्थिता दैववशात्पार्वतीरूपमोहिताः ॥ ७४ ॥ मुहूर्तमात्रं दुर्बुद्धिवशात्का मवशङ्गताः ॥ विप्रियं तेन पापेन समुद्धर्त्तुं त्वमर्हसि ॥ यथा नैवं पुनः कर्म्म कुर्म्मो दण्डो विधीयताम् ॥७५॥ इति श्रुत्वा महा देवस्तुष्टस्तानिदमब्रवीत् ॥ भविष्यथ कृशानोस्तु पुत्रा यूयं महौजसः ॥७६॥ अनिर्दशाः स्तनादानैः पूतनाया मरिष्यथ ॥ कंसप्रणोदिता सा तु राक्षसी नन्दगोकुलम् ॥७७॥ यदा यास्यति हन्तुं वै कृष्णं लिप्त्वा स्तने विषम्॥अङ्के कृत्वा हरिं घोरा स्तन्यं यत्पाययिष्यति ॥७८॥ भवत्पीतावशिष्टं तद्भगवान्पास्यति स्तनम् ॥ पीडयित्वा सह प्राणैस्तदा मुक्तिमवाप्स्यथ ॥७९॥

परमतेजस्वी अग्निके पुत्रसे जन्म लिया है ॥७६॥ दशवर्षकी अवस्थामें बालकोंको मारनेवाली पूतना तुम सबका संहार करेगी, वह राक्षसी कंसकी भेजी हुई आकर अपने दोनों स्तनोंमें विषको लगा ॥७७॥ भगवान् श्रीकृष्णजीको मारनेके लिये नन्दजीके घर गोकुलमें आवेगी, इसके पीछे भग वान्‌को गोदीमें लेकर दूध पिलावेगी ॥७८॥ तब जिस समय तुम लोग उन पीते हुए स्तनोंको देखोगे अर्थात् जब महावेगके साथ श्रीकृष्ण दूधको

पियेंगे, तभी तुम्हारी मुक्ति हो जायगी ॥७९॥ श्रीकृष्ण बोले कि महादेवजीके इस वचनको सत्य करनेके लिये ही मैंने राक्षसीके स्तनोंको पिया था। कोई मनुष्य कभी कर्मबन्धनरूप पाशको छेदन करनेको समर्थ नहीं होता ॥८०॥ श्रीनारदजी बोले कि हे भगवन्! आपने जिस समय उस दुष्टाचरण करनेवाली पूतनाका संहार किया था उस समय नन्दजी व्रजमें थे अथवा और कहीं, वह कहां थे? हे विश्वेश्वर! मुझे अत्यन्त ही विस्मय उत्पन्न हुआ है; इस कारण कृपा करके यह समस्त वृत्तान्त आदिसे अन्ततक वर्णन कीजिये. आपके चरित्रको सुननेसे संपूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ८१ ॥८२॥

॥श्रीकृष्ण उवाच॥ इति रुद्रवचः सत्यं कर्त्तुं तस्याः पपौ स्तनम्॥ न कर्म्मबन्धनं पाशं छेत्तुमर्हति कश्चन॥८०॥नारद उवाच॥ यदा ते निहताऽसाध्वी पूतना बालघातिनी ॥ तदा नन्दोऽभवत्कुत्र व्रजे वाऽन्यत्र वा गतः ॥८१॥ एतन्मे ब्रूहि विश्वेश परं कौतूहलं मम ॥ तृप्तिर्न जायते श्रुत्वा कथां ते कलिनाशिनीम् ॥८२॥ अनूनं जायते यत्र तापशान्तिश्च मानसी ॥ स्वर्गापवर्ग योर्द्वारं द्वारं वै मोक्षभोगयोः ॥८३॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ मम जन्मदिने विप्र कृत्वा जन्मोत्सवं पिता ॥ दिनाष्टासु व्यतीतेषु गोपैः कतिपयैर्वृतः ॥८४॥ वार्षिकं भोजराजीयकरं दातुं पुरीं गतः ॥ तत्रात्रौ तृषितः श्रान्तो विश्रान्तः प्रातरेव हि ॥८५॥

और फिर संताप भी दूर होते हैं, पग पग पर अमृत भोगनेको मिलता है, स्वर्ग और अपवर्गकी प्राप्ति होती है, भुक्ति और मुक्ति मिलती है, इस कारण फिर आप कहिये ॥८३॥ श्रीकृष्णजी बोले कि पिता नंदजी मेरे जन्मसे जन्मोत्सव करते हुए आठ दिन बीते तब वह कितने एक गोपोंको अपने साथ लेकर ॥८४ ॥ राजा भोजको वार्षिककर (सालाना) देनेके लिये उसकी नगरीको गये थे. उस रात्रिको वहां निवास कर प्रभात

होते ही ॥८५॥ राजा भोजके मंदिरमें जाकर उसको प्रणाम कर उसके अधिकारियोंको नियमित कर दकर अपने स्थानको चले ॥८६॥ महात्मा वसुदेवजीने सुना कि हमारे परममित्र नंदजी आये हैं और उन्होंने राजाको वार्षिक रुपया दिया है यह सुनकर अत्यंत ही आनंदित हुए और उनके दर्शनोंकी अभिलाषा कर उत्कंठित हो उनके पासको गये ॥ ८७ ॥ उन दोनोंके परस्परमें मिलनेसे आनंदकी सीमा न रही, इस कारण जिस प्रकारसे वसुदेवजी नंदजीके देखनेको मन और प्राणोंसे उत्कंठित हो रहे थे नंदजी भी उसी प्रकार उनको अचानक आया हुआ देखकर अत्यन्त ही आनंदित हुए। इसके पीछे प्रेममें भरकर आनन्दके मारे व्याकुल हो भ्रमके साथ उसी समय आसनसे उठकर वसुदेवजीके पासको गये ॥८८॥ और अत्यंत

गत्वा राज्ञो गृहं तत्र नत्वा राज्ञे करं ददौ ॥ दत्त्वा तस्याधिकारिभ्य आजगामावमोचनम् ॥८६॥ श्रुत्वा शौरिस्तमायान्तं नन्दं सुहृदमात्मनः ॥ राज्ञे दत्तकरं ज्ञात्वा ययौ तद्दर्शनोत्सुकः ॥८७॥ ततो विलोक्य तं नन्दः शौरिं तत्र समागतम् ॥ उत्थाय संभ्रमेणाशु सहजप्रेमविह्वलः ॥८८॥ चिरं विमुच्य हृदयादुपवेश्य वरासने ॥ वसुदेवमुवाचेदं किं पृच्छे दर्शनं तव ॥८९॥ जीवसी त्यद्भुतं जातं कंसे जीवति निश्चितम् ॥ बहवो निहता येन शिशवः पावकोपमाः ॥ ९० ॥

आदर सहित उनको हृदयसे लगाय प्रेमके आंसू बहाते हुए आसनपर बैठनेको गद्गद कंठसे बोले कि मैं और तुमसे क्या कहूं तुम्हारा जो इस समय दर्शन हो गया है यही हमारा अहोभाग्य है॥८९॥इस महापापी कंसके जीवित रहते हुए किसीके भी बचनेकी आशा नहीं है इस कारण तुम जो आजतक जीवित हो यही मुझे अत्यन्त आश्चर्य है इसमें संदेह नहीं, देखो इस पापात्मा कंसने तुम्हारे कैसे छोटे२ बालक मार डाले हैं। उनको स्मरण करते छाती फटती है, हृदय विदीर्ण हुआ जाता है, वज्रसे छेदन किये हुएके समान हृदयमें पीडा होती है, हाय ! कैसा कष्ट है कि उन समस्त बालकोंकी

मारकर भी इस दुरात्माकी तृप्ति न हुई ॥९०॥ अंतमें जो वह एक कन्या थी उसको भी इस पापीने मार डाला, इन सभीकी चिंता करके तुमको शोक करना उचित नहीं है ॥९१॥ यदि विधाता ही अनुकूल है तो फिर इस वंशमें सन्तानकी उत्पत्ति होगी और जो विधाता ही प्रतिकूल हुआ है तो इस प्रकारसे निश्चय ही विनाशका होना संभव है इसमें किंचित् भी संदेह नहीं ॥ ९२ ॥ तुम्हारे समान ज्ञानवान् मनुष्योंकी बुद्धि कभी मोहमें नहीं पड़ती, इस विषयमें विधाताको ही बलवान् जानकर तुमको शोक करना उचित नहीं, ईश्वर जो करेगा वह अवश्य ही होगा, कोई भी उसको किसी प्रकार

अवशिष्टा सुता चैका साऽपि तेन निपातिता ॥ तथाऽप्यदृष्टमाश्रित्य सुखं दुःखं न चाऽन्यथा ॥९१॥ दैवेऽनुकूले भवति सन्ततिः सुहृदां वर ॥ प्रतिकूले तथा दैवे सा नाशं व्रजति ध्रुवम् ॥९२॥ वसुदेव विदां बुद्धिर्न मोहाय हि कल्पते ॥ तत्र दैवमिति ज्ञात्वा न च शोचितुमर्हसि॥ईश्वरेण कृतं यत्तदुद्भवत्येव नान्यथा॥९३॥एवं श्रुत्वा नन्दवाक्यं तदानीं शौरिश्चैवं लब्धबुद्धिप्रसादः॥त्यक्त्वा शोकं मोहभारं तथैव यथागतं प्रस्थितो भावितात्मा ॥९४॥ याचकेभ्योऽखिलेभ्यश्च व्रजेऽभूत्परमोत्सवः॥ निहत्यैवं बकीं दुष्टां मुनेऽहं व्रजमास्थितः ॥९५॥ सुखयन्बालरूपेण तत्र सर्वान्व्रजौकसः ॥ कंसोऽपि लोके शुश्राव मृता घोरा व्रजे बकी ॥९६॥

से नहीं मेट सकता ॥९३॥ महात्मा नंदजीके ऐसे वचन सुनकर वसुदेवजीकी बुद्धि स्थिर हुई तब उनका संपूर्ण शोक दूर हुआ, तब नंदजीने वहांसे अपने स्थानको प्रस्थान किया (इसप्रकारसे बालकोंको मारनेवाली उस पूतनाको मारा उस समय महात्मा नंदजी व्रजमें नहीं थे, इसके पीछे उन्होंने घरको आकर पूतनावधके समस्त वृत्तांतको सुनकर मेरा जन्म नया जाना)॥९४॥इसके पीछे अनेक याचकोंको बहुतसा धन दान किया, व्रजमें एक बड़ाभारी उत्सव हुआ, घर २में समस्तलोग आनंदित हो बधाई देने लगे। हे मुने ! इस प्रकारसे मैंने पूतनाको मारा ॥९५॥ और फिर बालकका रूप

धारण कर व्रजमें रहकर सम्पूर्ण व्रजवासियोंको आनंदित किया, वह भी मेरे साथमें रहकर आनंदसे अपने समयको बिताने लगे। इस ओर कंसने लोगोंके मुखमें सुना कि पूतना व्रजमें जाकर मृत्युको प्राप्त हुई॥९६॥अपने स्तनोंमें विष लिपटाय बालकको पिलाकर स्वयं मृतक हो गयी है यह विचारने लगा कि पूतना अपने आप ही मर गयी होगी और किसी कारणसे भी उसकी मृत्यु नहीं हुई॥९७॥ कारण कि विषके लगनेसे ही उसे मृत्युके मुखमें जाना हुआ है, हे मुने! मैंने प्रथम तुमसे जो उसके स्वप्नका वृत्तांत कहा था कंस उस समय उसी विषयके विचारको करने लगा॥९८॥ इसी अवसरमें पूतनाकी बहन वृकोदरी वहां आकर कहने लगी॥९९॥ कि, मेरी परमप्यारी सहोदरी बहनने तुम्हारे कार्य करनेके लिये जाकर अपने

स्तनौ गरलसंलिप्तौ दत्त्वा बालाय गर्विता॥ स्वयं मृतेति कंसो वै मेने नान्येन हेतुना॥९७॥ विक्रिया गरलस्यैव प्रवृत्ता मरणाय हि॥ तथैवोक्तो यतः स्वप्नः सद्यो मरणसूचकः॥९८॥ एवं वितर्कयन्तं तमाजगाम वृकोदरी॥९९॥ वृकोदर्य्युवाच॥ मृता मे भगिनी कंस तव कार्य्याय सा गता॥ किं जीवितेन तन्मेऽद्य गोपैरल्पैर्निपातिता॥१००॥ धिक्ते जन्म वृथा मानं तवैश्वर्य्यं पराक्रमम्॥त्वयि जीवति मे कान्ता भगिनी निहता व्रजे॥१०१॥अहो शृगालो बलवान्सिंहं चैव निहन्ति किम्॥ मार्ज्जारं मूषिको वाऽपि सर्वं वै ह्यद्भुतं परम्॥१०२॥क्षुद्राश्चैव व्रजे कंस ये वसन्ति वदामि किम्॥तेषां निकारो हस्तेन तव नापि महात्मनः॥१०३॥

प्राणोंको त्याग दिया है "हा" जब इन क्षुद्र गोपोंने उसको मार डाला है॥१००॥ तब तुम्हारे और हमारे जीवित रहनेका प्रयोजन क्या है? तुम्हारे जन्म, ऐश्वर्य, मान, पराक्रम, इन सभीको धिक्कार है! तुम इन सबको लेकर क्या करोगे? हाय! तुम्हारे जीवित रहते हुए हमारी भगिनी व्रजमें जाकर मर जाय॥१०१॥ इसके समान शोकका विषय और क्या होगा? हाय! शृगाल भी बलवान् होकर महाप्राण सिंहको मार सकता है, अथवा मूषक भी बलवान् होकर बिलावके मारनेको समर्थ होता है, इन सभीमें मुझे अत्यन्त आश्चर्य होना दिखायी देता है॥१०२॥ हाय! कंस! मैं और

क्या कहूँ, जो लोग व्रजमें रहते हैं, उनका और हमारा बल कहाँ है ? वीर्य कहाँ? तेज कहाँ ? और पराक्रम भी कहाँ है ? परन्तु तो भी वे लोग तुम्हारे समान बलवान् पुरुषोंके निरादर करनेको समर्थ हुए॥ १०३॥ हा कंस ! एक साधारण बालकने तुम्हारे ऊपर अपना प्रभाव दिखाया, तुम्हारा जीवन भी मरण हुआसा विदित होता है, क्या कहूँ मैं भी अब जीवित नहीं हूँ॥ १०४॥ इस कारण क्या कहूँ, धिक्कार है तुम्हारे वीर्यको, धिक्कार है तुम्हारे इस राजत्वको अथवा मैं और अधिक क्या कहूँ तुम्हारे मनोरथ सभी विफल हो गये हैं, कारण कि पूतना बालकके हाथसे मारी गयी है।

बालाश्च प्रभवो यस्य तस्यान्ते जीवितात्सुखम् ॥ मरणे भाति मे कंस किं वदामि हताऽप्यहम् ॥१०४॥ धिग्धिग्वीर्य्यं तवेवेदं धिग्राजत्वं वदामि किम् ॥ सर्वं वै विफलं जातं बालकेन हतं तथा ॥१०५॥ अधुना किं वदिष्यामि वद कंस महाबल ॥ भगिनी निहता मे हि धिग्धिङ् मां व्यर्थजीविनीम् ॥१०६॥ विनाशसमये बुद्धिर्मर्त्यानां काननौकसाम् ॥ विपरीता भवेद्भव्यं कोऽन्यथा कर्तुमीश्वरः ॥१०७॥ गमिष्यति पतिस्तस्या महाक्रोधी घटोदरः ॥ अघासुरो बको वाऽपि भ्रातरौ क्रोधिनौ ततः ॥१०८॥ व्रजस्थानां च सर्वेषां ग्रसितारस्तु ते त्रयः ॥ गमिष्यन्ति फलं तेषां वैरस्य तु भविष्यति ॥ १०९ ॥

॥१०५॥ अब मैं क्या करूँ बताओ मेरी बहन तो मर गयी है फिर मेरे भी जीवित रहनेका कोई प्रयोजन नहीं; कारण कि ऐसी अवस्थामें जीवित रहनेको धिक्कार है॥ १०६॥ हे राजन्! मरनेके समय तपस्वी मनुष्योंकी बुद्धि विपरीत हो जाती है और भला होनहारको कौन मेट सकता है॥ १०७॥ अब जो कुछ हो, महाक्रोधित उसके पति घटोदर और कुपितस्वभाववाला बक और अघासुर यह दोनों भ्राता॥ १०८॥ यह तीनों जन अब व्रजमें जाकर

वहांके निवासियोंको मारें और पूतनाके मारनेवाले अपने वैरीको ढूंढें ॥१०९॥ कंस बोला कि पूतना स्वभावसे ही ज्ञानशून्य थी इसी कारण तो वह अपने स्तनोंमें विष लगाकर व्रजको गयी थी इसमें व्रजवासियोंका तो कुछ भी दोष नहीं है॥११०॥तो भी तुम यदि निश्चय जानती हो कि व्रजवासियोंने ही उसको मारा है तो अघासुर और बकासुर इन दोनोंको ही वैरीकी खोज करनेके लिये भेज दो॥१११॥अथवा आज तृणावर्त्त जो मेरा परम प्यारा है वही मेरी आज्ञासे व्रजका नाश करनेके लिये जायगा ॥११२॥ हे वृकोदरि ! अब घटोदरादि असुर जबतक यहाँ नहीं आते हैं तबतक तुम मेरे घरमें रहो,

कंस उवाच ॥ स्वयमेव गरालिप्तस्तना मूढा गता हि सा ॥ दूषणं नहि केषांचित्तेषां वै व्रजवासिनाम् ॥ ११० ॥ यदि जानामि ते नाशं नीता वैरं तु वै शुभम् ॥ अघासुरबकौ तत्र गच्छतो बलवत्तरौ ॥ १११ ॥ अथवाऽद्य तृणावर्त्तो भृशं मे चातिव ल्लभः ॥ गमिष्यति मयाऽऽज्ञप्तो व्रजनाशाय साम्प्रतम् ॥११२॥ घटोदरादयो यावत्समेष्यन्ति वृकोदरि ॥ तावत्त्वं तिष्ठ मद्गेहे यावत्कार्य्यं प्रसिध्यति ॥ ११३ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ इति कंसवचः श्रुत्वा न स्थिता सा वृकोदरी ॥ जगाम भगिनीशोक मूर्च्छिता निजमन्दिरम् ॥ ११४ ॥ कंसोऽपि तद्वत्सस्मार राजकार्य्यं समाकुलः ॥ अहं च गोपसदने बालचेष्टाभिरद्भुतम् ॥ ॥ ११५ ॥ सुखं महद्ददानस्तु तत्र नन्दयशोदयोः ॥ यदि मे जननी रात्रौ सुप्ता निद्राकुला भवेत् ॥ ११६ ॥

फिर मेरा कार्य सिद्ध होनेपर अपने स्थानको चली जाना॥११३॥श्रीकृष्णजी बोले कि उस समय वृकोदरी भगिनीके शोकके मारे ज्ञानशून्य हो गयी थी, इस कारण कंसके वचनोंको न मानकर अपने घरको चली गयी ॥११४॥ उस समय कंस व्याकुल हृदयसे अपनेको निरुपाय विचार राजकार्य देखनेमें प्रवृत्त हुआ, इधर मैं भी गोपराजके घर रहकर बाललीला कर ॥११५॥ नन्द और यशोदा दोनोंहीको सुख देने लगा, यदि मेरी माता रात्रिमें सो

जाती ॥११६॥ तो मैं रोकर उनको जगा देता था, वह भी उसी समय जागकर ताली बजा बजाकर मुझे खिलाने लगती थी ॥११७॥ और गीत गाती हुई यह कह २ मुझे प्यार करती थीं, कि हे बेटा! तुम हमारे प्राणोंसे भी प्यारे हो मेरा जीवन तुम्हारे ही अधीन है ॥ ११८ ॥ इस कारण तुम रुदन मत करो और आनन्दके साथ सो जाओ, तुम्हें व्याकुल देखकर सभी मुझे अत्यन्त व्याकुल दिखाई देते हैं इस कारण तुम सुखसे सो जाओ, और क्या कहूँ तुम्हारे जागनेसे मैं भी जागती रहती हूँ तुम सो जाते हो तो मैं भी सो जाती हूँ॥११९॥ बेटा! तुम जो भूँखे हो तो दूध

तदाहं रोदनमिषान्निद्राभङ्गं करोम्यलम्॥जागरं समवाप्याशु करोति करवादनम् ॥११७॥ सा गायति मुने गानं लालयन्ती भृशं हि माम्॥त्वं मे प्राणप्रियो वत्स त्वदाधारं हि जीवनम्॥११८॥रोदनं त्वं मा च कृत्वा सुखं शयनमाचर॥त्वयि जाग्रति जागर्मि त्वयि सुप्ते स्वपाम्यहम् ॥११९॥ स्तनं पिब क्षुधार्त्तोऽसि त्यक्त्वा रोदनमञ्जसा॥ कदाचिदङ्कमारोप्य शयनं कारयत्यपि॥क्षणं निद्राऽभवत्तस्या जागरो जायते निशि ॥१२०॥ सुखमास्वादयन्ती मे चुम्बनालिङ्गनादिभिः ॥ जागरे दर्शनात्सौख्यं निद्रया स्वप्नदर्शनात् ॥१२१॥ स्वभावात्पुत्रभावेन मयि स्नेहपराऽभवत् ॥ एवं निशा व्यतीता चेत्प्रातः कालो भवेद्यदि ॥ १२२ ॥

पी लो अब रोओ मत, यह कहकर वह मुझे कभी गोदीमें उठाती और कभी सुला देती थी. सारांश यह है कि वह रात्रिमें बहुत कम सोती थी, अधिक समय जागते ही व्यतीत होता था॥१२०॥मेरे चुम्बन करने और आलिंगनसे उनको अपूर्व सुख होता था,वह जबतक जागती रहती थीं तबतक मुझे ही देखती रहतीं और अत्यन्त ही प्रीति करती थीं, फिर जब वह सो जाती तो स्वप्नमें मुझे ही देखती॥१२१॥और आलिंगन कर अपूर्व आनन्द मानती थीं,मेरे क्षणकालको भी न देखनेसे वह स्थिर नहीं रह सकती थीं,फिर जो मैं सोते हुएमें क्षणमात्रको भी उनकी शय्यासे दूर हो जाता तो वह धीरे२सर

काकर मुझे अपने पास सुला लेती थीं उनको स्वाभाविक पुत्रभावसे मेरे ऊपर अधिक स्नेह हो गया था, इस प्रकारसे रात्रिके बीत जानेपर प्रभातको ही ॥१२२॥ माता उठकर मेरा मुख धोती थीं और बारम्बार मेरे शरीरको देखकर अपने हृदयमें अपूर्व आनन्दको मानती थीं, उनका मन आनन्दके मारे अत्यन्त ही प्रफुल्लित हो जाता था ॥१२३॥ वह इस प्रकार मनोहर वचन मुझसे कहतीं कि हे बेटा! उठो, तुम्हारा मंगल हो तुम्हारे मुखचन्द्रको ॥१२४॥ देखकर और सब लोग भी अत्यन्त आनन्दको मानेंगे, मैं भी तुम्हारा दर्शन करके घरके कार्यमें लगूं, और क्या कहूं तुम्हारे शरीरका दर्शन करना हमें साक्षात्

समुत्थायाथ जननी मुखं पश्यति मे भृशम्॥ विलोक्य वदनं रम्यं सा तस्य नयनाम्बुजम्॥१२३॥ मोदमायाति परमं ततो वदति शोभनम्॥ उत्तिष्ठ तात भद्रं ते पश्यन्ती ते मुखाम्बुजम्॥ १२४॥ सदा करोमि कार्य्याणि त्वन्मुखं मम मङ्गलम्॥ एवं नन्दोऽपि मां वीक्ष्य मोहमाप्नोति शाश्वतम्॥१२५॥ आरोप्याङ्कमथो मूर्ध्नि समाघ्राय समाहितः॥ मुख चुम्बति मोदेन पुनः पश्यति मे मुखम्॥ १२६॥ कदाचिदङ्क आदाय स्वकण्ठे योजयत्यपि॥ अनुभूयाशेषसुखमुभाभ्यामुच्यते कथा॥ १२७॥ परस्परानुमोदेन स्नेहेन मयि नारद॥ आवां धन्यौ यतः पुत्रो गते वयसि शोभनः॥ १२८॥

मंगलका देनेवाला है, महात्मा नन्दजी भी मुझे देखकर सर्वदा ही इस प्रकारका आनन्द भोगते थे॥१२५॥ और अत्यन्त प्रीतिके साथ मुझे गोदीमें लेकर मेरा मस्तक सूंघते, फिर मेरे मुखको चुम्बन करके अपूर्व आनंदके साथ मेरे मुखको देखते थे॥ १२६॥ और कभी मुझे गोदीमें लेकर छातीसे लगाते थे तब उसी समय दोनों जने अत्यन्त ही आनन्दको मानकर अनेक प्रकारके वचन कहने लगते थे॥१२७॥ कि हम दोनोंका अहोभाग्य है जो

वृद्धावस्थामें यह पुत्र प्राप्त हुआ है ॥ १२८ ॥ हमारे प्राणोंसे भी यह अधिक प्यारा है, ईश्वरके निकट प्रार्थना करते हैं कि यह सहस्रा वर्ष जिये, क्या जानते हैं कि कौनसे दोषसे यदि कोई उपद्रव हो जाय, इस लिये इसको कभी बाहर लेकर नहीं बैठना चाहिये ॥ १२९ ॥ इसके माथेमें रक्षाके लिये काजलका काला टीका भले प्रकार लगाकर और गलेमें रामनाम अंकित स्तव और शेरका नखून पहरा दो ॥ १३० ॥ यह बालक हमारा और तुम्हारा दोनोंका ही जीवन है; हम लोगोंने प्रथम परमेश्वरकी सेवा की थी उसीके पुण्यके प्रतापसे ऐसे पुत्ररत्नको अपनी गोदीमें लेनेके लिये समर्थ हुए हैं

संबभूव प्रियो जीव्यात्सोऽयं व शरदां शतम् ॥ विभवो दृष्टिदोषेण बहिः स्थाप्यो न ते क्वचित् ॥ १२९ ॥ दृष्टिदोषनिवाराय भाले कज्जलकं कुरु ॥ कण्ठे व्याघ्रनखं चैव रामनामाङ्कितं स्तवम् ॥ १३० ॥ आवयोर्जीवनं बालः सेवितः परमेश्वरः ॥ तेन पुण्येन पुत्रोऽसा आवयोरङ्कगः स्फुटम् ॥ १३१ ॥ एवं प्रातः समुत्थाय विलोक्य वदनं मम ॥ विचित्रवाक्यौ पितरौ नितरां मुदमापतुः ॥ १३२ ॥ पश्चान्मे जननी मह्यं स्थापयित्वा निजान्तिके ॥ पश्यन्ती मन्मुखं शश्वन्ममन्थ दधि भाजने ॥ १३३ ॥ गायन्ती मम कर्माणि गीतानि तु महोत्सवे ॥ यानि योगिभिरत्यन्तं कालत्रयकृतानि हि ॥ १३४ ॥ यत्किञ्चिद्गृहकर्म्माणि कुरुतेऽहर्निशं तु सा ॥ गायन्ती मम कर्म्माणि पापं शामयतीत्यलम् ॥ १३५ ॥

॥ १३१ ॥ इस प्रकारसे पिता और माता दोनों ही प्रभातको उठकर मेरे मुख कमलको देख अत्यन्त आनन्दके साथ विविध प्रकारके बचन कहते थे ॥ १३२ ॥ इसके पीछे मेरी माता मुझको अपने सामने बैठाकर बारम्बार मेरे मुखकी ओर देख फिर दही बिलोने लगती थीं ॥ १३३ ॥ और गोपियें भी उत्साहके देखनेके निमित्त जो हमारे तीनों कालके करनेयोग्य कर्म परंपरासे गान किये गये हैं वह भी उन सबको गाती थीं ॥ १३४ ॥ इस रीतिसे

वह जो कुछ भी घरका काम करतीं उसी समय हमारी पापनाशिनी कथा परम्पराका गान करती थीं ॥ १३५ ॥ इसी प्रकार नन्दजी तथा समस्त गोपगणोंके चित्तसे मेरा स्वरूप कभी क्षणभरको भी विस्मरण नहीं होता था, और प्रतिदिन सब गोपियें एकान्तचित्त होकर॥ १३६॥मेरे मुखको देखती हुई अत्यन्त आनन्दके साथ गीत गाने लगती थीं,मेरे बालरूपको देखकर मोहित हो उनका मन कभी भी नन्दजीके घरसे जानेको नहीं करता था ॥१३७॥वह श्रीफलमिश्रित सिता, विचित्र वस्त्र, रमणीक पगड़ी; मनोहर कन्दुक और ताम्बूल तिलक इत्यादि द्रव्योंको अपने २ साथमें लाती

तथैव नन्दगोपोऽपि न मां विस्मरति क्वचित् ॥ आगत्यानुदिनं तत्र गोप्यः सर्वाः समन्ततः ॥ १३६ ॥ मुखं विलोकयन्ति स्म गायन्त्यो नन्दमन्दिरम् ॥ न त्यजन्ति कदाचिद्वै बालरूपविमोहिताः ॥ १३७ ॥ आनयन्ति च गोप्यस्ताः सितां श्रीफलमिश्रिताम् ॥ वसनानि विचित्राणि तथोष्णीषं च कन्दुकम् ॥ १३८ ॥ अन्यच्च परिधानीयं ताम्बूलं तिलकं तथा ॥ तथा कुलोचितं ताश्च पूजितास्तु यशोदया ॥ १३९ ॥ यान्ति स्वं स्वं गृहं प्रातः पुनरायान्ति वीक्षितुम् ॥ अनेकसुखपूरैश्च गोपा गोप्यस्तथा व्रजे ॥१४०॥ विस्मृत्य गृहकार्य्याणि मां विलोकितुमागताः ॥ गणयन्ति न वै किञ्चिन्ममानन्दवशीकृताः॥१४१॥

थीं, यशोदाजी उन सभीकी कुलोचित पूजा करती थीं॥ १३८॥ १३९॥पूजाके समाप्त होनपर सभी अपने२घरोंको चली जाती थीं,और फिर प्रातःकाल होते ही नन्दजीके घर पहलेके समान मेरे दर्शनोंकी इच्छासे सभी इकट्ठे होते थे,इस रीतिसे व्रजवासी गोप और गोपियें आनन्दमें पूर्ण होकर ॥१४०॥ अपने २ घरोंके कार्यको भूलकर नित्य आते जाते रहते थे, मेरे आनन्दके वशीभूत होकर उनको किसी विषयकी इच्छा नहीं रहती थी ॥ १४१ ॥

में भी गोप और गोपियोंको अनेक प्रकारके सुख देता था, इस रीतिसे इक्यासी दिन व्यतीत हुए ॥१४२॥ और मेरे जन्म दिनका दिन आया, ज्यो-
तिषियोंने गणना की और मेरे पिता माताने सत्कुलमें उत्पन्न पवित्र चरित्रोंसे युक्त गोपियोंको यथाविधानसे बुलाया ॥ १४३ ॥ गायक, स्तुति
करनेवाले, सूत, बन्दीगण, मागध इत्यादि आकर उस समय ऊंचे स्वरसे हमारे माहात्म्यसूचक गीतोंको गाने लगे (उस समय गोपियोंने भी अनेक
प्रकारके रागोंसे गाना प्रारम्भ किया और कहने लगीं) ॥१४४॥कि हे अनन्त ! हे आनंद ! हे गोविन्द ! हे गोकुलेश ! हे जनार्दन ! हे नारायण !

निरीक्ष्य गोपान्गोपीश्च करोमि सुखदं स्मितम् ॥ एवं दिनान्यतीतानि एकाशीतिर्महामुने ॥१४२॥ जन्मर्क्षयोगे चायाते ज्यो
तिर्विद्भिर्निवेदितम् ॥ समाहूतास्तत्र गोप्यः कुलजा मङ्गलान्विताः ॥१४३ ॥ गायका नामकाराश्च तथान्ये सूतमागधाः ॥
जगुरुच्चैस्तालपूर्वं मम माहात्म्यसूचकम् ॥ १४४ ॥ अनन्तानन्द गोविन्द गोकुलेश जनार्दन ॥ नारायण हृषीकेश कृष्ण
दामोदर प्रिय ॥ १४५ ॥ परेश परमानन्द जगदीश जगत्पते ॥ कृपासिन्धो मनोज्ञाज्ञ मारमोहन पावन ॥ १४६ ॥ श्रीपते
सर्वकृद्विष्णो चिरं विभवदाच्युत ॥ भूतभावन भूतात्मन्भूतकोटचेकपालक ॥ १४७ ॥

हे हृषीकेश ! हे कृष्ण ! हे दामोदर ! हे प्रिय ! ॥ १४५ ॥ हे परमेश ! हे परमानन्द ! हे जगदीश ! हे जगत्पते ![हे जगन्नाथ ! हे जगत्स्वामिन्!
हे अधोक्षज ! हे अशेषवित् ! हे देवताओंकी आत्माके साक्षी ! हे अनादि ! हे अविनाशिन् ! हे अव्यय !] हे कृपासिन्धो ! हे मनोज्ञ ! हे
आत्मन् ! हे मारमोहन ! ॥१४६॥हे पावन ! हे श्रीपते ! हे सर्वकृत् ! हे विष्णो ! हे विभवप्रद ! हे अच्युत ! हे भूतभावन ! हे भूतात्मन् !हे करोड़ों भूत

कोटिके अकेले पालनकर्ता ॥ १४७ ॥ हे मत्स्य ! हे कूर्म ! हे वराह ! हे नृसिंह! हे द्विजनायक! हे नृपतिश्रेष्ठ! हे श्रीराम! हे सर्वेश्वर! तुम्हें नमस्कार है॥ १४८॥ इस प्रकारसे व्रजवासी गोप और गोपियें अनेक प्रकारके रागोंसे हमारे महोत्सवका गान करने लगीं॥ १४९॥ सभी इस महोत्सवको देखकर अत्यन्त आनन्द मानते थे, ब्रह्मादि देवता भी इस महोत्सवको देखनेके निमित्त वहां आये॥ १५०॥ इति श्रीआ० पु० सूतशौनकसंवादे भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८॥ श्रीभगवान् बोले कि स्वयं ब्रह्माजी भी उस समय अपने स्थानसे देवताओंके साथ आकर व्रजवासियोंमें मिले, इसके पीछे शिवजीभी अपने गणोंके

मीन वाराह कूर्म्माङ्ग नृसिंह द्विजनायक ॥ श्रीराम नृपतिश्रेष्ठ सर्वेश्वर नमोऽस्तु ते ॥१४८॥ इत्याद्युच्चैर्जगुर्गोप्यो नानाराग महोत्सवैः ॥ १४९ ॥ गोपा गोप्यो गोकुले भ्राजमानाः सर्वैर्भावैर्मोदमापुर्मुनीश ॥ ब्रह्मादयो देवगणाश्च तत्र तमुत्सवं द्रष्टुमुपागताश्च ॥१५०॥ इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे वैयासिके नारदशौनकसंवादे कृष्णजन्मर्क्षयोगोत्सवो नामाष्टादशोऽध्यायः॥१८॥ श्रीभगवानुवाच॥स्वधाम्नस्तत्क्षणे भूत्वा व्रजेशैः संयुतो विधिः॥ शिवलोकादथ शिवः सगणः समगात्ततः॥१॥ निरीक्ष्योत्सवमाश्चर्य्यं सर्वे विस्मयमाययुः ॥ अहो ब्रह्माण्डकोटीनामीशो बालस्वरूपधृक् ॥ २ ॥ अल्पपर्य्यङ्कमध्यस्थः शेते छन्नः स्वमायया ॥ शोभनं जन्म चास्माकं कृतं च परमं तपः ॥ ३ ॥

साथ शिव लोक अर्थात् कैलाससे आकर यहां पहुँचे॥ १॥ सब लोग उस विचित्र उत्सवको देखकर आश्चर्यमय हो गये, उसी समय स्वयं ब्रह्माजी भी साश्चर्य हुए और फिर आनन्दसहित कहने लगे कि कैसा आश्चर्य है, जो अनन्तकोटि ब्रह्मांडके ईश्वर हैं वह अपनी मायाके वशीभूत होकर बालकरूपको धारण कर॥ २॥ एक छोटेसे पलंगके ऊपर सो रहे हैं, आज मैं उन बालकरूपधारी देवदेव जगत्पतिका सर्व मंगलोंका देनेहारा विचित्ररूप देखता हूं मैंने

इतने दिनोंतक वृथा ही तपस्या की थी॥३॥४॥ जिस कारणसे इस स्वरूपका दर्शन न हुआ आज उसी तपस्याका फल प्रकट हुआ, यह गोप और गोपियें तथा अन्य व्रजवासी सभी धन्य हैं॥५॥जिस कारणसे इनके मोक्षका मार्गस्वरूप भगवान् जनार्दनने बालकरूपको धारण कर जन्म लिया है जिसको सम्पूर्ण श्रुतियें नहीं देख सकतीं अथवा जिसको न जानकर नहीं नहीं कहकर त्याग कर दिया है॥६॥उसी विष्णुरूपी परमात्माने इस व्रजमें साक्षात् अवतार लिया है। अहो! नन्दजीकी स्त्री यशोदाजी कैसी भाग्यवती हैं॥७॥कि स्वयं भगवानको अपनी गोदीमें खिलाती हैं, प्रधान२ब्राह्मणोंके

यत्पश्यामः शुभं रूपं कृतबालस्वरूपिणः॥ एतावत्कालपर्य्यन्तं वृथा तप्तं तपो मया॥ ४॥ यदस्य रूपं नो दृष्टमिदानीं तत्फलं मम॥ धन्या गोपाश्च गोप्यश्च तथाऽन्ये च व्रजौकसः॥ ५॥ एषां मोक्षपथं विष्णुर्जातो बालस्वरूपधृक्॥ श्रुतयो यन्न पश्यन्ति नेतिनेतीति चाब्रुवन्॥६॥ न जानन्ति चिरं सोऽत्र साक्ष्यात्मा बालरूपधृक्॥ अहो भाग्यवती ह्येषा यशोदा नन्दगेहिनी॥ ७॥ यदेनमङ्कमारोप्य कृष्णं नन्दतिनित्यशः॥ यज्ञेषु द्विजमुख्याद्यैराहूतो मन्त्रकोटिभिः॥ ८॥ नायाति कर्हिचित्साक्षात्स एवास्याः सुतोऽभवत्॥ योगिभिश्चिन्तितो नित्यमप्रमत्तैर्जितेन्द्रियैः॥ ९॥

विविध प्रकारके यज्ञ करनेसे और करोड़ २मन्त्रोंके उच्चारणके साथ बुलानेसे॥८॥भी जो साक्षात् प्रकट नहीं होते वही जगन्नाथ विष्णु भगवान् यशोदाजीके गर्भमें उत्पन्न हुए हैं, इसके समान यशोदाजीके भाग्यकी बड़ाई और क्या हो सकती है? अथवा योगिगण भी सर्वथा संगको त्यागकर और जितेन्द्रिय हो नित्य जिसका ध्यान करते हैं उन्हीं साक्षात् जगत्पति भगवान् जनार्दनने यशोदाजीके गर्भको सुशोभित किया है॥ ९॥

अथवा श्रुतिमें कही हुई विधिके वश होकर अनेक यत्नोंके साथ मैं अधिकसे आधिक पुण्यकार्य करनेपर अथवा अभीष्ट कर्मके अनुष्ठान करनेपर भी परम बुद्धिमान् पुरुषगण॥१०॥जिनको प्रत्यक्ष देखनेमें समर्थ नहीं हुए थे वे ही ईश्वर यशोदाके पुत्र हुए हैं, इसके बराबर यशोदाजीके भाग्यकी विचित्रता और क्या हो सकती है॥११॥इन नन्दजीने बहुतसे पुण्योंको संग्रह कर और अनेक अभिलषित पुत्रकी इच्छासे अनुष्ठान किया है इस लिये सर्वदा भगवान्के मुखकमलको देखकर अपनी आत्माको पवित्र करते हैं इसके समान नन्दजीके भाग्यका विषय और क्या होगा ॥१२॥ ये

बहवः पुण्यकर्म्मिष्ठाः कर्म्मकृत्कृतबुद्धयः ॥ अनेकयत्ननिचयैः श्रुत्युक्तविधिवर्तिनः॥१०॥विलोकितुं न शक्तास्ते स्वरूपं धृतमैश्वरम् ॥ स एवास्याः पुत्रभावं प्राप्तोऽस्या भाग्यमद्भुतम् ॥११॥ नन्दोऽयं कृतपुण्यश्च पूर्त्तेष्टमकरोद्बहु ॥ भक्तियुक्तस्य देवस्य योऽसौ पश्यति तन्मुखम् ॥ १२ ॥ धन्या व्रजौकस इमे ये पश्यन्ति स्वरूपिणम् ॥ कृष्णं च तद्यशो नित्यं गायन्ति त्वनुरागतः ॥१३॥ यथा व्रजौकसां भाग्यं भवेत्को वर्णितुं क्षमः ॥ सुरासुरगणाराध्येयं बालरूपिणमीश्वरम् ॥१४॥ ये पश्यन्त्यनुगायन्ति प्रेम्णाऽऽलिङ्गन्त्यभीक्ष्णशः ॥ ब्रह्मेति मम संज्ञेयं पितृपितामहौ च यत् ॥ १५ ॥

सभी ब्रजवासी धन्य हैं, जो इन वासुदेव भगवान्के स्वरूपको सर्वदा देखकर आनन्दसहित इनके माहात्म्यका गान करते हैं॥१३॥इस कारण इन ब्रजवासियोंके भाग्यकी बड़ाई करनेमें किसकी सामर्थ्य है ? देखो ! देवगण भी जिसको देखनेके लिये सदा ही अत्यन्त आग्रहके साथ एकान्तिक इच्छा प्रकाश करते हैं ॥१४॥ उन्हीं चराचर जगत्के ईश्वरने विचित्र बालकरूपको धारणकर सर्वदा इनके दर्शनोंके निमित्त विराजमान रहते हैं और उनको प्रेममें भरकर बारम्बार आलिंगन करके अत्यन्त आनन्द पाते हैं इसके समान इनके भाग्यकी बड़ाई अधिक क्या हो सकती है?लोकमें जिस

को हमलोग ब्रह्म कहते हैं अथवा पितृपितामहके नामसे पुकारते हैं॥ १५॥ और मैं जो स्वयंभु सत्यलोकका ईश्वर कहलाकर सब जगह गिना गया हूँ सो वह सभी वृथा है इसमें संदेह नहीं. कारण कि यह नंदजी जिस प्रकारसे अनायास ही भगवान्‌को देखते हैं और आलिंगन करते हैं मैं इस प्रकारसे कभी करनेको समर्थन नहीं हूं॥ १६॥ पितामह ब्रह्माजी भी इस महोत्सवको देखकर ईर्षामें भर इस प्रकार कहते हुए उस समय अपने शरीर तकको भूल गये और खिंचे हुए चित्रके समान खड़े रहे ॥ १७॥ ब्रह्माजीके इस प्रकार वचन कहनेपर महादेवजी बारम्बार शिरको कम्पायमान करते हुए

स्वयम्भूः सत्यलोकेशो वृथैव नहि चान्यथा॥ यतो नाप्तं नन्दवन्मे दर्शनालिङ्गनादिकम्॥ १६॥ ईर्ष्यायुक्तो विधिस्तत्र दृष्ट्वा तं च महोत्सवम् ॥ न सस्मार तनुं स्वीयां चित्रार्पित इवाभवत् ॥ १७॥ अथ तत्र शिवः प्राह कम्पयन्स्वशिरो मुहुः ॥ महामहायोगचर्य्याविद्यायाः फलमेव च ॥ १८॥ किमेतदद्भुतं दृश्यं मानवं रूपमीक्षितम्॥ व्रजवासिजनैर्नित्यं किमेभिः सुकृतं कृतम्॥ १९॥ उद्गायति च नृपते यद्दृष्टं रूपमद्भुतम्॥ पत्न्यै त्वेवं समादिश्य त्यक्त्वा भस्मविलेपनम्॥ २०॥ कृत्वा घोरां योगचर्यां विचरामि प्रयत्नतः ॥ त्यक्त्वा भोगान्प्रियानेव ध्रियते हृदये मया ॥ २१॥ कामो नेत्राग्निना दग्धोऽद्य दृष्टोऽयं स्वरूपभृक् ॥ एते गृहोचितान्भोगान्भुञ्जन्ते कामिनः परम् ॥ २२ ॥

बोले कि बहुतसे मनुष्योंने महाकठिन योग किये हैं उसीके प्रभावसे॥ १८॥ भगवान्‌के इस मनुष्यरूपको देखते हैं, मैं नहीं जानता कि इन व्रजवासियोंने कितने पुण्य किये हैं॥ १९॥ उन्हींके प्रभावसे यह सर्वदा इस विचित्र मूर्तिका दर्शन करते हैं और आनंदित हो इनकी महिमाको गाते हैं, कारण कि मैं सबको त्यागकर ॥ २०॥ गाढ़ योगका अनुष्ठान करता हुआ इधर उधर फिरा और अनेक उपभोगोंका परित्याग किया ॥ २१ ॥ यद्यपि काम

देवको महादेवकी नेत्राग्निने भस्म करदिया था तथापि यह अदृष्टरूपसे सबको व्यापता है,इसी कारण यह कामी लोग गृहोचित भोगोंको भोगते हैं॥२२॥ समस्त श्रुतियें अखिल ऋषीश्वर और समाधियोगकी साधना करनेवाले योगी लोग जिन परमेश्वरकी गहन मायाको कुछ भी नहीं जानते ॥२३॥ परंतु व्रजकी गोपियें यशोदा नन्दजी तथा समस्त व्रजवासियोंको धन्य है जो उन्हें नित्य अपने नेत्रोंमे देखती हैं॥२४॥धन्य है उन व्रजवासियोंको कि जिनके नेत्रोंके सम्मुख परमेश्वर बालकरूप धारणकर क्रीडा करते हैं,जिन मन्दमति पुरुषोंने नारायणका आराधन नहीं किया उन्हें धिक्कार है॥२५॥

श्रुतयो मुनयश्चैव योगयुक्ताश्च योगिनः ॥ न विदुर्दुर्लभां मूर्त्तिं परेशरचितामहो ॥२३॥ व्रजौकसो धन्यतमास्तां पश्यन्तीह नित्यशः॥धन्या यशोदा नन्दश्च धन्यो धन्या व्रजौकसः॥२४॥येषामक्षिगतो भाति तनुजः परमेश्वरः॥धिग्जन्म तेषां मनुजै र्यैर्नैवाराधितो हरिः ॥२५॥ भक्तिहीनैर्जनैः कैश्चिन्नालोकि परमेश्वरः ॥ न कीर्त्तितो हरिर्यैन चिन्तितो मनसा न च ॥ २६ ॥ वृथा च सन्ति ते येषां जीवितं भक्तिवर्जितम् ॥ एभिस्तु नवधा भक्तिः कृता वै व्रजवासिभिः ॥२७॥ ये पश्यन्ति प्रतिदिनं रूपवद्ब्रह्म निर्गुणम् ॥ कृष्ण विष्णो परेशाद्य शिवरूपं वृथा मम ॥२८॥ आनन्दभवसंप्लावैर्न सस्मार निजां तनुम् ॥ ततो नराधिपः प्राह धिगस्मान्देवरूपिणः ॥ २९ ॥

भक्तिभावरहित जिन पुरुषोंने नारायणका दर्शन नहीं किया,जिन्होंने नारायणका कीर्त्तन अथवा एकाग्र मनसे विचार नहीं किया॥२६॥उनका जन्मही वृथा है,और जिनके हृदयमें नारायणकी भक्तिका प्रादुर्भाव नहीं है उनका जीवन निष्प्रयोजन है,परंतु इन व्रजवासियोंको धन्य है जो इन्होंने नारायण की नौ प्रकारकी भक्ति की है ॥२७॥जो व्रजवासी निर्गुण परमेश्वरको साक्षात् बालरूप धारण किये हुएको अपने नेत्रोंसे देखते हैं और हे कृष्ण ! विष्णो ! हे परमेश्वर! हे आदिपुरुष ! ऐसा उच्चारण करते हैं उन्हींको धन्य है मेरा यह शिवरूप वृथा ही है॥२८॥इस प्रकारके वचन कह आनंदके वेगसे

गद्गद हो अपने शरीरकी सुधि भूल गये तब महेन्द्र(इन्द्र)कहने लगे कि हमारे देवरूपधारण करनेको धिक्कार है॥२९॥जो कि मैं इकला स्वर्गमें रहकर भी ऐसे सुख और आनन्दके पानेको कभी समर्थ नहीं हुआ.अहा! कैसा आनंद है और कैसा विचित्र भाव है।उस समय यम,अग्नि और वरुण इत्यादि और लोकपाल भी॥३०॥मेरी ओरको कटाक्ष करते हुए सब प्रकारसे संतोष पानेके निमित्त इस रीतिसे कहने लगे,इसी अवसरमें मैंने उसी बालकरूपसे रोदनकर सबको मोह उत्पन्न करा दिया॥३१॥वह भी अत्यन्त मोहित होकर अपने२स्थानोंको चले गये,जाते हुए सभी जन मुझे प्रणाम करने लगे सभी

स्वर्गस्थैरपि यैर्नैव सुखमत्रानुभूयते ॥ इत्थमन्येऽपि लोकेशा यमाग्निवरुणादयः ॥३०॥ ऊचुर्मया कटाक्षेण वीक्षितास्तुष्टिमागताः ॥ ततोऽहं बालरूपेण प्रारोदन्मोहयंश्च तान् ॥३१॥ विमोहितास्ते प्रययुः स्वं स्वं स्थानं प्रणम्य माम् ॥ अद्भुतं कथयंश्चैव यद्दृष्टं परमोत्सवम् ॥३२॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ मुने गोपाश्च गोप्यश्च गायमानाः परस्परम् ॥ आनन्दसंप्लुवे मग्ना गता दूरं ममान्तिकात् ॥३३॥ प्रेङ्खस्थितं मां विस्मृत्य प्रसुप्तमिव मां विदुः ॥ आत्मनो गुणगानस्य श्रवणेऽभून्मनो मम ॥ ३४ ॥ नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ॥ मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥ ३५ ॥

को इस उत्सवके देखनेसे अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न हुआ था फिर वह सब आपसमें मिलकर इसी विषयकी वार्ता करने लगे ॥३२॥ श्रीकृष्णजी बोले कि, हे मुने! गोप और गोपियें आनंदके मारे मग्न होकर गीत गाते२मुझे भूलकर मेरे पाससे दूर चली गईं॥३३॥मैं पलंगपर सोता रहा वह सभी यह विचारती थीं कि,मैं गाढनिद्रामें सो रहा हूं वह उस समय मेरे गुणोंका गान कर रही थीं, मैं एकाग्रचित्त होकर उनको सुनने लगा ॥३४॥हे नारद ! न तो मैं वैकुंठमें वास करता हूं और न मैं योगियोंके हृदयमें ही बसता हूं परंतु जिस स्थानपर मेरे भक्त मेरा स्मरण करते हैं मैं उसी स्थानपर विराजमान

रहता हूँ ॥३५॥ यह व्रजवासी लोग सर्वदा मेरा नाम लेते सुनते और कीर्त्तन करते हैं और अज्ञानताके वशसे मुझे मनुष्य मानते हैं ॥३६॥ मेरे भक्तके समान संसारमें पिता, माता और गुरु कोई भी नहीं है, मेरी समान संसारमें बन्धु भी दूसरा दिखाई नहीं देता, यह तो वेदोंके जाननेवालोंको विदित ही है॥३७॥ जो मनुष्य मेरे भजन करनेवाले मनुष्यको अलग करते हैं वह मेरे द्वेषी हैं इसी कारणसे वह बड़ेभारी नरकमें गिरते हैं, कोई व्यक्ति यदि प्रेम और भक्तिके साथ व्याकुल होकर मेरी महिमाका गान करे तो मैं उसको आग्रहके साथ सुनता रहता हूं, यह गोप और गोपियें भी सर्वदा प्रेममें

नित्यं शृण्वन्ति गायन्ति मत्कीर्तिं ते व्रजौकसः ॥ मनुष्यबुद्ध्या पश्यन्ति लोका मामन्धदृष्टयः ॥३६॥ मद्भक्तसदृशो लोके पिता माता गुरुर्न हि ॥ न बन्धुर्नापरे चैव इति वेदविदो विदुः ॥३७॥ ये मत्कीर्तौ जनं सक्तं पृथक्कुर्वन्ति मानवाः ॥ तथा मद्द्वेषिणो नित्यं पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥३८॥ शृणोमि स्वयशोगानं प्रेम्णा भक्तैरुदाहृतम् ॥ कृतं गोपैश्च गोपीभिर्गानं त्यक्त्वा च कौतुकम् ॥३९॥ ततः प्ररुद्य रोषात्तु पद्भ्यां च शकटो हतः ॥ शकटः पर्य्यगाद्भिन्नभाण्डोपस्कारपूजितः ॥ ४० ॥ निशम्य शकटं भग्नं किमेतदिति विस्मिताः ॥ तत्रागता मां ददृशुरक्षतं हृष्टमानसम् ॥ ४१ ॥

भरकर भक्तिके साथ मेरे माहात्म्यका गान करती हैं॥३८।३९॥ वह इस प्रकारसे गीत गा रही थीं कि उसी समय मैंने क्रोधित हो ऊंचे स्वरसे रोदनकर अपने चरणकी सहायतासे शकटमें आघात किया तो वह उसी समय उलट गया, उसमें जो बरतन इत्यादि रक्खे थे॥४०॥ वह सब उसी समय टूट फूट गये, शकटके टूटजानेसे उसके शब्दको सुनकर सबलोग यह क्या हुआ इस प्रकारकी चिंता करते हुए अत्यन्त आश्चर्ययुक्त हो वहां आये और मुझको अच्छीतरहसे खेल

ता हुआ देखा ॥४१॥ फिर उसी समय मुझको गोदीमें उठा लिया और वे लोग विस्मयसहित भाँति २ के सन्देह करते हुए आपसमें कहने लगे। कि किस मनुष्यने इस शकटको तोड़ा है, शकटके टूटनेका कोई कारण भी हम नहीं देखते हैं ॥ ४२ ॥ वहां जो बालक खेल रहे थे वह उनके पूछनेसे कहते हैं कि इसी बालकने लात मारकर शकटको तोड़ा है, यह बात हमारे सामने हुई है इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं ॥४३॥ बालकोंकी यह बात सुनकर किसी मनुष्यको भी उनके कहनेका विश्वास न आया। गोप और गोपियें सभी इकट्ठे होकर अत्यन्त आनन्दके साथ मुझे अपनी गोदीसे मेरी माताकी

उत्थायाङ्कगतं चक्रुस्तर्कयन्ति सचित्रधा ॥ केनेदं शकटं भग्नं दृश्यतेऽस्य न कारणम् ॥ ४२ ॥ बाला ऊचुरनेनेति शकटः प्रपदा हतः ॥ विपर्य्ययगान्न सन्देहो दृष्टमस्माभिरत्र हि ॥ ४३ ॥ तेषां न श्रद्दधुर्वाचो बालभाषितमित्युत ॥ अन्यभावास्तेन तत्र गोपा गोप्यः समन्ततः ॥ ४४ ॥ सम्यग्विधाय शकटं ततो दानान्यदुर्मुदा ॥ गाः स्वर्णरूप्यवासांसि रत्नान्यन्नानि श्रद्धया ॥ ४५ ॥ आशिषः प्रददुर्विप्राः कोटीः सन्तुष्टमानसाः ॥ यशोदया च नन्देन गोप्यो गोपाश्च पूजिताः ॥ ४६ ॥ प्रययुः स्वगृहाण्येव दत्त्वा च परमाशिषः ॥ आगत्य नानादेशेभ्यो याचकास्तत्र आवसन् ॥ ४७ ॥

गोदीमें देने लगे, और बारम्बार आशीर्वाद देते हुए महात्मा नन्दजीने भी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको बुलाया और शान्ति करवाई॥४४॥ फिर शकटको सम्भाल कर अच्छी तरहसे रक्खा और प्रसन्नचित्त हो गो, सुवर्ण, चाँदी, वस्त्र, रत्न और विविध प्रकारके भोजनकी सामग्री अनेक प्रकारकी वस्तुएँ श्रद्धाके साथ ॥४५॥ उन ब्राह्मणोंको दान कीं, वे ब्राह्मण भी सन्तुष्ट होकर आशीर्वादोंको देते हुए अपने २ स्थानोंको चले गये, इसके उपरान्त पिता नंदजीने यशोदाजीके साथ मिलकर गोप और गोपियोंकी यथाविधानसे पूजा की ॥ ४६ ॥ वे भी आशीर्वाद देते हुए अपने अपने घरोंको चले गये

इधर याचक लोग दूर २ से आ आकर वहां वास करने लगे॥४७॥तब नन्दजीने भी उनको इतना अधिक धन दान किया कि वह एकबार ही धनी हो गये; भांति २ की विद्यासे अपनी आजीविकाका निर्वाह करनेवाले मनुष्य इस बड़े भारी दानके वृत्तान्तको सुनकर ॥४८ ॥ उसीके समान व्रजमें रहने लगे और वह वहांसे कहींको भी नहीं जाते थे.हे नारद!मेरे रहनेसे समस्त व्रजवासी शोकशून्य और सर्वदा स्वस्थ शरीरसे निवास करने लगे,किसीको भी किसी प्रकारका दुःख और दरिद्रताका लेशमात्र भी नहीं था, सभीजन हृष्ट पुष्ट और सर्वतोभावसे भावयुक्त थे,सभीका मन सदा ही सन्तुष्ट रहता था ॥

संगृह्य नन्ददानानि परं ते धनिनोऽभवन् ॥ श्रुत्वा दानं महत्तत्र दीना विद्योपजीविनः ॥ ४८ ॥ वसन्ति स्म व्रजे नित्यं न यान्त्यन्यत्र कर्हिचित् ॥ आधिव्याधिविनिर्मुक्तास्तापत्रयविवर्जिताः ॥ ४९ ॥ आसन्व्रजौकसः सर्वे मन्निवासेन नारद ॥ यत्र मे श्रवणादीनि मङ्गलानि भवन्ति हि ॥ तत्र किञ्चिन्न दुःखं स्यात्किं पुनर्मम वासतः ॥ ५० ॥ नारद उवाच॥ भगवन्देवदेवेश श्रीकृष्ण करुणाकर ॥ श्रुत्वा ते बालचरितं न मनस्तृप्यते मम ॥ ५१ ॥ इन्द्राद्यैः संस्तुतं को नु तद्बालचरितं हरेः ॥ न शृणोत्यभितो मर्त्यः श्रोतव्यममरोत्तमैः ॥ ५२ ॥

॥ ४९ ॥ हृदय सर्वदा ही प्रफुल्ल और आत्मा निरवच्छिन्न प्रीतिसे पूर्ण था. हे नारद! जिस स्थानपर सर्वदा मेरा नाम और महिमा श्रवणादि रूप मंगलका देनेवाला अनुष्ठान होता है उस स्थानपर कभी विपत्तिका लेश भी नहीं आता,जहां मैं साक्षात् विराजमान रहता हूं फिर उस स्थानकी वार्ता और क्या कहूं ?॥५०॥श्रीनारदजी बोले कि,हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे श्रीकृष्ण! हे करुणाकर !आपके बालचरित्रोंको सुनकर मेरे मनकी तृप्ति नहीं हुई॥५१॥ इन्द्रादि देवगण आपके बालचरित्रोंको सुनकर स्तुति करते हैं, मृत्युलोकवासी उसके सुननेसे वञ्चित रहते हैं, यदि मृत्युलोकवासी नर नारी सुनें तो

वह मनुष्यत्वसे देवभावको प्राप्त हो जायँ ॥ ५२ ॥ सो हे नाथ ! कृपा कर अपने बालचरित्रोंको कहिये, उसके सुनते ही संपूर्ण मनुष्योंकी मलीनता दूर होकर उसी समय सब पवित्र हो जायँगे, इस कारण मुक्त, मुमुक्षु और विषयी लोग सभी प्रीतिमें भरकर श्रद्धाके साथ भक्तिमान् हो उसको सुनकर पग २ पर अत्यंत ही आनंदको भोगते हुए परम पुरुषार्थरूप मुक्ति पदार्थको पावेंगे, इसमें किंचित् भी संदेह नहीं. इस कारण हे आर्य! हे भगवन्! हे पतितपावन ! हे चराचरेश! पूर्णस्वरूप! अनुग्रह करके उसको आप कहिये, हमारे सेवक हैं, हमारे भक्त हैं, हमारे अनुगत हैं, हमारे आश्रित हैं, शरणमें आये हुए हमारे ऊपर प्रीति करके सुखका देनेहारा चरित्र कहिये उसके सुननेके निमित्त हमलोग अत्यंत ही उत्कंठित हो रहे हैं, इसी कारण हम मनको कुछ भी स्थिर नहीं कर

कृपया ब्रूहि मे नाथ आत्मीयं बालचेष्टितम् ॥ यस्य श्रवणमात्रेण शुध्यन्ति मलिना जनाः॥५३॥ भगवानुवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि बालचेष्टितमात्मनः॥ शृण्वतां परमानन्दकारणं भक्तिभावनम् ॥५४॥ अङ्कमारोप्य जननी यदा पश्यति मे मुखम्॥ ब्रवीति पुत्र वत्सेति तदा मे जायते स्मितम्॥५५॥ अहो बलं मे मायायाः सर्वेशमपि मामियम् ॥ जानाति पुत्रं बाल्येन सुस्मितास्यसुखप्रदम् ॥ ५६ ॥ इति ज्ञात्वा मया मात्रे पुत्रप्रेमनियोजितम् ॥ जानूपरि तु संवेश्य सर्वाङ्गं वीक्ष्य मामकम् ॥ ५७ ॥

सकते ॥५३॥ भगवान् बोले कि, हे मुने! सुनो मैं अपने बालचरित्रोंको कहता हूं, उसके सुननेसे मनुष्य जिस प्रकार पग २ पर परमानंदको पाते हैं वैसे ही उनके हृदयमें भक्तिका प्रवाह प्रवाहित होकर अंतमें मुक्तिके मार्गमें ले जाता है इसमें किंचित् भी संदेह नहीं॥५४॥ माता यशोदाजी प्रीतिमें भरकर मुझे अपनी गोदीमें ले मेरे मुखकमलको देखती हुई मुझे पुत्र कहकर पुकारतीं तो मैं उनको स्मरण करता हूं ॥५५॥ अहा! मेरी माया कैसी बलवती है, मैं चराचर संसारका अद्वितीय ईश्वर हूं, तो भी माता मुझे अपना पुत्र मानती है, मैं भी उसी बालकरूपसे अत्यंत ही प्रसन्नचित्त होकर माताको आ

नन्दित करता हूं। हे नारद! मेरा यथार्थरूप पीछे ज्ञात होगा इसी कारणसे मैंने माताको पुत्ररूपी प्रेममें फँसा रक्खा है, वह उसी भ्रममें भरकर प्रफुल्लित हो मुझको अपनी जंघापर बैठाकर मेरे समस्त शरीरको देखती हुई॥५६॥५७॥ फिर मुझसे नाना प्रकारकी बातें पूछती थीं उनको सुनकर मैं कुछ एक हँसता था और कभी२ बालस्वभाव होनेके कारण बारंबार कहनेपर भी चुप रहता था॥५८॥ उसको देखकर गोप गोपियें समस्त ही आनंदित होते थे, वह सभी मेरे स्वरूपके पक्षपाती हो गये थे, वह एक क्षणको भी मेरे बिना देखे नहीं रहते थे॥५९॥ (अधिक क्या कहूं) वह स्व-

पृच्छन्त्यां नाना वार्त्ता मां मम संजायते स्मितम् ॥ न वदाम्यतिबालत्वाद्वाच्यमानो निरन्तरम् ॥ ५८ ॥ तद्वीक्ष्य गोपगोपीनां जायते परमं सुखम् ॥ न करोति कदाचिद्वै मां हि दृष्टिपथाद्बहिः ॥ ५९ ॥ स्वप्नेऽपि मां लालयन्ति पश्यन्त्यानन्दकारणम् ॥ एवं व्रजौकोभिः सार्द्धं बाललीलां करोम्यहम् ॥ ६० ॥ पूतनायाः पतिर्गेहे आजगाम घटोदरः ॥ श्यालाभ्यां सह चान्याभ्यां नानुलोक्यात्मवल्लभाम् ॥ ६१॥ सुप्तां वृकोदरीं वीक्ष्य तामुत्थाप्याह दुःखितः ॥ अघासुरो बकश्चैव भ्रातरौ ते महाबलौ ॥ ६२ ॥ वृकोदरीह मे भार्य्या नापयाति गृहात्कचित् ॥ क्व गता सा वदाशु त्वं मनो मेऽतीव पीडितम् ॥ ६३ ॥

प्नमें भी मुझे खिलाते हुए अपूर्व आनंदको पाते थे, इस प्रकारसे व्रजवासियोंके साथ मैं बाललीलाको करता हुआ॥६०॥ इस ओर पूतनाका पति महाबलवान् घटोदर भयंकर प्रकृतिवाला दोनों सालोंको अपने साथ लिये हुए घरमें आया और अपनी प्यारी स्त्रीको घरमें न देखकर बहुत व्याकुल हुआ॥६१॥ और वृकोदरीको सोती हुई देखकर उसी समय उसको उठाया फिर दुःखितहृदय होकर पूतनाको पूछने लगा, महाबलवान् अघासुर और बकासुर दोनों ही व्याकुल हो ऊंचे स्वरसे रोने लगे ॥ ६२ ॥ घटोदर बोला हे वृकोदरि! मेरी प्राणप्यारी भार्या पूतना कहां है!

वह किस लिये घरमें नहीं आती वह कहां रहती है कहो तो सही,मेरा मन अत्यन्त ही व्याकुल हो रहा है इसलिये तुम अतिशीघ्र बता दो कि वह कहां गयी है ?॥६३॥हाय विधाता ! जिसके अंगको स्पर्श करते ही बालकोंकी उसी समय मृत्यु हो जाती थी वह बो पूतना कहां चली गई बताओ तो सही ॥६४॥ घटोदरके ऐसे वचन सुन अपनी बहन पूतनाके शोकसे संतप्त हो नेत्रोंमें आंसूभर रुद्धकंठ होकर कहनेलगी ॥ ६५ ॥ कि हे घटोदर ! तुम परम बुद्धिमान हो इस कारण जो कुछ मैं कहती हूं उसीके अनुसार करो. महाराजा कंसने बुरे स्वप्न देखकर अत्यन्त दुःखितमन हो व्रजवासियोंके

यदङ्गसङ्गाद्बालानां मरणं विधिनिर्मितम् ॥ भवत्यवश्यं सा बाला क्व गता वद तत्त्वतः॥६४॥श्रुत्वा घटोदरवचो भगिनी शोक पीडिता ॥ उवाचाश्रुमुखी भूत्वा संतप्ता सा वृकोदरी॥६५॥घटोदर महाबुद्धे कंसो दुःस्वप्नदुर्मनाः॥बालकानां विनाशाय पूतना प्रेषिता व्रजे॥६६॥मयाऽनुमोदिता साऽपि कंसप्रियचिकीर्षया॥मृता तत्रैव नायाता परावृत्त्य प्रिया तव ॥६७॥कंसं पृष्ट्वा तत्र गच्छ श्यालौ बाह्यं नियोजय ॥ व्रजौकसां विनाशाय यैर्भार्य्या ते विनाशिता॥६८॥स इत्थं तद्वचः श्रुत्वा क्रुद्धः कंसान्तिकं ययौ ॥ अघासुरबकाभ्यां च सहितः कम्पयन्महीम् ॥६९॥

बालकोंको मारनेके लिये पूतनाको व्रजमें भेजा था॥६६॥इस विषयमें मैंने भी सम्मति दी थी उसीके अनुसार यह मेरी प्यारी भगिनी पूतना कंसकी प्रियकामनाके वशीभूत होकर व्रजमें चली गयी और वहां जा उसने अपने प्राण त्याग दिये फिर वह यहांको लौटकर नहीं आई॥६७॥मैं और तुम से क्या कहूं?अब तुम कंसके पास जाकर उनसे पूँछ लो फिर वहां आप जाकर अथवा व्रजवासियोंके नाश करनेके लिये इन सालोंको भेज दो यह जाकर तुम्हारी स्त्रीके मारनेवाले शत्रुको ढूँढकर उसमें जो कर्तव्य होगा वही करेंगे ॥ ६८ ॥ घटोदर वृकोदरीके ऐसे वचन सुनकर उन्हींको निश्चय मान

अघासुर और बकासुरके साथ कंसके पासको गया उसके जानेके समय चरणोंके नीचेकी पृथ्वी कंपायमान होने लगी।६९॥इसके पीछे वह राजा कंसके पास जाकर बोला कि, तुमने किस लिये मेरी अत्यन्त प्यारी स्त्रीका नाश करवा दिया है,वह मनुष्योंका आहार करती अत्यन्त बलिष्ठ होकर बालकोंका वध करती थी ॥७०॥ इसके कह चुकनेपर पूतनाके दोनों भ्राता अघासुर और बकासुर क्रोधमें भरकर कंससे कहने लगे कि जिसने हमारी अत्यन्त प्यारी भगिनी बालघातिनी पूतनाका विनाश करवाया है अथवा जिसने किया है अब हम दोनों उन व्रजवासियोंके मारनेके लिये

उवाच कंसमासाद्य भार्या मे किं विनाशिता ॥ अतिप्रिया नराहारा बलिष्ठा बालघातिनी ॥७०॥ पूतनाभ्रातरौ क्रुद्धा ऊचतुः कंसमातुलौ ॥ आवां व्रजविनाशाय व्रजावो यैर्विनाशिताः॥७१॥ प्रेष्ठा नो भगिनी राजंस्त्वमाज्ञापय मा क्रुधः ॥ भक्ष्यमिष्टं विनिर्दिष्टं विधात्रा व्रजसंज्ञितम् ॥७२॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा कंसोऽप्याहातिसान्त्वयन् ॥ घटोदर महाबुद्धे अघासुरबकासुरौ ॥ ॥७३॥ ममैव प्रेषिता घोषं पूतना चात्महेतवे ॥ दुःखप्रदर्शनेनालं भीतिनासुरसत्तमाः ॥ ७३ ॥ बालकानां विनाशाय तया चैवान्यथा कृतम् ॥ गरलं स्वस्तने लिप्त्वा कैतवं रूपमाश्रिता ॥ ७५ ॥

जाते हैं ॥७१॥ बहन हमारी अत्यन्त ही प्यारी थी. हे राजन् ! आप आज्ञा दीजिये किसी प्रकारसे भी क्रोधित न होना,स्वयं व्रजरूपी अभीष्टभक्ष हमारे लिये बतादिया है ॥७२॥ कंस उनके ऐसे वचन सुनकर धीरज देता हुआ उनसे कहने लगा कि, हे घटोदर ! हे बकासुर!तुम सभी अत्यन्त बुद्धिमान हो॥७३॥फिर मैं तुमसे अधिक क्या कहूं और समझाऊं, मैंने ही तुम्हारी अत्यन्तप्यारी बहन पूतनाको अपने कार्य करनेके लिये व्रजमें भेजा था; हे असुरसत्तमगण!तुम किसी प्रकारसे भी दुःखित और भयभीत मत हो॥७४॥मैंने बालकोंके मारनेके लिये ही पूतनाको भेजा था सो वह

उसके विपरीत हुआ वह कपटसे सुन्दरस्वरूप बना अपने दोनों स्तनोंमें विषको लगाकर ॥७५॥ व्रजमें घूमतीहुई एक बालकको अपनी गोदीमें लेकर दूध पिलाने लगी परन्तु उस बालकने उसके स्तनोंमें नखाघात किया ॥ ७६॥ तब वह विष घावके द्वारा प्रविष्ट होकर रुधिरमें प्रविष्ट हो गया उस निर्बुद्धिने अपने अल्पबुद्धिके दोषसे ही अपने प्राणोंका त्याग किया ॥७७॥ इस कारण इसमें व्रजवासियोंका कुछ भी दोष नहीं है, तो भी जो तुम यदि व्रजवासियोंको अपना शत्रु मानते हो ॥७८॥ तो मैं आज बलवान् तृणावर्तको उनके विनाशके लिये व्रजमें भेजता हूं, यह तृणावर्त

विचरन्ती व्रजे कश्चिज्जगृहे बालकं परम् ॥ स्वभावात्तेन बालेन स्तनेऽकारि नखक्षतः ॥ ७६ ॥ ततो गरलदोषो वै प्रविष्टो रक्तमार्गतः ॥ मृता गरेण सा मूढा आत्मबुद्धिविकारतः ॥ ७७ ॥ अतो न कस्यचिद्दोषो व्रजवासिजनस्य हि ॥ यदि वैरं कृतं वस्तैर्व्रजवासिजनैरलम् ॥ ७८ ॥ तदाऽहं प्रेषयाम्यद्य तृणावर्त्तं महाबलम् ॥ महावातस्वरूपेण मानवान्नेष्यते दिवम् ॥ ७९ ॥ नानाकाशपथे नीत्वा मारयत्यखिलांस्ततः ॥घातयिष्यामि युष्माकं प्रीतये न चिरेण हि॥८०॥एवं कंसोऽवारयद्दैत्यमुख्यांस्ते ऽपि श्रुत्वा तोषमापुर्मुनीन्द्र ॥ज्ञात्वा चैतान्मानसं स्वप्रियं हि कंसं प्रोचुः साधु ते मन्त्रितं वै ॥८१॥इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे वैयासिके नारदशौनकसंवादे अघासुरादिकंसविचारो नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

महावायुका स्वरूप धारणकर व्रजवासियोंको एकसाथ ही आकाशमें उड़ाकर ले जायगा॥७९॥और आकाशमार्गमें ले जाकर उन सबका वध करदेगा, मैं तुम्हारी प्रीतिको बढ़ानेके निमित्त इसी समय उन सबका वध कराऊँगा तुम सावधान रहो॥८०॥वे कंसके कहे हुए ऐसे वचनोंको सुनकर अत्यन्त ही संतुष्ट हो उससे अपना अभिलषितकार्य सिद्ध हुआ जानकर कंससे कहने लगे कि हे राजन्! आपने यथार्थमें बहुत उचित ही विचार किया है८१

इति श्रीआदिपुराणे सूतशौनकसंवादे भाषाटीकायाम् ऊनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ श्रीकृष्णजी बोले कि, वे तीनों कंसके ऐसे वचनोंको सुनकर अत्यन्त हर्षित हो बोले कि, हे महाराज ! आप अपने कार्यमें विलम्ब न करके अतिशीघ्र तृणावर्तको बुलाइये, रोग और अग्निके समान शत्रुको आश्रय देना बुद्धिमान्‌को उचित नहीं ॥१॥ तृणावर्त बहुत दिनोंसे सो रहा था कंसने अपने दूतोंको भेजकर उसको बुलाया, इसके उपरान्त तृणावर्त आकर कंसके सामने उपस्थित हुआ ॥२॥ महाबलवान् तीक्ष्णबुद्धि कंस उसको अपने नेत्रोंसे देखकर ऊंचे स्वरसे कहने लगा कि हे महाबाहु तृणावर्त ! तुम

श्रीकृष्ण उवाच ॥ ॥ आकर्ण्य तत्कंसवचस्त्रयस्तेऽति प्रहर्षिताः ॥ आहुश्च राजंस्त्वं शीघ्रं तृणावर्त्तं समाह्वय ॥ १ ॥ अथ कंसस्तृणावर्त्तं प्रसुप्तं बहुकालतः ॥ दूतैरानाययामास दृष्ट्वा त पुरतः स्थितम् ॥ २ ॥ उवाच वचनं घोरं तीक्ष्णबुद्धिर्महाबलः ॥ उवाचोच्चैस्तृणावर्त्तं भूतहिंसापरायणम् ॥ ३ ॥ तृणावर्त्त महाबाहो कार्य्यं मे समुपागतम् ॥ अत्यल्पमपि तत्कार्य्यं नान्यस्त्वत्तोऽस्ति मे प्रियः ॥ ४ ॥ इदं त्वल्पतरं ते हि व्रजमानवमारणम् ॥ पूर्वदुःस्वप्नयोगेन पूतना प्रेषिता मया ॥ ५ ॥ सा प्रनष्टाऽऽत्मदोषेण गरलेन प्रमादतः ॥ तथाऽपि तत्पतिद्वेषं त्यजत न घटोदरः ॥ ६ ॥

प्राणियोंके मारनेमें चतुर हो ॥३॥ हमारे कार्य करनेके निमित्त इस समय यहाँ आये हो वह कार्य भी सामान्य नहीं है और तुम्हारे समान हमारा हितैषी दूसरा कोई नहीं है ॥४॥ व्रजवासियोंको मारना होगा यह एक सामान्य कार्य है, तुम अनायास ही इस कार्यके करनेमें सामर्थ्य रखते हो फिर अधिक क्या कहूँ ! इन तुच्छ व्रजवासियोंकी तो बात ही है क्या है, त्रिलोकीके संहार करनेमें भी तुमको किसीकी सहायता लेनेकी आवश्यकता नहीं है, [illegible] २ स्वप्न देखे थे सो इसी कारणसे अपने कार्यके करनेके लिये पूतनाको भेजा था ॥५॥ सो वह अपने ही अपराधसे प्रमादके वश हो स्तनोंमें

विष लगाकर मरगई है तोभी उसका पति घटोदर वैर मानता है॥६॥उसके भाई अघासुर और बकासुरके साथ क्रोधमें भरकर निर्बल व्रजवासियोंके मारनेके निमित्त तैयार हुआ है॥७॥प्रजाके नाश होजानेके भयसे मैंने उसको रोका है, सो अब तुम महावायुकी मूर्तिको धारणकर जिस बालकने बालकोंको मारनेवाली पूतनाको मारा है उसको जाकर ले आओ॥८॥अथवा जिसने पूतनाका मनोहर रूप देखकर उसे पकड़ा हो तो उसे पकड़ ले आओ॥९॥वह कहां गयी अथवा उसे किसने मारडाला उस मनष्यको ढूंढकर इसप्रकार वायुरूप धारणकर लेआओ.और किसीका वध मत करना॥१०॥

तत्पितृव्यात्मजौ घोरावघासुरबकासुरौ॥क्रुद्धौ मारितुमुद्युक्तौ दुर्बलान्व्रजवासिनः॥७॥ मया निवारितास्तेऽद्य प्रजाघातभयेन हि॥महावातस्वरूपेण बालकं तत आनय॥८॥अथ वा येन नीता सा पूतना बालघातिनी॥ दृष्ट्वा सौम्दस्वरूपेण पूर्वमेव व्रजौकसा॥९॥ क्व गता मारिता केन मानवं तं विलोक्य च॥ ततो वातस्वरूपेण पूतनाकालबालकम्॥१०॥ नीत्वा नान्ये निहन्तव्या आनेयः स हि बालकः॥ पूतना येन नीताऽन्तं स हि मृत्युं समर्हति॥११॥अतस्त्वमेव गच्छाद्य सर्वेषां प्रीतिमावह॥ इति श्रुत्वा तृणावर्त्तो मुदितः कंसमब्रवीत्॥१२॥ यदि त्रैलोक्यघातार्थं मामाज्ञापयसि प्रभो॥न दुष्करं नैतदपि किन्तु विज्ञापयामि ते॥१३॥ अकस्माद्वेपथुश्चासीद्धृदये मम साम्प्रतम्॥ सीदन्ति मम गात्राणि वामः स्फुरति मे भुजः॥ १४॥

जिस बालकने पूतनाका वध कियाहै उसीको मारना चाहिये॥११॥ इसकारण तुम इससमय जाओ और सबकी प्रीतिकी वृद्धि करो तृणावर्त कंसके यह वचन सुनकर अत्यन्त हर्षित होकर बोला॥१२॥ कि हे महाराज! इस सामान्य व्रजकी तो बात क्या है आप यदि त्रिलोकीके मारनेके निमित्त मुझे आज्ञा दें तो मैं उसको भी लीलाके साथ संहार करनेमें समर्थ हूं।परन्तु इस समय आपसे मेरी एक प्रार्थना और है॥१३॥कि आपकी वार्ताको

सुनते ही अकस्मात् मेरा हृदय कंपित हो रहा है, मेरा सब शरीर शिथिल होगया है, मेरी बाईं भुजा फड़कने लगी ॥१४॥ मैंने आज रात्रिमें स्वप्न देखा था कि मैं मृतक होगया हूं, और मेरी माता मानों मुझे गलेसे लगाकर इस अवस्थामें ऊंचे स्वरसे रोती हुई यह कह रही है कि हाय! बेटा तुम कहां जाते हो कृष्ण तुमको अवश्य ही मारडालेगा॥१५॥ यह कहकर वह उसी समय अन्तर्धान होगयी, इसी अवसरमें मेरी आंख खुल गयी तब मैं उठ बैठा, प्रातःकाल होते ही आपने मुझे बुलानेके निमित्त अपने दूतोंको भेजा तब मैं अति शीघ्रतासे उसी समय आपके पासको चला आया हूं आपकी आज्ञा अवश्य ही पालन करनी है, इस कारण हमें अब क्या कर्तव्य है, जो होनहार है वह अवश्यही होगा [विधाता ही सबका मूल है और होनहारही

स्वप्ने दृष्टा च जननी मृतं मां कण्ठसङ्गिनम्॥कृत्वाऽरुदद्भृशं पुत्र कृष्णस्त्वां मारयिष्यति १५इत्युक्त्वाऽन्तर्हिता सद्यः स्वप्नाच्चाहं समुत्थितः॥प्रातरेव त्वयाऽऽहूत आगतोऽस्मि तवान्तिकम्॥किं करोमि तवाज्ञा का यद्भाव्यं तद्भविष्यति॥१६॥कंस उवाच॥तृणावर्त्त न ते मृत्युर्भविता दैवतैरपि॥किंपुनर्मानुषादेव तत्र चाप्यतिबालकात् ॥१७॥ असुरास्ते प्रियाः सर्वे सुरास्त्वल्पबलास्तव॥भयाल्लोकांस्त्यजन्त्याशु निलीयन्त इतस्ततः ॥१८॥ यदि स्वप्नगता वार्ता सत्या भवति नित्यशः ॥तदा मे स्वप्नवाक्यं त्वं विश्रब्धं च शृणुष्व हि ॥१९॥ पर्वतारोहणं स्वप्ने दूरदेशगतिस्तथा ॥ सङ्गमः पुत्रभार्याभिर्बन्धुभिर्न हि दृश्यते ॥२०॥

सबका आधार है]॥१६॥कंस तृणावर्तके ऐसे वचन सुनकर बोला कि,हे तृणावर्त ! तुम्हारी मृत्युके विधान करनमें देवता भी समर्थ नहीं हैं फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है, और विशेष करके एक सामान्य बालक तो इस योग्य नहीं हो सकता॥१७॥और भी जितने असुर हैं वे सब तुमसे अत्यन्त स्नेह करते हैं, देवताओंका तुम्हारे सामने हीनबल है, इसके अतिरिक्त और लोकके मनुष्य तो तुमको देखते ही इधर उधर भाग जाते हैं ॥ ॥१८॥ यदि स्वप्नकी वार्ता सत्य मानी जाय तो ठीक नहीं हो सकती, मैं तुझे समझाता हूं उसे मन लगाकर सुनो॥१९॥स्वप्नमें देखते हैं कि हम

विशालपर्वतोंके ऊपर विचर रहे हैं, अथवा किसी दूरदेशमें विचरते हैं किंवा पुत्र स्त्री एवं भाई बंधुओंसे समागम हुआ है, परन्तु जागकर प्रातःसमय देखें वो वहां कुछ भी नहीं होता ॥२०॥ या स्वप्नमें देखते हैं कि भांति२के प्रभूत भोग भोग रहे हैं अथवा क्लेशित हो मृत्युको प्राप्त हो रहे हैं, परन्तु जाग्रत् होनेपर वह सब मायाजाल नष्ट हो जाता है ॥२१॥ अतएव तुम स्वप्नकी वार्ताको नितान्त असत्य जान व्रजमें जाय हमारा कहना करो, जब मेरे कार्यको सिद्ध करके लौटोगे तब मैं विविध भांतिके भोग भुगवाऊंगा ॥२२॥ श्रीकृष्णजी बोले कि जब कंस इस प्रकार कह चुका तब महा

सुप्तेन पुरुषेणेह भुङ्क्ते भोगमनल्पकम् ॥ क्लेशितं विविधं प्रातः स्वप्ने दृष्टं मृतं ततः ॥२१॥ अतो गच्छ व्रजं शीघ्रं मद्वाक्यं च विधत्स्व भोः ॥ दास्येऽहं विविधान्भोगान्कार्यं कृत्वाऽऽगमिष्यसि ॥२२॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ इति कंसवचः श्रुत्वा हर्षितोऽभून्महासुरः ॥ उवाच कंसमाभाष्य वीटकं देहि मे नृप ॥२३॥ व्रजाम्यत्र तवाज्ञा चेन्निहन्म्येव व्रजौकसः ॥ इत्युक्तस्तेन कंसोऽपि प्रददौ वीटकं शुभम् ॥२४॥ स गृहीत्वा प्रचलितस्तृणावर्त्तो महाबलः ॥ तथा प्रचलिते दैत्ये विधवा मुक्तमूर्द्धजा ॥ ॥२५॥ काऽपि स्त्री पावकं नीत्वा सधूमं पुर आययौ ॥ तथाऽन्या रुदती काचिदागता पतिताडिता ॥ २६ ॥

असुर तृणावर्त अत्यन्त हर्षित हो प्रीतिपूर्वक कंससे कहने लगा कि हे राजन्! मुझे आप बीड़ा दीजिये ॥२३॥ आपकी आज्ञाको पाते ही इसी समय मैं व्रजमें जाकर वहांके निवासी व्रजवासियोंका संहार करूंगा, तृणावर्तके यह वचन सुनकर कंस अत्यन्त ही आनंदित हुआ और उसी समय उसको बीड़ा दिया ॥२४॥ वह महाबलवान् असुर तृणावर्त उस बीड़ेको लेकर व्रजकी ओरको चला, तब उसके वहांसे चलनेपर अकस्मात् ही एक विधवा स्त्री बालोंको खोले हुए ॥२५॥ और कोई स्त्री सधूम अग्नि हाथमें लिये और कोई स्वामीसे ताडित वह स्त्री हाहाकार करती हुई ऊंचे स्वरसे रोती और

वेगके साथ शिरको पीटती हुई उसके सामने निकली, तृणावर्त यह अशकुन देखकर भी न फिरा बरन् चला ही गया, उस समय उसको सामनेकी ओरसे इस प्रकारके अशुभ लक्षण पग२पर दिखाई देने लगे परंतु वह दुर्बुद्धि इन सबको कुछ भी न समझ सका और ब्रजके भीतर चला ही गया ॥२६॥२७॥ यह महादुष्ट तृणावर्त ब्रजके भीतर जाकर वहांके निवासियोंसे पूतनाके आनेका वृत्तांत पूछने लगा, इसके उपरांत नंदजीके घरम पूतना मारी गयी है, यह सुनकर उनके घरको गया ॥२८॥ और मुझको माताकी गोदमें देखकर उसी समय वहांके निकटवर्ती एक वनमें जाकर बसा, इसके उपरांत उसने ऐसा

हाहेति शब्दं कुर्वाणा घ्नती स्वशिर उत्कचम् ॥ तथापि चलितो दृष्ट्वा दुष्टोऽप्यशकुनं पुरः ॥ गणयित्वा न दुर्बुद्धिः प्रविवेश व्रजान्तरम् ॥२७॥ पृच्छमानो महादुष्टः पूतनागमनादिकम् ॥ तत्राविशन्नन्दगृहं श्रुत्वा तत्र विचेष्टितम् ॥२८॥ अङ्के प्राप्तं यशोदाया मां दृष्ट्वा स गतो वने ॥ व्रजादथ विनिर्गत्य ततो वातस्वरूपधृक् ॥२९॥ दैत्योऽभूत्स प्रचण्डोऽपि भीषयंश्च व्रजौकसः॥ तृतीयप्रहरे चाथ प्रविवेश महाबलः ॥३०॥ तदाऽहं मातुरङ्कस्थो विचार्य्यासुरसंक्षयम् ॥ अङ्गातिभारं कृतवान्सा मेने गिरिगौरवम् ॥३१॥ भुवि तत्याज सहसा दैत्योऽपि जगृहेऽथ माम् ॥ आवृत्य रोदसी पांशुनिचयेनैव चोत्पतत् ॥ ३२ ॥

भयंकर वायुका रूप धारण किया ॥२९॥ कि जिसको देखकर समस्त ब्रजवासी भयभीत होने लगे, फिर उसने तीसरे पहरके समय नंदजीके घरमें प्रवेश किया ॥३० ॥ मैं उस समय अपनी माताकी गोदीमें लेटा हुआ था, उस दुरात्माके अभिप्रायको जान उसके प्राणोंके नाश करनेका विचार कर अपने शरीरको इतना भारी किया कि माताने मुझे पर्वतके समान जानकर ॥ ३१ ॥ उसी समय पृथ्वीपर बैठाल दिया। मेरे शरीरसे माताका

हाथ अलग होते ही उसी समय उसने मुझको पकड़कर धूरकी सहायतासे आकाश और पृथ्वी दोनोंको ढककर ॥ ३२ ॥ वह धूलिजालसे समस्त मनुष्योंकी दृष्टि बन्द करके घोर शब्द करने लगा, धूलिके उड़नेसे कुछ नहीं दीखता था, कोई मनुष्य अपनेको अथवा दूसरेको नहीं देख सकता था॥ ३३॥ उसी समयमें अंधकार हो गया, वह दुरात्मा मुझको लिये हुए आकाशमें पहुँचा; परन्तु मेरे पर्वतके समान भारी होनेसे पीडित होकर वहांसे वह फिर चलनेको समर्थ न हुआ ॥ ३४ ॥ मैं उसके गलेको भले प्रकारसे पकड़े हुए था, वह मुझसे किसी प्रकारसे भी न छुटा सका; और उसी समय शिलाके

मुञ्चन्घोरतरं नादं रुन्धश्चक्षूंषि रेणुभिः ॥ नापश्यत्कश्चिदात्मानं परं वा रेणुरुद्धदृक् ॥ ३३ ॥ अन्धकारे प्रवृत्ते स मां जहार नभो गतः ॥ न शशाक ततो गन्तुं भूरिभारप्रपीडितः ॥ ३४ ॥ मया गृहीतकण्ठोऽसौ कल्पो मोचयितुं नहि ॥ पातितश्च शिलापृष्ठे विशीर्णावयवो ह्यभूत् ॥ ३५ ॥ अहं तेन यदा नीतो यशोदा मामपश्यती ॥ रुरोद करुणं तूच्चैर्द्धावन्ती च इतस्ततः ॥ ३६ ॥ निशम्य रुदितं तस्या हा पुत्र क्व गतः स्थितः ॥ गोप्यः समन्तादाजग्मू रुरुदुः समदुःखिताः ॥ ३७ ॥ मुहूर्त्तमात्रं तत्रासीन्महापीडाकरं व्रजे ॥ गते तस्मिन्नन्धकारे ततः सर्वे व्रजौकसः ॥ ३८ ॥

ऊपर गिर पड़ा, गिरते ही उसका सब शरीर चूर्ण २ हो गया ॥३५॥ जिस समय वह मुझको लेकर चला था तब यशोदाजीने मुझे जाता हुआ नहीं देखा था, वह ऊंचे स्वरसे रोती हुई इधर उधर ढूँढ़ने लगीं ॥३६॥ और बारम्बार हा पुत्र२ 'तुम कहां गये हो यह कहकर रोती हुई इधर उधर फिरने लगीं। गोप गोपियें उनके ऐसे रोनेके शब्दको सुनकर चारों ओरसे इकट्ठे होकर आ गये और फिर इन्हींके समान दुःखी होकर रोने लगे॥३७॥ एक मुहूर्त्तके बीचमें ही व्रजमें यह दुर्घटना उत्पन्न हो गयी, इसके पीछे जब वह घोर अन्धकार दूर हो गया तब सब व्रजवासी मिलकर॥३८॥

हाहाकार करते हुए मुझे ढूँढने लगे, उस समय महाबलवान् तृणावर्तके शिलापर गिरनेके घोर शब्दको उन्होंने सुना ॥ ३९ ॥ वे यह शब्द सुनते ही व्याकुल होकर वहां जाकर देखने लगे, कि महाकाय महाअसुर तृणावर्त ॥४०॥ मरा हुआ पड़ा है और मेरे गलेके पकड़नेसे उसके प्राण निकल गये हैं, और उसका सब शरीर खंड२ हो गया है, उस महाबलवान् असुरको ऐसी अवस्थामें देखकर भयभीत हो आश्चर्यके साथ आपसमें कहने लगे ॥४१॥ कि नहीं जानते कि यह दुष्ट कहांसे आकर व्रजमें गिरा है और किसने इसको मारा है, फिर इस बालकने किस प्रकारसे अपनी

मामन्वेषितुमुद्युक्ताः शुश्रुवुश्च महास्वनम् ॥ ३९ ॥ शिलायां पततस्तस्य तत्र जग्मुः समाकुलाः ॥ ददृशुस्तं तु पतितं महाकायं महासुरम् ॥४०॥ विशीर्णसर्वावयवं मद्गृहीतगलं मृतम् ॥ दृष्ट्वा तं तादृशं भीता विस्मिताश्च परस्परम् ॥४१॥ न जानीमः कुतो दुष्टः समागत्यापतद्व्रजे ॥ केन वा घातितोऽयं वै बालको रक्षितः कथम् ॥४२॥ नन्द पुण्योदयस्तेऽद्य जातः सर्वैर्व्रजालयैः ॥ समागतः पुनर्बालो दृष्टस्तस्मान्निरामयः ॥ ४३ ॥ अहो अत्यद्भुतं चैव नाशं कर्तुमिहागतः ॥ बालकस्यासुरोऽयं वै स्वयं मृत्युवशं गतः ॥ ४४ ॥ गृहेऽरण्ये जले चाग्नौ पर्वते रिपुसङ्कटे ॥ स एव रक्षिता शश्वद्गर्भे रक्षति यो विभुः ॥ ४५ ॥

रक्षा पायी ॥४२॥ नंदजी ! आपके इस समय कोई पुण्य ही उदय हो गये थे, इसी कारणसे तो समस्त व्रजवासीलोग इस बालकको आनंदित मनसे देखते हैं ॥४३॥ अहा ! यह अत्यन्त ही आश्चर्यका विषय है कि यह महाबलवान् असुर इस बालकके मारनेके लिये आकर अपने आप ही मर गया है ॥४४॥ अथवा जो भगवान् गर्भावस्थामें बालककी रक्षा करते हैं वे ही घरमें, वनमें, जलमें, अग्निमें, पर्वतपर और शत्रुओंसे रक्षा करते हैं ॥ ४५ ॥

हे नंदजी! यह तुम्हारे पुण्यरूप उदय हुआ है, यह बालक साधारण नहीं है यह स्वयं विष्णु अथवा विष्णुके समान और कोई देवता इस बालकरूपसे उत्पन्न हुआ है ॥ ४६ ॥ हे नंद ! आप अपने भाग्यके ही बलसे इसके पिता हुए हो, इस कारण तुम यत्नके साथ सावधानीसे इस बालकका लालन पालन करो, यदि त्रिलोकीनाथ विष्णुने ही तुम्हारे घर बालकरूप हो जन्म लिया है ॥ ४७ ॥ तो तुम कृतार्थ हो गये ! अधिक क्या कहें (कारण कि स्वयं देवादिदेव महादेव और ब्रह्मा इत्यादि महेश्वर भी जिनके देखनेके लिये उत्कंठित रहते हैं, और बड़े२ तपस्वी महर्षिगण भी जिनके पानेके

नायं बालो हि सामान्यो नन्द भाग्योदयस्तव ॥ विष्णुर्वा विष्णुसदृशो जातोऽयं कश्चिदीश्वरः ॥ ४६ ॥ पिता पालय पुत्रं त्वं लालयातिचिरं भृशम् ॥ त्रैलोक्यनाथो भगवान्विष्णुश्चेत्तव बालकः ॥ ४७ ॥ कृतार्थस्त्वं किमित्यत्र वयं चाऽपि समेधिताः ॥ इत्युक्त्वा तेऽखिला गोपास्तमालोक्य सुविस्मिताः ॥ ४८ ॥ विशीर्णसर्वावयवं तं च दूरं विचिक्षिपुः ॥ तं ज्योतिरद्भुततममुत्थितं चापि चाविशत् ॥ ४९ ॥ सुरा जयजयेत्यूचुर्धन्यधन्येति वै पुनः ॥ पापोऽसुरो मत्संस्पर्शान्मदीयं प्राप सङ्गमम् ॥ चित्रं नैतन्मत्प्रभावात्सर्वेषामुत्तमा गतिः ॥ ५० ॥

लिये कठिन तपके साथ विशेषकर आयासको स्वीकार करते हैं, उन्हीं साक्षात् भगवान् वासुदेवके इस बालकरूपसे दर्शनकरके हमारा जन्म सार्थक और जीवन कृतार्थ हो गया है)। वे व्रजवासी गोप इस रीतिसे कहकर और फिर असुरकी ओरको देखकर अत्यन्त ही आश्चर्यमें हुए ॥ ४८ ॥ इसके उपरांत सब मिलकर उस महाबलवान् असुरके समस्त शरीरके खंडोंको फेंकने लगे । फेंकनेके साथ ही उसमेंसे एक बड़ी भारी ज्योति निकली और उसीके शरीरमें समा गयी ॥ ४९ ॥ यह देखकर संपूर्ण देवता बारम्बार जयजयकार करते हुए आनंदके साथ धन्यवाद देने लगे । उस तृणावर्तने

प्रथम करोड़ों पाप किये थे, परन्तु मेरे शरीरके स्पर्शसे ही उसको मुक्ति मिली है, इसमें कुछ भी विचित्रता नहीं है, मेरे प्रभावसे साधु और असाधु सभी एक उत्तम गतिको पाते हैं ॥ ५० ॥ श्रीनारदजी बोले कि हे भगवन् ! वह पापी तृणावर्त सर्वदा मनुष्योंका रुधिर पान करता था, उसके समान अपवित्र और कौन था, इस कारण आपने किस निमित्त उसके गलेको पकड़कर उसके प्राण निकाले ॥ ५१ ॥ देखो ! जिसको किसी प्रकार भी स्पर्श नहीं करते, उसके मर जानेपर भी आपने किस कारण उसका स्पर्श किया, उसने जैसे पाप किये थे उससे तो उसकी गति अत्यन्त ही कुत्सित होनी योग्य थी, परंतु वह न होकर उसने उत्तम गति प्राप्त की; इसका क्या कारण है ॥५२॥ उसने पूर्वजन्ममें ऐसा कौनसे

॥ श्रीनारद उवाच ॥ तृणावर्त्तोऽसुरः पापः भृशं रुधिरभोजनः ॥ कथं त्वया विनिहतो गृहीत्वा कण्ठ एव हि ॥५१॥ स्पर्शो यस्य न कर्त्तव्यः तं मृतं चास्पृद्भृशम् ॥ उचिता कुत्सिता यस्य प्राप्तोऽसौ तां गतिं कथम् ॥ ५२ ॥ किं प्राक्तनं शुभं तस्य पूर्वजन्मनि तत्कृतम् ॥ संशयो मे. महाञ्जातस्त्वं तं छेत्तुमिहार्हसि ॥ ५३ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ शृणु विप्र महच्चित्रं यज्जातं प्राग्भवेऽस्य वै ॥ मद्भक्तिकार्य्यं सुमहद्ययौ तत्फलमुत्तमम् ॥ ५४ ॥

पुण्यका अनुष्ठान किया था, अथवा उसकी सुगति क्यों हुई कि जिससे उसने शांतिको प्राप्त किया । इसमें मुझे अत्यन्त ही सन्देह उत्पन्न हुआ है सो आप कृपा करके इसको दूर कीजिये (मेरा यह संदेह है कि साधु असाधु जो सभी मुक्तिको पा सकते हैं और सभीको जो आपकी साधुता मिल सकती है तो फिर पाप और पुण्यमें भेद क्या है? फिर धर्मके ही करनेका क्या प्रयोजन है? धर्मसे ही सत्य और सत्यसे ही स्वर्ग और अपवर्गकी सृष्टि हुई है, यदि पापी लोग भी उस स्वर्ग और अपवर्गको भोग सकते हैं तब फिर सत्य और धर्मकी मर्यादा कहां रही) ॥५३॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे नारद !

तुमने उत्तम प्रश्न किया है,इसने पूर्वजन्ममें जो कुछ किया था तुम उसी अद्भुत विचित्र चरित्रको सुनो [धर्म और सत्यकी मर्यादा तो किसी समय भी नहीं जा सकती, पापका अधिकार अथवा निराश सर्वदासे ही उसमें है,इसमें तो तुमको किसी प्रकारका भी संदेह करना उचित नहीं है]इस असुरने पहले जन्ममें मेरी अत्यन्त ही भक्ति की थी,उसीके प्रभावसे इसने ऐसी उत्तम गति पायी है।।५४।।प्रथम द्राविडराज्यमें एक राजा थे;उनका नाम विश्वरथ था, वह जैसे भगवान्‌के भक्त और प्रेमी थे उसी प्रकारसे हरिके भजनमें वल्लभ कहकर विख्यात हुए।।५५।।उनके पराक्रमकी सीमा नहीं थी और विद्या का भी ठिकाना नहीं था,वह अपने बंधु बांधवोंका अत्यन्त ही आदर सत्कार करता था,उसके राज्यमें सभी प्रजा भगवान्‌की भक्ति करती थीं।।५६।।

पुराऽऽसीद्द्राविडे कश्चिद्राजा भागवतः कृती ॥ नाम्ना विश्वरथः ख्यातो हरेर्भजनवल्लभः॥५५॥बलवान्बन्धुसत्कर्त्ता विद्वान्भागवतः कृती ॥ तस्य राष्ट्रे प्रजाः सर्वा मम भक्तिपरायणाः ॥ ५६ ॥ वसन्ति स्वसुखं सौख्यं यथोक्तकरदायिनः ॥ आधयो व्याधयश्चैव न भवन्ति कदाचन ॥ ५७ ॥ प्रतापान्मम भक्तस्य कालो ग्रासपराङ्मुखः ॥ अहर्निशं पुरे देशे भेरीदुन्दुभिनिस्वनैः ॥ निवेदयति लोकेभ्यो भजतालं प्रजा हरिम् ॥ ५८ ॥

और समयानुसार राजाको कर चुकाती थीं,इस कारण उसके सुख और आनंदकी सीमा नहीं थी,मेरी भक्तिके करनेसे किसी भी प्रकारकी आधि व्याधि उसके निकट आनेमें समर्थ न हुई ॥ ५७ ॥ उस मेरे भक्तको ग्रास करनेको स्वयं काल भी पराङ्मुख हो गया था[इसी कारण उसकी भक्तिका बल अत्यन्त उन्नतिको पहुँच गया था, उसके शरीर और मन दोनोंहीके तेजकी सीमा नहीं थी उसका धर्मबल अत्यन्त ही बलवान् हो गया था] उस राजाकी नगरीमें दिनरात शंख और भेरीकी ध्वनि होती रहती थी, और वह सर्वदा ही अपनी प्रजाके लोगोंसे यह कहता था कि हे प्रजागण ! तुम सभी भगवान्

का भजन करो ॥५८॥ उसके विना भजव किये तुम्हारा उद्धार नहीं होगा, कारण कि वही सबका पति और आश्रयका देनेवाला है ॥५९॥ वह नरदेवशिरोमणि इस रीतिसे राज्य करता था, कीर्तनमें अनुरक्त समस्त मनुष्योंने मिलकर एक भगवान्के कीर्तनका समाज निर्माण किया ॥६०॥ वैष्णवोंमें प्रथम गिनने योग्य एक ब्राह्मण उस समाजके देखनेकी अभिलाषासे उनकी नगरीमें आया, फिर वह उस समाजमें जाकर भगवत्के कीर्तनको देखकर अपने घरको आ रहा था ॥६१॥ कि इसी अवसरमें नगरवासियोंके धनको हरण किये हुए कितने ही चोर इधर उधरको भागे जा रहे थे॥६२॥

उद्धारं न च वै विद्धि लोकानां भजनं विना ॥ गतिः स परमा चैव आश्रयश्च ततः परम् ॥५९॥ एवं प्रवर्त्तमाने वै नरदेव शिरोमणौ ॥ समाजः समभूत्कापि कीर्त्तनातुरचेतसाम् ॥६०॥ तत्र कश्चिद्वैष्णवाग्र्यो ब्राह्मणो द्रष्टुमागतः ॥ स दृष्ट्वा कीर्त्तनं विप्रः चलितः स्वगृहं प्रति ॥ ६१ ॥ एतस्मिन्समये चौराः कस्यचित्पुरवासिनः ॥ चोरयित्वा धनं भूरि चरितास्त इतस्ततः॥ ॥६२॥ ज्ञात्वा राजभटास्तांश्च पुरपृष्ठेष्वनुद्रुताः ॥ चौराः केऽपि न लब्धास्तैर्दृष्टः स द्विजसत्तमः ॥६३॥ चौरोऽयमिति मत्वा तैर्गृहीतस्ताडितः पथि ॥ ततस्तैर्निर्दयैर्भृत्यैस्ताडितो बद्ध एव च ॥ ६४ ॥

राजाके दूत इस चरित्रको जानकर उन चोरोंको पकड़नेके लिये नगरसे बाहर निकले, परन्तु चोरोंको किसीने न देख पाया, केवल वह ब्राह्मण उस समय जा रहा था, उसीको देखा ॥६३॥ और उसे ही विचारकर सबजनोंने मिलकर पकड़ लिया और मार्गमें उसे पीटते हुए ले जाने लगे (हाय! संसारमें कैसी विचित्रता है, देखो! संसारमें मनुष्य मायामोहसे मत्त होकर सहसा निन्दित अत्याचार कर बैठते हैं, धर्म और सत्यकी मर्यादाकी रक्षा करनेमें किसी की भी प्रवृत्ति नहीं होती, राजा लोग सभी प्रायः मदसे उन्मत्त हो कार्याकार्यका विचार नहीं करते हैं, उनके नौकर भी उसीके अनुसार हो जाते हैं इसी

कारणसे उनको हिताहितका विचार नहीं रहता, वे सभी लोग मत्त हो समयको व्यतीत करते हैं) फिर वे राजाके नौकर दयाशून्य होकर उसको मारते हुए कारागारमें ले गये। अत्यन्त सावधानीसे उसको वहां रक्खा, उसके पूर्वजन्मके कर्मोंके फलोंसे ही ॥६४॥६५॥ राजाके नौकरोंने उसको इस प्रकारसे बांधकर रक्खा था और मार दी थी, यमराजके यहां रहनेसे भी असंख्यवर्षोंतक जिसका भोगशेष नहीं होता॥६६॥ हमारे अनुग्रहसे किंचित् मात्र दुःखको देकर ही वह उन२ कर्मोंसे मुक्त हुए, सारांश यह है कि भोगके न होनेसे सहस्रों जन्मोंके कर्म भी क्षय नहीं होते ॥६७॥ तब जो हमारे

कारागृहे निबद्धश्च रक्षितोऽतीव कष्टतः॥तस्यापि पूर्वजन्मोत्थकर्मपाकफलेन हि॥६५॥तर्जितं राजभृत्यैर्यत्ताडनं बन्धनात्यये॥ यमलोके स संगम्य ह्यसंख्यैर्वत्सरैः स्थितः॥६६॥तन्मेऽत्यनुग्रहात्तस्य जातं यत्स्वल्पदुःखदम्॥नाभुक्तं क्षीयते कर्म्म जन्मान्तरशतैरपि ॥६७॥ मद्भक्तया तद्बहु स्वल्पं विपरीतमभक्तितः ॥ स कारागृहबद्धोऽपि न विषादं चकार ह ॥ ६८ ॥ गायन्मम यशोऽतीव विस्मितश्च स्मरन्मुहुः ॥ गतोऽहं कीर्त्तनं द्रष्टुं धृतश्चौरभ्रमाद्भटैः ॥ ६९ ॥ अहो बलवती विष्णोर्मायेयं सुखदुःखदा ॥ यदत्र कृतमेतर्हि तत्प्राप्तं कर्म्मणः फलम् ॥ ७० ॥

भक्त हैं उनको इसप्रकारके कर्मोंके करनेसे ही मेरे अनुग्रहसे किंचित् भी दुःख नहीं भोगना होता, परन्तु अभक्तोंको यह सभी घटता है अर्थात् उनके कर्मोंके फल थोड़े होनेपर भी उनको भोगना अधिक होता है, वह ब्राह्मण मेरी अत्यन्त भक्ति करनेवाला था, इस कारण कारागारमें रहकर भी वह कुछ दुःखित नहीं हुआ ॥६८॥ सर्वदा ही विस्मितहृदय हो बारम्बार मेरा स्मरण और ध्यान करता मेरे यशको गाता हुआ आनन्दके साथ अपने समयको व्यतीत करने लगा, वह सर्वदा ही इसप्रकार कहता था कि अहो! विष्णु भगवान्‌की माया कैसी बलवती है! यही संसारमें सभीके सुख दुःखका अद्वितीय

कारण है देखो! मैं तो भगवत्के कीर्तनको सुनकर जा रहा था, परन्तु राजाके नौकरोंने चोर विचारकर मुझे पकड़ लिया, उनका उसमें कुछ भी दोष नहीं उन्होंने जो किया है वह मेरे कर्मोंके फलोंसे ही हुआ है ॥६९॥७०॥ कोई भी मनुष्य संसारमें मनुष्यको सुख दुःख देनेका कारण नहीं हो सकता, इस प्रकारसे विचार करते हुए वह रात्रि व्यतीत हो गयी॥७१॥ इसके अनन्तर उन सेवकोंने राजासे कहा, फिर उनकी आज्ञा मान वे लोग उस ब्राह्मणको बांधकर वध करनेके लिये ले गये ॥७२॥ द्वारपालोंने सुना कि इस ब्राह्मणको रात्रिमें चोर विचारकर पकड़ रक्खा है, वे सब मिलकर वहां

नृणां सुखस्य दुःखस्य न दाता कोऽपि वर्त्तते ॥ इत्थं चिन्तयतस्तस्य रात्रिशेषः क्षयं गतः ॥ ७१ ॥ प्रातस्ते नृपतिं प्रोचुः तेनाज्ञप्ताश्चरास्ततः ॥ ततो मारयितुं निन्युर्बद्ध्वा च द्विजसत्तमम् ॥७२॥ पौराः खलु द्विजं रात्रौ धृतं चौरविशङ्कया ॥ अपश्यंस्तत्र ते गत्वा विष्णुभक्तं धृतं बलात् ॥७३॥ ऊचुश्च किंकरान्राज्ञो निगृहीतःकथं द्विजः ॥ चौरो नायं विष्णुभक्तो जानीमः सर्व एव हि ॥ ७४ ॥ समाजोऽभूद्वैष्णवानां कीर्तनार्थं हरेर्निशि ॥ तत्र स्थितोऽसौ संहृष्टो वृत्ते प्रचलितो गृहम् ॥ ७५ ॥ गच्छन्पथि धृतः साधुर्भवद्भिश्चौरबुद्धितः ॥ अस्य धर्म्मवतो राज्ञः कथ मेऽसदृशो नयः ॥ ७६ ॥

देखनेके लिये गये तो वहां जाकर देखा कि यह ब्राह्मण विष्णुभक्त है और बलकरके पकड़ा गया है ॥७३॥ यह देखकर वे लोग राजाके नौकरोंसे कहने लगे कि तुमने किस लिये ब्राह्मणको पकड़ रक्खा है? यह चोर नहीं है साक्षात् विष्णुभगवान्का भक्त है इसको हम सब भलीभांतिसे जानते हैं ॥७४॥ भगवान्के संकीर्तनके लिये जो समाज स्थापित किया गया है, यह उसीमें रात्रिके समय परमप्रीतियुक्त हृदयसे जाया करता था; जब भगवत्कथा समाप्त हो गयी तब यह अपने घरको लौटा ॥७५॥ जाते समय मार्गमें इसको तुम लोग चोर विचारकर पकड़ ले आये हो, तुम्हारे राजाके स्वभावके समान यह

धर्मपरायण है, यह क्यों ऐसे दुष्कर्मके करनेके लिये प्रवृत्त हो सकता था॥७६॥जिस स्थानमें ब्राह्मणोंको दुःख दिया जाता है, वहांपर निश्चय ही एक समय सर्वनाश हो जाता है; जहां ऐसी अवस्था है वहां क्या इसके मारनेसे राजाका शुभ हो सकता है॥७७॥ इस कारण तुम शीघ्रही इसको छोड़ दो, छोड़ दो,यह ब्राह्मण किसी अवस्थामें भी वध करनेके योग्य नहीं है, बरन् द्रविणादान,देशनिष्कासन ॥७८॥ यह कितने एक ब्राह्मणोंके साक्षात् वधस्व रूप हैं,इसके अतिरिक्त उनको और किसीप्रकार दंड नहीं देना चाहिये,आततायीके होनेपर भी ब्राह्मणभाइयोंका वध नहीं करते उनको उसी समय छोड़देते

पीडनं तु द्विजे यत्र तत्र स्यात्सर्वसंक्षयः ॥ किं पुनर्मारणेऽप्यस्य शुभं राज्ञो भविष्यति॥७७॥ मुच्यतां मुच्यतामाशु न विप्रो वधमर्हति ॥ वपनं द्रविणादानं देशान्निःसारणं तथा ॥७८॥ एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः ॥ ब्रह्मबन्धुर्न हन्तव्य आततायिविवर्जितः ॥७९॥ तथा भवद्भिर्विधृतश्चास्य दोषो न कश्चन ॥ इति श्रुत्वा राजभृत्यो राज्ञे तद्वन्न्यवेदयत्॥ ॥८०॥ राजन्नसौ महाभागः परस्वेषु पराङ्मुखः ॥ वैष्णवो रक्षितः स्वामिन्बद्धा कारागृहे निशि ॥८१॥ न दण्ड्याश्च वयं राजंस्तवादेशानुवर्त्तिनः ॥ बिभीमश्चौरदण्डेन तद्देयमभयं नृप ॥ ८२ ॥

हैं॥७९॥देखो तुम इसे न जानकर ही पकड़ ले आये हो,इसकारण तुम्हारा इसमें कुछभी दोष नहीं है।राजाके नौकर द्वारपालोंके वचनको सुनकर उसी समय राजाके पास गये,और राजासे जाकर इसका समस्त वृत्तांत निवेदन किया ॥८०॥ फिर बोले कि हे राजन!यह ब्राह्मण अत्यन्त ही भाग्यवान् है दूसरेकी वस्तु लेनेमें,उसकी कभी इच्छा नहीं करता,यह स्वभावसे ही विष्णुभगवान्का भक्त है,हे स्वामिन्!इसको न जानकर ही हमनें,पकड़कर एक रात्रिभर कारागारमें रक्खा है॥८१॥हे राजन् ! हमने अज्ञानतासेही यह कार्य किया है इस कारण हम दंड देनेके योग्य नहीं हैं,हमें,अत्यन्त ही भय

लग रहा है इस कारण आप अभयदान दीजिये॥८२॥अब हमको क्या करना होगा?इसका वध करें अथवा इसकी रक्षा करें सो आप कहिये,नौकरोंकी यह वार्ता सुनकर राजा भयभीत हो सभीसे कहने लगा॥८३॥वह राजा ऊँचे स्वरसे बोला कि हे कृष्ण! यह अपराध मुझसे किस प्रकारसे हुआ,अब हे विष्णुके सेवको!तुम उस ब्राह्मणको मेरे समीप लेआओ॥८४॥ इसके उपरान्त सेवकगण राजाकी आज्ञानुसार उसी समय उस विष्णुभक्त ब्राह्मण को राजाके सम्मुख ले आये ॥ ८५ ॥ ब्राह्मणको आता हुआ देखकर राजाने भक्तिपूर्वक अपने मस्तकको पृथ्वीपर नवाकर प्रणाम किया, फिर

अतः परं तु किं कुर्म्मो हन्मो वा रक्षयामहे॥इत्थं निशम्य भीतस्तु तानुवाच महामतिः॥८३॥विक्रुश्य कृष्ण कृष्णेति ममागः प्रशमः कथम् ॥ आनयध्वं ममादेशाद्भृश भृत्या हरेः प्रियम्॥८४॥ विष्णुरेव पुण्यनामा ख्यातः पतितपावनः ॥ इत्याज्ञाता राजभृत्या विष्णुभक्तमथानयन्॥८५॥दृष्ट्वाऽऽयान्तं नृपश्रेष्ठो ननाम शिरसा भुवि॥तमुवाच मुनिश्रेष्ठं जहि मां पापकारिणम्॥ ॥८६॥ अथोपदेशं श्रुत्वा च प्रायश्चित्तं भविष्यति ॥ कथं मम भवेन्मोक्षो वैष्णवाच्च विधानतः॥८७॥ विष्णुभक्तकृतं द्रोहं निराकर्त्तुं न शक्नुयात ॥ जनो जन्मशतोद्भूतैः सुकृतैर्विविधैरपि ॥८८॥ मया यत्क्रियते पापं पारावारो न तस्य हि ॥ अत स्त्राहि कृपासिन्धो त्वामहं शरणं गतः ॥ ८९ ॥

उससे कहने लगे कि आप मुझ पापकारीको दंड दो ॥ ८६ ॥ हे ब्रह्मन् ! मुझे आज्ञा दीजिये मैं आपका क्या कार्य करूं,उपदेश सुनकर प्रायश्चित्त करूंगा किस प्रकारसे मेरे इस महापापका प्रायश्चित्त होगा और किस प्रकारसे वैष्णवधर्ममें कहे हुए विधानसे मुझे मुक्ति प्राप्त होगी ॥८७॥ मैंने विष्णु भक्तोंके विरुद्ध आचरण किया है,सैकड़ों जन्मजन्मांतरोंके किये हुए पुण्योंके सहाय होनेसे भी मेरा उद्धार नहीं है॥८८॥इस विषयमें आपके सम्मुख ही

मेरा एकमात्र यह कहना है, इस कारण आप मेरे ऊपर कृपा करिये मैं केवल आपके ही शरण हूं, मैंने जितने पाप किये हैं, उनकी सीमा नहीं है, इस कारण हे कृपासिन्धो! मैं तुम्हारी शरणागत हूं आप मेरी रक्षा कीजिये॥८९॥ हे ब्रह्मन्! अब मुझे क्या करना चाहिये सो आप कहिये, जिसके करनेसे मुझे नरककी यातना भोगनी न पड़े॥९०॥ राजाके ऐसे वचनोंको श्रवण कर वह ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण बोला, कि हे राजन्! श्रुति स्मृति और पुराणोंमें लिखा है कि विष्णुके भक्तसे विद्रोह करनेवालेको महापाप होता है॥९१॥ करोड़ों कल्पोंतक चेष्टा करनेपर भी उस पापसे उद्धार नहीं होता राजासे वह ब्राह्मण

किमत्र विहितं ब्रह्मन्ममानृण्यमनुत्तमम् ॥ यत्कृत्वाऽहं तमो घोरं न गच्छेयं कदाचन ॥९०॥ इति राज्ञो वचः श्रुत्वा प्रोवाच द्विजसत्तमः ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तं वैष्णवद्रोहमुल्बणम् ॥ ९१ ॥ न शक्यते वारयितुं कल्पकोटिशतैरपि ॥ स इत्थमुक्त्वा राजानं गतो विप्रः स्वमालयम् ॥९२ ॥ देहमुत्सृज्य राजाऽभूत्तृणावर्त्तो महासुरः ॥९३॥ इतो मयाऽत्र विपिने गतः स परमं पदम् ॥९४॥ तृणावर्तवधं श्रुत्वा कंसोऽमन्यत चाशुभम् ॥ स्वप्नदृष्टं भवेत्सत्यं यथाऽयं निहतोऽसुरः ॥ ९५ ॥ पार्षदाश्च हरे र्लोके चरन्ति च्छन्नरूपिणः ॥ बालं नीत्वा यदा व्योम्नि स्थितस्तैर्निहतो ध्रुवम् ॥ ९६ ॥

यह कहकर अपने स्थानको चला गया ॥९२॥ और उधर उस राजाने अपने शरीरको त्यागकर महाअसुर तृणावर्तरूपसे जन्म ग्रहण किया ॥ ९३ ॥ और फिर मुझसे ही मृत्युको पाकर परमपदका अधिकारी हुआ ॥ ९४ ॥ तृणावर्तके मरनेके वृत्तांतको सुनकर कंस अपने मन ही मनमें अनेक प्रकारकी चिन्ता करने लगा और विचारने लगा कि जिस समय तृणावर्त ही मर गया, तब स्वप्नमें जो कुछ भी देखा है उनके सत्य होनेमें सन्देह नहीं॥९५॥ भगवान्के सम्पूर्ण पार्षद अवश्य ही गुप्तरूपसे इस लोकमें फिरते हैं, तृणावर्त जिस समय उस बालकको लेकर आकाशमें उड़ा जा रहा था

तो उसी समय इन सम्पूर्ण पार्षदोंने उसको यमराजके यहां भेज दिया है ॥९६॥ यदि जो ऐसा न हुआ होता तो जसा तृणावर्त अधिक बलवान् था वैसे ही उसकी साधारण बालकके हाथसे मृत्युका होना कभी संभव नहीं हो सकता, अधिक क्या कहूँ, स्वर्गमें भी तृणावर्तकी गति विख्यात है। हा! कैसा आश्चर्य है, कि ऐसा असीम वीर्यवाला महाअसुर भी मारा गया, इस कारण म इस विषयम विचार करके फिर जो कुछ करना होगा सो करूंगा ॥९७॥ इति श्रीआदिपुराणे सकलपुराणसारभूते नारदशौनकसंवादे भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः॥२०॥ श्रीकृष्णजी बोले कि, तृणावर्तके मारनेका समाचार सुनकर

अतोऽन्यथा बालकतो मृतिः कथं भवेदमुष्यामितविक्रमस्य ॥ स्वर्गेऽपि विख्यातगतेर्महाऽद्भुतं सम्यग्विचार्य्याहमतो विधास्ये ॥९७॥ इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराण वैयासिके नारदशौनकसंवादे तृणावर्त्तवधो नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥
श्रीकृष्ण उवाच ॥ श्रुत्वा तृणावर्त्तवधं कंसोऽभूदतिदुर्म्मनाः ॥ समाहूय भृत्यवर्गानब्रवीत्तान्सुरद्विषः॥१॥ यूयं मम प्रियाः सर्वे तथा चातिहितैषिणः ॥ गत्वा तत्र तृणावर्त्तवधो निश्चीयतामिति ॥ २ ॥ कथं मृतो हतः केन कुत्र वा पतितोऽभवत् ॥ दृष्ट्वा व्रजौकसो लोकान्समागच्छत मा चिरम् ॥ ३ ॥

कंस अत्यन्त खेदित हुआ, और देवताओंके वैरी अपने बांधवोंको उसी समय बुलाकर उनसे कहने लगा॥१॥ कि तुम सभी हमारे प्यारे हो, और सभी लोग हमारे हितकारी हो; इस कारण तुम सब लोग इसी समय जाकर तृणावर्तकी मृत्युके समाचारको निश्चय कर आओ॥२॥ कि उसकी मृत्यु किस प्रकार हुई, और किस मनुष्यने उसको मारा? किस स्थानमें उसकी मृत्यु हुई? इन सभी बातोंका अनुसंधान कर समस्त व्रजवासियोंको देखकर और सभीसे

पूछना ॥३॥ व्रजवासी लोग सभी सत्य २ कह देंगे, वह कभी हमारा अनिष्ट नहीं चाहते हैं, बांधवगण जो आज्ञा कहकर उसी समय व्रजमें गये; और वहां जाकर व्रजवासियोंसे पूछने लगे कि तृणावर्तकी मृत्यु किस प्रकारसे हुई॥४॥ व्रजवासी लोग सभी उनसे तृणावर्तकी मृत्युका समाचार सत्य२ ही कहने लगे, कि वह महाअसुर तृणावर्त वायुरूपको धारण करके बालकको लेकर आकाशमें उड़ा ॥५॥ और उसी समय अकस्मात् उस बालकके साथ पृथ्वीपर आ गिरा, पृथ्वीपर शिलाके ऊपर गिरनेसे उसका शरीर चर्ण चूर्ण हो गया और उसी समय उसके प्राण शरीरसे पयान कर गये ॥६॥

ते यथार्थं वदिष्यन्ति विधेयं तु समाहितम् ॥ तथेत्युक्त्वा व्रजं सर्वे समागत्य व्रजौकसः ॥४॥अपृच्छंस्तेऽब्रुवंस्तेभ्यस्तृणावर्तो यथा गतः ॥ वात्यारूपधरो दुष्टो धृत्वा बालं गतो नभः ॥५॥ क्षणादकस्मात्पतितो बालकेन सहैव तु ॥ विशीर्णसर्वावयवो ममाराश्मनि पातितः ॥६॥ को वेद केन निहतः कथं वा पतितः क्षितौ ॥ बालको नन्दपुण्येन मृत्योर्नहि वशं गतः ॥ ७ ॥ एवं निशम्य कंसाय प्रोच्य जग्मुः स्वमालयम् ॥ कंसो मेने तस्य वधो दुःस्वप्नादभवद्ध्रुवम् ॥ ८ ॥ विधात्रा विहितं मृत्युं कोऽपमार्ष्टुं क्षमो भवेत् ॥ व्रजे तु साधवो गोपा निवसन्ति च वेद्म्यहम् ॥ ९ ॥

कौन जानता है कि किसने किस प्रकारसे उसको मारा और कैसे वह शिलाके ऊपर गिरा, हम लोग केवल इतना ही कह सकते हैं, कि महाभाग नंदजीके पूर्वजन्मोंके प्रतापसे उनका बालक मृत्युके मुखसे बचा ॥ ७ ॥ वह सब इस वृत्तांतको सुनकर उसी समय कंसके पास मथुरापुरीको गये, और यह सब समाचार कहकर अपने घरोंको चले गये, कंस यह सुनकर विचारने लगा कि बुरे स्वप्नोंके देखनेसे ही तृणावर्तकी मृत्यु इस प्रकारसे हुई है इसमें संदेह नहीं॥८॥विधाताने स्वयं ही उसकी मृत्युका विधान किया है, इस कारण उसके विचार करनेमें और किसीकी भी सामर्थ्य नहीं,

व्रजमण्डलमें जितने मनुष्य वास करते हैं वे सभी साधु हैं ॥९॥ इस कारण इस विषयमें उनका कुछ भी दोष नहीं है, महाअसुर तृणावर्त निश्चय ही कालसे ग्रसित होकर मृत्युके मुखमें गया है, इस कारण उसका शोक करना उचित नहीं, होनहारका उल्लंघन कोई नहीं कर सकता॥१०॥ घटोदर और बकासुर इत्यादि जब यह अपने २ घरोंसे आवेंगे उस समय जो करना होगा उसका विचार किया जायगा, कंस उसी समय यह विचार करके अतिशीघ्रतासे अपने घरको चला गया॥११॥श्रीनारदजी बोले कि हे श्रीकृष्ण! आप सबके ही प्रभु हैं,आपके ऊपर कोई भी कर्ता नहीं है, तृणा-

तेषां न दोषश्चास्तीह कालग्रस्तो मृतोऽसुरः ॥ अत्र शोको न कर्त्तव्यो मृत्युर्नोल्लङ्घ्यते क्वचित् ॥ १० ॥ घटोदरो बकाद्याश्च यदाऽऽयास्यन्ति ते गृहात्॥तदा विचारः कर्त्तव्यो हिताहितविधौ स्वके॥ विचार्यैवं तदा कंसः स्वगेहमविशद्द्रुतम्॥११॥श्रीनारद उवाच ॥ तृणावर्त्तवधात्कृष्ण किमकार्षीर्महाप्रभो ॥ तव लीलाकथा श्रोतुर्मनसोऽत्र सुखप्रदा ॥१२॥ त्वत्कीर्त्तनं फलं वाचां त्वद्गुणश्रवणं श्रुतेः॥ नेत्रयोस्तव सन्दर्शस्त्वद्भक्तानां च दर्शनम् ॥१३॥ पादयोर्व्रजनं तद्वत्तव तीर्थमहोत्सवे ॥ नासिकायास्तवोत्तीर्णतुलसीगन्धसेवनम्॥१४॥अङ्घ्रीणां तव पादाब्जजलसेकोऽखिलं फलम्॥अन्यथा निष्फलं सर्वं तव प्रेमविवर्जितम्॥१५॥

वर्तके मारनेके पीछे फिर आपने क्या किया? आपकी लीला तथा चरित्रोंको सुनकर मनको अत्यन्त आनन्द होता है ॥ १२ ॥ आपकी लीला कथा कीर्तन यह वाणीका साक्षात् फल है,आपके गुणपरम्परासे सुने हुए श्रुति युगलके समान मूर्तिमान् होकर सार्थक हो रहे हैं, आपका दर्शन ही दृष्टिकी सुफलता है.आपकी निर्माण की हुई व्रजभूमिमें जानेसे ही दोनों चरणोंको सम्पूर्ण तीर्थोंका उत्तम फल मिलता है,और आपको निवेदन की हुई तुलसीकी सुगंधिके सेवन करते ही नासिका सुफल हो जाती है॥१३॥१४॥फिर आपके चरणारविन्दके चरणोदकसे ही अखण्ड फल प्राप्त होता है

और जो आपके प्रेमसे रहित हैं वे सभी निष्फल हैं॥ १५॥ अधिक क्या कहूं तब देह और घर यह सम्पूर्ण ही श्मशानके समान व्यर्थ होते हैं। मनुष्य जन्म ही दुर्लभ है, फिर उसको पाकर सत्संगतिका होना अत्यन्त कठिन है॥ १६॥ और फिर उस संगतिको पाकर भी आपकी कथाका सुनना अत्यन्त ही दुर्लभ है। फिर कहीं मुक्ति मिल सकती है, इस प्रकारके कहनेवाले मनुष्य संसारमें बहुतसे हैं॥ १७॥ परन्तु हे दामोदर! आपके कहे हुएके समान भक्ति करनेवाले पुरुष पृथ्वीपर होने निश्चयही कठिन है. हे श्रीकृष्ण! आपही संसारमें केवल सर्वस्व हैं और आपही दयानिधि हैं, इस कारण हे जनार्दन! तृणावर्तके

देहगेहादिकं व्यर्थ श्मशानसदृशं खलु ॥ दुर्लभं मानुषं जन्म सत्सङ्गस्त्वतिदुर्ल्लभः ॥ १६ ॥ त्वत्कथाश्रवणं सद्भिस्तत्र वाऽप्यतिदुर्लभम् ॥ वक्तारो बहवः सन्ति परेषां वृद्धिदा भुवि ॥ १७॥ दामोदरवशो भक्तो दुर्लभः खलु भूतले ॥ त्वमेव कृष्ण सर्वज्ञ त्वं मे ब्रूहि दयानिधे ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच॥ धन्योऽसि त्वं मुनिश्रेष्ठ मत्कथाश्रवणे रतः ॥ अतस्तेऽहं प्रवक्ष्यामि शृणुष्वावहितो मम ॥ १९ ॥ कंसः स भावनाविष्टः सुप्तश्च कशिपौ शुभे ॥ चिन्तयामास किं कार्यं मया स्वहितसिद्धये ॥ २० ॥ सस्मार वचनं तस्या हता सा कन्यका मया ॥ तया यदुक्तं भो मन्द किं मया हतया बत ॥ २१ ॥

मारनेके पीछे फिर आपने क्या किया सो कृपा कर मुझसे कहिये॥ १८॥ श्रीभगवान् बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ! तुम्हीं धन्य हो, कारण कि मेरे चरित्रोंके सुननेमें तुमको अत्यन्त प्रेम उत्पन्न हुआ है इस कारण मैं तुमसे कहता हूँ तुम सावधान होकर मेरी लीलाओंको सुनो॥ १९॥ कंस अत्यन्त ही विचारवान् होकर सुन्दर शय्याके ऊपर लेटा हुआ विचारने लगा कि अपने हितके लिये मुझे क्या करना उचित है॥ २०॥ जिस समय उस कन्याको माराथा उस समय

कंसको उसकी बातें याद आने लगीं, उस कन्याने कहा था कि, रे मूढ़ ! मेरे मारनेसे तेरे क्या हाथ आवेगा ॥ २१ ॥ तुम्हें जो मारेगा वह निश्चय ही कहीं जन्म ले चुका है ॥२२॥ श्रीनारदजी बोले कि,हे भगवन् ! कंसने अपने हितसाधनके निमित्त क्या २ किया था सो आप कहिये ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णजी बोले हे मुने ! वसुदेवजी उस कन्याको लेकर रात्रिके समयमें अपने घरमें आये,और फिर आकर पहलेके समान बेड़ी हथकड़ी आदिको पहनकर रहने लगे॥२४॥पीछे वह कन्या ऊंचे स्वरसे रोने लगी उसको सुनकर कंसके सभी नौकर जो कि इस कार्यके अर्थ नियत थे वे सभी जाग

यत्र क्व वा समुत्पन्नो यस्त्वां मारयिता ध्रुवम् ॥ २२ ॥ नारद उवाच ॥ किं जातं किं कृतं तेन कंसेनात्महितेच्छुना ॥ २३ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ मुने कन्यां गृहीत्वा स निशीथे स्वगृहं गतः ॥ वसुदेवस्तथैवासीद्बद्धः शृङ्खलयाऽभवत् ॥२४॥ ततो रुरोद सा कन्या स्वरेणोच्चैर्निशम्य तत् ॥ समुत्थिता द्वारपालाः कंसेनैव नियोजिताः ॥२५॥शीघ्रं कंसभिया गत्वा तदुत्पत्तिं च चक्षिरे॥ कंसः श्रुत्वा खड्गपाणिः सहसा समुपस्थितः ॥ २६ ॥ त्यक्त्वा तु शयने मूढः सुप्तां पत्नीं समाययौ ॥ त्वरया धावमानोऽसौ स्खलितो न्यपतद् भुवि ॥ २७ ॥ शिरसः पतितं दूरमुष्णीषमसुरस्य हि ॥ तथाऽधरोष्ठभङ्गेन रक्तस्रावस्ततोऽभवत् ॥ २८ ॥॥ तथाऽपि मार्गयन्गत्वा जगृहे कन्यकां च ताम् ॥ देवकी विनयेनोच्चैर्निजगाद तमग्रजम् ॥ २९ ॥

उठे ॥२५॥ और शीघ्रतासे कंसके समीप जाकर कन्याके जन्मका वृत्तान्त सुनाया; कंस सुनते ही खड्ग हाथमें लेकर सहसा उठ खड़ा हुआ ॥२६॥ कंस अपनी स्त्रीके साथ शयन कर रहा था,इस वृत्तान्तको सुन स्त्रीको सोती छोड़ शीघ्रतासे वसुदेवजीके घरको चला शीघ्रतासे चलनेके कारण पृथ्वी पर गिर पड़ा॥२७॥एक साथ गिरनेके कारण उसके शिरमें बहुत चोट लगी और होठोंमें दांतोंके चुभनेसे रुधिर बह निकला॥२८॥तोभी वह चला ही गया

उसने कुछ भी विचार नहीं किया और जाकर देवकीसे उस कन्याको ले लिया यह देखकर कंसकी बहन देवकी अत्यन्त विनय करती हुई ऊंचे स्वरसे कंससे कहने लगी ॥ २९ ॥ कि हे भ्रातः ! तुम स्वभावसे ही दयाके समुद्र हो और मैं भी तुम्हारी भगिनी हूं, स्वभावसे ही कृपायुक्त हूं सो विचार कर देखो कि, तुमने प्रथम मेरे बहुतसे पुत्र मार डाले हैं इस कारण मेरी इस कन्याको तो कृपाकर जीवित छोड़ दे ॥ ३० ॥ उस दुरात्मा कंसने अपनी बहन देवकीके कहे हुए इन वचनोंको सुनकर उनपर कुछ भी ध्यान न दिया, और बलकरके उस कन्याको छीन लिया, और फिर बोला कि,मैं इसे अवश्य ही मारूंगा, फिर

भ्रातस्तवानुजाहं वै कृपापात्रं दयानिधे ॥ हता मे बहवः पुत्राः कन्यकैका प्रदीयताम्॥३०॥ निर्भर्त्स्य भगिनीं कंसो हस्तादाच्छिद्य कन्यकाम् ॥ प्रोवाचेयं निहन्तव्या मुच्यतामिति मा वद ॥ ३१ ॥ तव गर्भसमुद्भूताष्टमापत्येन मे वधः ॥ इत्युक्त्वा तां समादाय पद्भ्यामुत्थाय निर्दयः ॥ ३२ ॥ यावत्प्रक्षेप्तुकामोऽभूच्छिलापृष्ठे स दुर्मतिः ॥ तावद्धस्ताद्विनिर्गत्य सा देव्यम्बरमास्थिता ॥ ३३ ॥ बभूव दर्शनीयाङ्गी सायुधाष्टमहाभुजा ॥ यया संमोहितं विश्वं देहगेहसुतादिषु ॥ ३४ ॥

देवकी उस कन्याको न छुटा सकी, और व्याकुलताके मारे उनका हृदय पीडित होने लगा॥ ३१ ॥ तब कंस फिर बोला कि तुम्हारे आठवें गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसीसे मेरी मृत्यु होगी, ऐसा कहकर वह दुरात्मा कंस बलपूर्वक उस कन्याको लेकर खडा हो गया, और दोनों चरणोंको पकडकर॥ ३२ ॥ उसको पृथ्वीपर पटकना चाहा कि उसी अवसरमें वह कन्या इसके हाथसे छूटकर सुन्दर मोहिनी देवीका स्वरूप धारण कर आकाशको चली गयी॥ ३३ ॥ वह देवीकी अवस्थामें उसी शरीरसे परम शोभायमान होने लगी, उसकी आठ भुजा थीं, और सभी भुजाओंमें आयुध शोभायमान थे, इस देवीके मायारूपी

चक्रमें पड़कर समस्त संसार मोहित होकर शरीर, घर और पुत्रादि विषय इत्यादिके ॥ ३४ ॥ स्नेहबन्धनसे नरककी पीडा परम्परासे भोगनेके लिये अधोग मन किया है, जब वह आकाशमें गयी तब देवता ऊँचे स्वरसे उसकी स्तुति करने लगे, तब वह महामूर्ख कंससे इस प्रकार ऊँचे स्वरसे कहने लगी ॥ ३५॥ ३६॥ तेरा वह वैरी जो कि तुझे मारेगा कहीं जन्म ले चुका है, यह कहकर वह कन्या उसी समय अन्तर्धान हो गयी, यह देखकर कंसको बड़ाभारी आश्चर्य हुआ ॥ ३७॥ इसके उपरान्त वह दुरात्मा कंस देवकी और वसुदेवजीके पास जाकर बोला कि हे महाबुद्धिमान् वसुदेव ! हे परमबुद्धिमती देवकी !

कुतस्स्नेहमथो याति भोक्तुं नरकयातना॥संस्तूयमाना देवौघैः सा प्रोवाच महाशठम्॥३५॥कंसमत्युच्चया वाचा समाभाष्य नराधमम्॥किं मया हतया मन्द किं कार्यमभवत्तव ॥३६॥ यत्र क्वचित्पूर्वशत्रुर्जातः खलु तवान्तकृत्॥इत्युक्त्वाऽन्तर्हिता सद्यस्ततः कंसोऽतिविस्मयः ॥३७॥ देवकीं वसुदेवं च गत्वा पाप उवाच ह॥वसुदेव महाबुद्धे शृणु देवकि मे वचः॥३८॥साधू युवां सुखं दातुमुचितौ दुःखितौ मया॥अनृतं केवलं मर्त्त्यो वदेदिति विनिश्चयः ॥३९॥ देवताऽप्यनृतं वक्ति किं करोमि प्रतारितः॥यद्द्विश्रम्भादहं मूढो हतवांश्च शिशूंस्तव॥४०॥महापापस्य मे घोरा भवित्री गतिरुल्बणा॥वसुदेवापराधो मे क्षन्तव्यः साधुबुद्धिना॥४१॥

तुम दोनों ही मेरे वचनोंको श्रवण करो ॥ ३८ ॥ तुमको सुख देना सबप्रकारसे मुझे उचित है, परन्तु वह मैंने न किया, यह कहकर वह बड़ा दुःखित हुआ और बोला कि यह संसार सभी मिथ्या है। यह तुम निश्चय जानो ॥ ३९ ॥ देवताओंने भी मिथ्या कहा था अब मैं क्या करूं मैं सब प्रकारसे छला गया, देखो ! मैंने ब्राह्मणोंके वचनोंपर विश्वास करके तुम्हारे सम्पूर्ण बालकोंकी हत्या की ॥ ४० ॥ इस पापके फलसे मुझे

अत्यन्त दुर्गति प्राप्त होगी, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं.हे वसुदेव! तुम साधुबुद्धि हो तुमने किसीके भी विरुद्ध कभी कोई कार्य नहीं किया; इसलिये मेरे इन अपराधोंको तुम क्षमा करो ॥४१॥ साधुलोग स्वभावसे ही गुणदर्शी और सब प्रकारसे सरलचित्तके होते हैं, वे कभी किसीके दोषोंको नहीं देखते तुम्हारी भी उन्हीं साधुओंके बीचमें गिनती है; अधिक क्या कहूं तुम्हारे समान साधुओंके चित्तकी वृत्ति शत्रु, मित्र, उदासीन सभीमें एकसी होती है ॥४२॥ एवं सदा ही प्रसन्नमुख रहते हैं, इससे हे बहन! अब तुम किसी प्रकारका भी दुःख मत करो॥४३॥तुम्हारे जो पुत्र मारे गये हैं उन्हें इसी प्रकार होना था कर्मके

न साधुर्दूषणं पश्येद्गुणदृष्टिरनुत्तमः ॥ साधूनां समचित्तानाममित्रोदास्तविद्विषाम् ॥४२॥ प्रसादः सर्वदा तेषामघकारिष्वपि स्फुटम्॥भगिनीत्थं त्वया दुःखं न कर्त्तव्यं कदाचन॥४३॥मृताः पुत्रास्तव शुभे को लम्भेदन्तकं नरः॥गर्भाविष्टं जायमानं बालं यौवनसंस्थितम्॥वृद्धं च मानवं कालो ग्रसत्येव न संशयः॥४४॥इत्थं ज्ञात्वा नैव शोकः कर्तव्यो ज्ञानिभिर्नरैः॥धात्रा विनिर्मितं कर्मफलं मार्ष्टुं क ईश्वरः॥४५॥श्रीश्वर उवाच॥एवं श्रुत्वा कंसवाक्यं वसुदेवोऽथ देवकी॥कंसमाभाष्य वचनं सुप्रसन्नौ बभूवतुः॥४६॥

लिखे हुएको कोई मनुष्य भी नहीं मेट सकता है, जो मनुष्य इस समय गर्भमें है और जो उत्पन्न हुआ है, अथवा जो बालक है और जो यौवन अवस्थामें है या जो वृद्ध है काल उन सभीको ग्रास कर लेता है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं [राजा, प्रजा, धनी, दरिद्री, विद्वान्, मूर्ख आदि कहे हुए मनुष्योंमें भी कालके निकट किसीमें भेदाभेदका विचार नहीं है]॥४४॥जो लोग ज्ञानवान् हैं वह पहले कहे हुएके अनुसार विचार करके कभी शोक नहीं करते, विधाताने जो कर्ममें लिख दिया है, उसके मेटनेको कोई कभी समर्थ नहीं है॥४५॥श्रीभगवान् बोले कि जब कंसने इस प्रकारके वचन कहे तब वसुदेव

और देवकी प्रसन्नमूर्ति हो इस प्रकार कहने लगे॥४६॥ कि हे कंस ! इसमें तुम्हारा कुछ भी अपराध नहीं है, होनहारका रोकना अत्यन्त ही कठिन है, इस कारण जो होनहार था वही हुआ है. देखो ! तुम्हीं कहते हो कि विधाता जो करता है उसको कोई नहीं रोक सकता॥४७॥ प्राणिमात्रको ही विधाताके लिखे हुए कर्मोंका फल अवश्य भोगना होता है; संसारमें जो मनुष्य दुःख भोगते हैं उनका कर्ता कोई दूसरा नहीं होता वह स्वयं ही उसका कारण है, इस कारण दूसरे भी उसके होकर इस दुःखको नहीं भोगते ॥४८॥ और जो पण्डित हैं वे अपने ज्ञानके बलसे विचार कर ही पराये दोषोंको ग्रहण नहीं करते,

कंस नात्रापराधस्ते यद्भाव्यमभवत्खलु॥ त्वयैवोक्तं विधातुर्हि विधानं कोऽतिलङ्घयेत् ॥ ४७ ॥ धात्रा दत्तं कर्मफलं भोक्तव्यं सर्वदेहिनाम्॥नान्योऽन्यदुःखं भुङ्क्तेऽत्र स्वयमेव हि सृज्यते ॥४८॥ विचार्यैवं ज्ञानवता परदोषो न मन्यते ॥ कंसस्तयोर्वचः श्रुत्वा तुष्टोऽगच्छन्निजालयम् ॥४९॥ राज्याभिमानतो ज्ञानं क्षणान्नष्टमभूत्पुनः॥ कदाचिच्छयनारूढः सुप्तः कान्तास्तनान्तरे ॥ ॥५०॥ सस्मार देव्या वचनं बालिकाया भयं गतः॥त्वं मारयिष्यते मूढ वृथैवोद्यमनं तव ॥ ५१ ॥ इति सञ्चिन्त्य मनसा स विचारपरोऽभवत् ॥ बकीपतिश्चेदायाति ह्यघासुरबकासुरौ ॥ ५२ ॥

इस स्थानमें वे अपने ही दोष देखते हैं, देवकी और वसुदेवजीके ऐसे वचनोंको सुनकर कंसके हृदयमें अत्यन्त प्रीति हुई फिर वह अपने घरको चला गया ॥४९॥ उसके हृदयमें जो ज्ञान उत्पन्न हुआ था सो घरमें जातेही राज्यके अभिमानसे वह फिर पहलेके समान नष्ट हो गया, और वह अपने स्त्रीके साथ शय्यापर शयन करने लगा ॥ ५० ॥ कि इसी समयमें उसको देवीके कहे हुए वचन याद आ गये, अर्थात् हे मूढ़ ! तुम्हें जो मारेगा वह कहीं जन्म ले चुका है, मेरे मारनेसे क्या होगा तेरा परिश्रम व्यर्थ है ॥ ५१ ॥ देवीके इन वचनोंको याद आते ही वह अपने मन ही

मनमें स्मरण करने लगा कि बकपती और बकासुर ॥ ५२ ॥ इत्यादिके आनेपर जो इस विषयमें कर्तव्य होगा, उसीका विचार किया जायगा, पूतनाके वधके वशसे ही उन सब असुरोंने मोहित होकर॥५३॥निश्चिन्ततासे शयन किया है, अत्यन्त मूर्ख कंस इस रीतिसे विचार करता हुआ फिर सो गया। इस ओर हे महामुने!एक समय में माताके साथ सो रहा था ॥५४॥ उसी अवस्थामें मेरे मनमें यह विचार हुआ, कि माताको अपना निज शरीर दिखाना योग्य है, वह उस समय मेरे मुखको बारंबार देखती और चुम्बन कर रही थीं॥५५॥और मैं भी हँसता जाता

आगच्छतस्तदा कार्यं विचार्य सुहितम्मिथः ॥ बकीवधविषादेन ते स्वपन्ति विमोहिताः ॥५३॥ एवं निश्चित्य संसुप्तः पुनरेव महाखलः ॥ एकदाऽहं तदुत्सङ्गे वर्त्तमानो महामुने॥५४॥अचिन्तयं दर्शयामि निजाङ्गस्यातिगौरवम् ॥ सा पश्यन्ती मम मुखं चुम्बन्ती च पुनः पुनः ॥५५॥ लालयन्ती वचोभिश्च हसतो वदनं मम ॥ यावच्चुम्बितुमुद्युक्ता पुनः स्नेहभराप्लुता ॥५६॥ तावद्ददर्श वदने ब्रह्माण्डमखिलं ततः ॥ जङ्गमं स्थावरं विश्वं भुवनानि चतुर्दश ॥ ५७ ॥ साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं खगोलं ज्योतिषां गणम् ॥ वनान्युपवनान्येव नदीनगरसङ्कुलान् ॥ ५८ ॥ दृष्ट्वा मम मुखे माता सद्य आसीत्सुविस्मिता ॥ निमील्य नयने चैव भीता दध्यौ परं हि माम् ॥ ५९ ॥

था, वह मीठे वचनोंसे मुझे कहती हुई स्नेहमें भरकर मेरे मुखको चूमनेके लिये सन्नद्ध हुई ॥५६॥ तब उसी समय मेरे मुखारविंदमें समस्त ब्रह्माण्ड को देखा कि स्थावर, जंगम, जितना संसार है चौदह भुवन ॥५७॥ पर्वत और द्वीपसमेत भूगोल, ज्योतिर्गणोंसे युक्त खगोल, वन और उपवन, नदी और नगर इत्यादि सभीको ॥५८॥ मेरे मुखमें देखकर माताके आश्चर्यका ठिकाना न रहा, वह अत्यन्त ही भयभीत होकर अपने नेत्रोंको

मलती हुई केवल मेरे ही ध्यानमें रत हो गयीं ॥ ५९ ॥ इसके उपरान्त अपनी कुछ एक बुद्धिकी सहायतासे निश्चय करके मेरे शरीरके भारको सहन करनेमें असमर्थ हो मुझे पृथ्वीपर बैठाल देती हुई, इसके पीछे मेरी जँघाएं दूखने लगीं तब मैं अपनी जंघाओंसे न चलकर दोनों हाथोंकी सहायतासे ॥६०॥भांति २ के वचनोंके कहकर उनको सुख देने लगा, माताने उस समय मेरे कमरमें करधनी और पैरोंमें नूपुर पहरा रक्खे थे ॥ ॥६१॥ मैं उसके शब्दको करता हुआ अति शीघ्रतासे उसी समय दौड़ता था, मनुष्य यह देखकर अत्यन्त आश्चर्यमें हो जाते, विशेष करके गोप

बुद्ध्या निश्चित्य तनुजं भाराशक्ता तदा जहौ ॥ अतः परं च जानुभ्यां सपाणिभ्यां चलन्नहम्॥६०॥ सुखमत्यन्तमगममकथ्यं वचनेन हि ॥ मात्रा मे किङ्किणीजालमाबद्धं कटिपादयोः ॥ ६१ ॥ गच्छंस्तद्रवमाश्रुत्य प्राद्रवं द्रुतमद्भुतम् ॥ तादृशं मां च पश्यन्त्यो गोप्यो मुमुदिरे भृशम् ॥६२॥धावन्पात्रं जलं चान्यद्वस्तुजातं स्पृशाम्यहम्॥तत्र तत्र जनन्या मे हाहाशब्दमथोच्यते ॥६३॥ इदं च स्थापितं वस्तु देवपूजार्थमेव हि ॥ समाप्य पश्चाद्दास्यामि तिष्ठ मा स्पर्शनं कुरु ॥६४ ॥ एवं मातुर्वचः श्रुत्वा निवृत्तोऽपि पुनर्मुने ॥ तद्दृष्टिमन्तरेणैव तद्द्रव्यमस्पृशं तथा ॥ ६५ ॥

और गोपियें तो मुझे एकटक लोचनसे देखती रहतीं ॥६२॥मैं जिस समय अतिशीघ्रतासे दौड़कर जलसे भरे हुए बर्तनोंको अथवा जिस किसी वस्तुको भी अपने सामने देखता उन सभीको आग्रह करके पकड़ लेता था, उस स्थानमें मेरी माता हाहाकार शब्द करके यह कहने लगती थीं ॥ ॥६३॥कि मैंने यह समस्त वस्तुएं देवताओंकी पूजाके निमित्त रक्खी हैं, प्रथम हम देवताओंको चढ़ा दें तब पीछे तुम्हें देंगे, तुम बैठे हुए देखते रहो इनमें से किसीको भी स्पर्श न करना॥६४॥हे मुने! माताके इस प्रकार कहनेसे यद्यपि मैं उसी समय उनके कहनेको मान तो जाता था, परंतु उन सभी

वस्तुओंको देखता हुआ जाता था और उन समस्त द्रव्योंको उक्त रीतिसे स्पर्श करता था ॥ ६५॥ फिर जब माता लौटकर आती तो मुझसे पूछती थी कि हे बेटा! क्या तुमने इसमेंसे कुछ ले लिया है? माताके इस वचनको सुनकर मैं ऊँचे स्वरसे चिल्लाने लगता, इस डरसे माता मुझे कभी मारती नहीं थी ॥ ६६॥ मुझे एकमात्र पुत्र कहकर मेरा अनन्यभावसे आश्रय करके मेरे ऊपर वह अत्यन्त ही प्रेम करती थीं, मेरे अतिरिक्त उनके प्रीतिकी सामग्री संसारमें और दूसरी नहीं थी, मैं जब "माँ" इस शब्दको कभी अस्पष्ट और कभी स्फुटरूपसे उच्चारण करता॥६७॥ तब मेरे पिता माता मेरे इन वचनोंको सुनकर अत्यन्त ही आनंद मानते थे, मैं कभी क्रोधमें भरकर पृथ्वीपर लोटता था॥६८॥ और जभी वह कुछएक प्रीतिभरे वचनोंको कहतीं तब मैं प्रसन्न हो जाता

समागत्य वदेन्माता किं कृतं तात ते द्रुतम् ॥ ममाक्रोशभयान्माता न ताडयति मां क्वचित् ॥ ६६ ॥ अतिस्नेहवती यस्मादेकपुत्रपरायणा ॥ मेति वाक्यं स्फुटं वच्मि अस्पष्टमखिलं पुनः ॥ ६७ ॥ मम वाक्यविनोदैश्च पितरौ मुदमापतुः ॥ कदाचिद्रोषमादाय विलुण्ठामि धरातले ॥६८॥ अल्पेन प्रतिवाक्येन सुप्रसन्नो भवाम्यहम्॥ जननी प्रीतिसंयुक्ता न त्यजत्येव मां क्वचित् ॥ ६९ ॥ कृशानुकण्टकफणिस्पर्शभीता निरन्तरम् ॥ भुञ्जाना मां भोजयते पिबन्ती पाययत्यपि ॥ ७० ॥ मय्यर्प्य पूर्वं सा भुङ्क्ते यत्किञ्चित्प्रियमात्मनः ॥ तथा नन्दोऽपि नो भुङ्क्ते मां विना वस्तु किञ्चन ॥ ७१ ॥

था, माताके प्रेमकी सीमा नहीं थी, इस कारण वह मुझे कभी इकला नहीं छोड़ती थीं॥६९॥ पीछे यह (मैं) अग्नि, काँटे, सर्प इत्यादिको छू लेगा, इस डरके मारे उनका मन सर्वदा ही विचारयुक्त रहता था. [इस कारण वह स्वयं ही सावधान रहती, मुझे किसी समय भी इकला नहीं छोड़ती थीं]॥ जब मुझे प्रथम भोजन करा लेतीं तब पीछे आप भोजन करती थीं और जब प्रथम पानी मुझे पिलातीं तब पीछे आप पीती थीं ॥७०॥ माताके पास जो कुछ यत्किंचित् भी प्रिय वस्तु होती उसीको मुझे देती और कहतीं कि हे बेटा! इसे खाओ। इसी प्रकारसे नन्दजी भी

कोई वस्तु हो मेरे विना दिये हुए भोजन नहीं करते थे॥७१॥वे मेरे ऊपर अत्यन्त प्रेम करते और स्वभावसे ही भक्तिमान थे,फिर जब गोपियें आतीं तब मेरे मुखारविंदको देखकर ॥७२॥ उनके आनन्दकी सीमा नहीं रहती, इसीलिये वह वारंवार मुझको देखती थीं, इस रीतिसे बहुत देरतक दर्शनोंके करनेसे आनन्दको पाकर जब अपने२घरोंको जातीं तब मैं उनके पीछे२दौड़ता ॥ ७३ ॥ तब वे मेरे नूपुरके शब्दको सुनकर पीछे फिरकर देखतीं तो मैं उसी समय भागकर माताकी गोदीमें छिपट जाता था ॥ ७४ ॥ तब वे गोपियें फिर इकट्ठी होकर देखने लगतीं, हे मुने ! इस रीतिसे

स्वाभाविकी तयोर्भक्तिरासीत्प्रेमातियन्त्रिता ॥ आगच्छन्ति यदा गोप्यो विलोक्य वदनं मम ॥ ७२ ॥ प्राप्नुवन्ति मुदं नूनं पश्यन्त्योऽपि पुनः पुनः॥दृष्ट्वा चिरं प्रगच्छन्ति तासां पश्चाद्व्रजाम्यहम्॥७३॥किङ्किणीरवमाश्रुत्य पश्यन्त्यावृत्य गोपिकाः॥ तदा पलायनं कृत्वा मातुरङ्कं विशामि च॥७४॥परीत्य कौतुकेनालं पुनरायान्ति गोपिकाः ॥ इति व्रजेऽनेकविधां कुर्वँल्लीलां व्रजौकसः॥७५॥सुखयामि मुने नित्यं गोपान्गोपीश्च गोकुले॥अचिरेणैव कालेन पद्भ्यामेवाचरं पुनः॥७६॥तदा चलस्वभावेन गोपिकागृहमाविशम्॥ प्रतिगेहं स्वभावेन यद्यत्कर्म्म कृतं मया ॥७७॥ तत्तद्गोप्यो यशोदायै कथयन्ति पुनः पुनः॥गर्गो यदूनां हि गुरुः पूज्यः सर्वप्रभुर्मुनिः॥७८॥कदाचिद्वसुदेवेन समाहूय निमन्त्रितः॥भोजितः परमान्नेन दत्त्वा ताम्बूलदक्षिणाम् ॥७९॥

व्रजमें रहकर अनेक प्रकारकी लीलाओंको करता हुआ ॥७५॥ गोप और गोपियोंको आनन्दित करता था। फिर थोड़े समयके बीचमें ही मैंने पैरों चलना सीखा ॥७६॥ उस समय चंचल स्वभावके वश होकर मैं गोपियोंके घरमें गया, उनके घरमें जाकर मैं जो कुछ भी करता था ॥ ७७ ॥ वे गोपियें आकर मेरी मातासे कह देती थीं। यदुवंशियोंके गुरु महाभाग बुद्धिमान् गर्गजी संसारमें सभीके पूजनीय हैं ॥७८॥ वसुदेवजीने एक समय

उनको बुलाकर उनका निमन्त्रण किया फिर विविध प्रकारके पदार्थ उनको भोजन कराकर पीछे ताम्बूलके सहित उनको दक्षिणा दी ॥७९॥ इससे गुरुदेवको प्रसन्न हुआ जानकर विनयके साथ कहने लगे, कि हे ब्रह्मन्! श्रीकृष्णने मेरे घरमें जन्म लिया है इस वृत्तान्तको नन्द तथा दूसरे लोग कोई भी नहीं जानते हैं॥८०॥ अभी उनका नामकरण नहीं हुआ है, हे मुने! सो तुम इस समय उनका नामकरण कर आवो। "मैं इसी प्रकार करूंगा" यह कहकर मुनि चले ॥८१॥ वह वसुदेवजीकी आज्ञानुसार बुद्धिमान् गर्गजी फिर व्रजमें आये; वहां जाकर नन्दजीके उत्तम घरमें गये, नन्दजीने

तुष्टं गुरुं निरीक्ष्याथ प्राह शौरिः परं वचः॥ यथा कृष्णस्य जननं नन्दो वेत्ति न मद्गृहे॥८०॥ न कोऽपि नामकरणं मुने वेत्तुं त्वया कृतम्॥ (तथा त्वया विधातव्यं तत्र गत्वा महामुने) तथैव ते करिष्यामीत्युक्त्वा प्रचलितो मुनिः ॥८१॥ व्रजमेत्याथ नन्दस्य विवेश भवनोत्तमम्॥ नन्दोऽपि दूरात्तं वीक्ष्य सर्वविद्याविशारदम्॥८२॥ समुत्थाय ततः शीघ्रं ननाम भुवि दण्डवत्॥ दत्त्वाऽऽसनं च पाद्याद्यैः पूजयामास तत्त्ववित्॥८३॥ भोजितं परमान्नेन तथान्यद्रव्यसम्पदा॥ ताम्बूलं दक्षिणां दत्त्वा तदोवाच हि तं मुनिम् ॥ ८४ ॥ नन्द उवाच ॥ सतां प्रवेशमात्रेण शुद्ध्यन्ति मलिना इह ॥ दर्शनस्पर्शसंलापकरणैः पापिनो जनाः ॥ ८५ ॥

दूरसे ही महाबुद्धिमान् सब शास्त्रोंके जाननेवाले गर्गजीको आता हुआ देखकर ॥ ८२ ॥ उसी समय उठकर पृथ्वीपर मस्तकको नवाय भक्ति पूर्वक साष्टांग प्रणाम किया, फिर उनको नन्दजीने अत्यन्त भक्ति और श्रद्धाके साथ आसन पाद्यादि देकर भांति भांतिके पदार्थ और अनेक अनेक प्रकारके द्रव्योंसे पूजा की ॥८३॥ फिर विविध प्रकारके मिष्टान्नोंका भोजन कराया और ताम्बूलके साथ दक्षिणा देकर विनयके साथ बोले ॥ ८४ ॥ कि आपके समान पुण्यवान् मनुष्योंके चरण घरमें आनेसे जो मनुष्य अत्यन्त मलीन हैं उस समय वे भी पवित्रभाववाले हो जाते हैं,

आपके दर्शन, स्पर्श और सम्भाषण करनेसे पापियोंके पाप भी नष्ट हो जाते हैं ॥८५॥ गृहस्थोंके अत्यन्त पुण्योंके प्रभावसे उनके घरमें आपका आगमन होता है। आप जो इस प्रकारसे अतिथि होकर हमारे घरमें आये हैं, यह निश्चय ही हमारे भाग्यका फल है ॥८६॥ हमारे समान गृहस्थ मनुष्य कुटुम्बके पालन पोषणमें सर्वदा व्याकुलचित्त रहते हैं, बाहरी कार्योंके करनेमें उनको अत्यन्त ही आवश्यकता रहती है और फिर अत्यन्त आनंन्द प्राप्त होता है, कारण कि इस प्रकारकी आवश्यकता सर्वदा ही दुःखका कारण है, और सभीको अनर्थका मूल है, घरके कार्यमें अधिकतर मग्न रहनेसे हमारे

तेषां गृहाभिगमनं गृहस्थानां शुभोदयम्॥भवेद्ब्रह्मन्भाग्यचयैरनाहूता विशन्ति हि॥८६॥कृपापरा भवन्तश्चापुण्यकर्मफलं ततः॥ आवश्यककुटुम्बादिपोषणाकुलचेतसाम् ॥८७॥ नाशयन्ति समागत्य ततोऽत्यन्तं सुखं भवेत् ॥ गृहस्थकर्मसंसक्तैरपूर्णैरस्मदादिभिः ॥८८॥ किं पूज्यते महाभाग तथाऽप्याज्ञापयस्व माम् ॥ करवाणि तवाज्ञां कां वदस्व मुनिसत्तम ॥८९॥ ज्योतिःशास्त्रप्रदीपं हि जन्मत्रयप्रकाशकम् ॥ श्रीमतां तत्तु विदितं कृतं चानेकधा हि तव ॥ ९० ॥ वसुदेवस्य रोहिण्यां जातः पुत्रोऽत्र वर्त्तते ॥ ममापि तनयो जात उभयोः पश्य जातकम् ॥ ९१ ॥

किसी विषयमें किसी प्रकारका भी पुनर्भाव नहीं होता ॥ ८७ ॥८८ ॥ इस कारण आपके समान महाभाग्य पुरुषोंकी पूजा करनेमें हमारी सामर्थ्य कहां है, तो भी आप हमें आज्ञा दीजिये, यथाशक्ति मैं उसका पालन करूँ, आप मुनियोंमें शिरोमणि हैं, इस कारण सबकी अपेक्षा पूजन करनेके योग्य हैं॥८९॥ज्योतिषशास्त्रके दीपक हैं, जिसके प्रकाशसे संसारी मनुष्योंके जन्मादि स्पष्ट प्रकाशित होते हैं, आपने बहुतसी शाखाओंके विधानसे उसकी रचना की है ॥९०॥ वसुदेवजीके रोहिणीके गर्भसे इस समय पुत्र उत्पन्न हुआ है, सो वह इसी स्थानपर है। और आपके आशीर्वादसे एक हमारे भी

पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ है इन दोनोंके ग्रह कैसे हैं सो आपको देखने होंगे ॥९१॥ नन्दजीके कहे हुए इन वचनोंको सुनकर महाबुद्धिमान् गर्गजी बोले कि कंस तो ऐसा दुष्ट है, कि जिसका ठिकाना नहीं है कदाचित् वह शंकितचित्त हो यहां आकर अनेक विघ्न कर उठावे तब तुम्हारे पुत्रोंपर विपत्ति आनेकी सम्भावना है ॥९२॥ इति श्रीआदिपुराणे सकलपुराणसारभूते नारदशौनकसंवादे भाषाटीकायाम् एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ इसके उपरांत नन्दजी बोले कि, हे गुरुदेव ! आप हमारे घरमें गुप्तरीतिसे इन दोनों बालकोंका नामकरण कर दीजिये ॥१॥ गर्गजी बोले कि, यदि इस

गर्गोऽथ नन्दस्य वचो निशम्य प्रोवाच कंसोऽतितरामसाधुः॥कदाचिदाशङ्क्य निपत्य हन्याद्भवेत्तदानीमनयो महांश्च॥९२॥ इति श्रीआदिपुराणे नारदशौनकसंवादे गर्गागमनं नामैकविंशोध्यायः ॥ २१ ॥नन्द उवाच ॥ रहःस्थितो मामकैश्च ह्यज्ञातोऽस्मिन्गृहे मम ॥ अनयोर्नामकर्मादि कुरुष्व सुसमाहितः ॥१॥ गर्ग उवाच ॥ एवं चेत्तर्हि निश्चित्य संस्कारमनयोर्द्वयोः ॥ करोमि कुलयोग्यं वै मा विलम्बं वृथा कृथाः ॥ २ ॥ कन्यकावचनं श्रुत्वा स्मृत्वा बालौ च संस्कृतौ ॥ मन्यते वसुदेवस्य पुत्रावत्र व्रजे स्थितौ ॥ ३ ॥ आगत्य क्रोधपूर्णश्च मारयेदनयो महान् ॥ अतो रहस्थिते गेहे संस्कार्य्यावर्भकाविमौ ॥ ४ ॥

रीतिसे हो जाय तो मैं निश्चिन्त होकर इन दोनों बालकोंके कुलोचित संस्कार करूंगा, इस कारण अब समयको वृथा न जाने देना चाहिये॥२॥ उस देवीरूपी कन्याके वचन दुरात्मा कंसके हृदयमें सर्वदा जागते रहते हैं, और फिर उसके ऊपर हमारे इन दोनों बालकोंका नामकरण हुआ है, इसको सुनते ही कंस निश्चय ही विचारेगा कि वसुदेवजीके दोनों पुत्र व्रजमें वास करते हैं ॥३॥ तब वह क्रोधमें भरकर अतिशीघ्र आय इन दोनों बालकोंके मारनेका उपाय करेगा इसमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं, इस कारण अपने घरमें ही गुप्तरीतिसे इन दोनोंका संस्कार करा लो ॥ ४ ॥

आज ही दिन अच्छा है,इस कारण आज ही इस मंगलकार्यको करो।तुम स्त्रीके साथ आकर इस उचित कार्यके करनेमें प्रवृत्त हो॥५॥श्रीकृष्णजी बोले
कि महाभागनंदजी गर्गजीके ऐसे वचनोंको सुनकर समस्त अनुष्ठानको यथारीतिसे ठीककर फिर गुप्तरीतिसे यशोदाजीके सहित गर्गजीके पास आये॥६॥
तब महाबुद्धिमान् गर्गजी उन दोनों कुमारोंको देखकर उन दोनोंके जन्मके लग्नको ठीककर फिर उनके गुणोंको इस प्रकारसे कहने लगे ॥७॥ कि
विष्णुके अवतारके समय जो ग्रह और नक्षत्र आकर शोभायमान हुए थे, उसी प्रकारसे वही ग्रह और नक्षत्र आकर इस समय शोभित हैं ॥८॥

परं सुदिनमद्यैव भवाद्यकृतमङ्गलः ॥ पत्न्या सह समागच्छ आरभस्वोचितां क्रियाम् ॥५॥ भगवानुवाच ॥ श्रुत्वा नन्दोऽपि
गर्गस्य वचनं सर्वमाचरन् ॥ रहो यशोदया सार्द्धं गर्गान्तिकमुपागमत् ॥६॥ गर्गोऽपि बालकं वीक्ष्य उवाच परमं वचः ॥ एतयोर्ज
न्मभं सर्वगुणयुक्तं समीक्ष्य च ॥७॥ ग्रहाश्च शोभनफलसूचकाः सर्व एव हि ॥ अवतारे यथा विष्णोस्सुशुभग्रहराशयः ॥८॥
विष्णुरात्मनि संलीनं विश्वमीक्ष्य सिसृक्षया ॥ सुप्तशक्तिषु सर्वासु जगृहे रूपमैश्वरम् ॥९॥ वीक्ष्य भूमिं भराक्रान्तामसुरैर्नृपरू
पिभिः ॥ स्तुतो ब्रह्मादिभिर्देवैः सूक्तैः पुरुषसंज्ञितः ॥ १० ॥

भगवान् विष्णु जिस समय समुद्रमें शयन किये हुए थे, उस समय सम्पूर्ण त्रिलोकीमें मग्न थे,यह देखकर पुनर्वार सृष्टिके उत्पन्न करनेकी इच्छासे
अपनी सब शक्तियोंसे वह ईश्वर इस रीतिसे कहने लगे ॥ ९ ॥ कि असुर रूपधारी राजा दुराचरण करके पृथ्वीपर अधिक भार डाल रहे हैं,
पृथ्वी उनके भारको सहन करनेमें असमर्थ हो गयी है, यह देखकर ब्रह्माजी समस्त देवताओंके साथ मिलकर पुरुषसूक्तके साथ भगवान्‌की

स्तुति करने लगे ॥ १० ॥ भगवान् केशव उनकी स्तुतिसे अत्यन्त ही प्रसन्न हो आकाशवाणी करते हुए फिर बोले, कि हे देवताओ ! मैं पृथ्वीके जितने दुःख हैं उन सभीको जानता हूँ ॥११॥ इसी कारण मैं सपत्नीक हुआ हूँ, तुम सभी मेरी वार्ताको सुनो, यदुवंशियाम जो प्रसिद्ध नामका वंश है तुम सब अपनी२स्त्रियोंके साथ उसमें अवतार लो॥१२॥तब मैंभी अपने अंशसे शेषजीसे धारित पृथ्वीपर अवतार लेकर पृथ्वीके भारको हरण करूंगा॥१३॥फिर मैं अपनी कीर्तिको फैलाता हुआ अपने निजपदको प्राप्त हूंगा, और मेरी कीर्तिके श्रवण करनेसे मनुष्योंके सम्पूर्ण पाप ॥ १४॥

तदा प्रसन्नो भगवानुवाचाथ नभोगिरा॥भो देवाः सर्वमेवैतद्दुःखं ज्ञातं मया भुवः॥११॥तदर्थं यत्नवानस्मि यूयं शृणुत मे वचः॥ अवतीर्णा यदोर्वंशे भवन्तु सह भार्यया ॥१२॥ अहमप्यात्मनोंऽशेन शेषेण धरणीतले ॥ अवतारं विधायाशु हरिष्यामि भुवो भरम् ॥१३॥ कीर्त्तिं वितत्य लोकेषु गमिष्यामि निजं पदम् ॥ मत्कीर्त्तेः श्रवणं कृत्वा नराणां पापराशयः ॥ १४ ॥ विलयं यान्त्यतो लोके ह्यवतारान्करोम्यहम्॥विचरिष्याम्यहं यावत्तावद्रूपमवस्थितः॥१५॥सा योगमाया देवक्या गर्भमाकृष्य बालकम् ॥ सन्निधास्यति रोहिण्यां मां च नन्दालये शुभे॥१६॥तत्रानेकविधां लीलां कृत्वा गोकुलमध्यगः ॥ पुनश्च यमुनावारि बृहद्वृन्दावनादिषु ॥ १७॥ यां श्रुत्वाऽपि मुदं गच्छन्ति किं पुनर्दर्शनेन हि ॥ एवं निशम्याथ विधिर्देवानाह पुरस्थितान् ॥१८॥

मेरे अवतारके लेनेसे नाशको प्राप्त होजायँगे,मैं जितने दिनोंतक पृथ्वीपर इस रूपसे विचरण करूंगा,उतने दिनोंतक तुमको भी मेरे साथ रहना होगा ॥१५॥ वह योगमाया, देवकीके गर्भसे बालकको आकर्षण कर रोहिणीके गर्भमें स्थापित कर फिर नन्दजीके घरमें जायगी ॥१६॥ वहां गोकुलके बीचमें मैं अनेक प्रकारकी लीलाओंको कर फिर यमुनाके किनारे वृन्दावन इत्यादि अनेक स्थानोंमें भांति २ की लीलाओंको करूंगा॥१७॥जिनके

श्रवण करनेसे ही मनुष्योंको आनन्द प्राप्त होगा, फिर दर्शन करनेकी तो बात क्या कहूं। भगवान् विरिंचि देवादिदेव नारायणके ऐसे वचनोंको सुन कर सामने खड़े हुए देवताओंसे कहने लगे ॥१८॥ स्वयं परमेश्वर हरिने जो कहा है उसीके अनुसार तुम सभी लोग मेरी वार्ताको सुनो, और उसको सुनकर फिर उस कार्यको करो; यदुवंशियोंके वंशमें अवतार लो॥१९॥ फिर भगवान् विष्णु भी स्वयं अपने अंशसे इस वंशमें अवतार लेंगे. इसके उपरांत ब्रह्माजी उन सम्पूर्ण देवताओंको यह आज्ञा देकर अपने स्थानको चले गये ॥२०॥ और देवता लोग यथारीतिसे यदुवंशियोंमें जन्म लेकर निवास करने लगे। जो वसुदेवजीके पुत्र हैं वह गर्भमें आकर्षण किये जाकर इसीसे उनका नाम पृथ्वीमें संकर्षण विख्यात होगा इस प्रकारसे वह अत्यन्त बल

देवाः शृणुत वाक्यं मे यदाह परमेश्वरः॥श्रुत्वा कुरुत तद्वाक्यं जायन्तां यादवे कुले॥१९॥ तत्रैव भगवान्विष्णुरंशेनावतरिष्यति॥ इत्युपादिश्य धातापि देवान्स्वं लोकमागमत् ॥ २० ॥ ततो यदुकुले देवा अवतीर्णा वसन्ति हि ॥ वसुदेवसुतो यो वै गर्भं संकर्षणाद्भुवि॥२१॥ संकर्षणेति नाम्ना च बलाधिक्याद्बलस्तथा ॥ बलभद्रो बलदेवः सीरपाणिर्हलायुधः ॥ २२ ॥ लोकानां रम णाद्रामस्तालाङ्को मुसलायुधः॥बालस्तवानन्दकरो लोकानां यद्भविष्यति॥२३॥नन्दनन्दन इत्येषोऽनन्तोऽनन्तगुणादपि॥हृदये सर्वभूतानां प्रेम्णा वसति सर्वदा॥२४॥वासुदेव इति ख्यातो भविष्यति न संशयः॥नराणामाश्रयत्वाच्च नारायण इति स्मृतः॥२५॥

वान् कहे जायँगे, उनके अन्य नाम बलभद्र और बलदेव, सीरपाणि, हलायुध ॥ २१ ॥ २२ ॥ और समस्त संसारमें रमण अर्थात् अत्यन्त प्रीति उत्पन्न करनेसे इस कारणसे राम, तालांक, मुसलायुध, ये भी सब उनके और २ नाम हैं इस रीतिसे तुम्हारा यह बालक तुम्हें और समस्त मनुष्योंको आनंद देगा ॥२३॥ इस कारण यह नंदनन्दन नामसे विख्यात होगा इसपर भी इसके गुणोंका अन्त नहीं है इस कारण इसका दूसरा नाम अनन्त है यह सर्वदा ही प्रेमके वशीभूत होकर सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें वास करते हैं ॥२४॥ इसी कारणसे यह वासुदेव नामसे विख्यात होंगे इसमें किंचित्‌भी सन्देह

नहीं समस्त मनुष्योंके आश्रय देनेवाले हैं इससे इनका नाम नारायण होगा॥२५॥कर्मकांडमें प्रवृत्तिका होना अथवा सांसारिक व्यवहारसे निवृत्तिका हो जाना इन दोनोंहीकी कृष्णसंज्ञा है और समस्त पापोंको आकर्षण अर्थात् दूरकर परमपद देनेसे श्रीविष्णुभगवान्‌का कृष्णनाम विख्यात हुआ है॥२६॥ मनुष्योंकी आनन्दविधायनी इंद्रियोंमें वास्तविक आनन्दशक्तिका संचार करनेसे विष्णुभगवान्‌को हृषीकेश कहते हैं अथवा गौओंके पीछे२ विचरनेसे और इन्द्रियोंमें निर्विकाररूपसे विचरनेके कारण उनका गोविन्द नाम विख्यात है॥२७॥ जिस समय अत्यन्त लम्बायमान रज्जुको यशोदाने नारा

प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्चाप्युभे वै कृष्णसंज्ञिते ॥ कर्षणात्कृष्णनामायं विख्यातो विष्णुसंज्ञकः ॥२६॥ हृषीकाणामिन्द्रियाणामा नन्दकरणाद्विभुः ॥ हृषीकेशो गोषु गच्छन्गोविन्द इति विश्रुतः ॥ २७ ॥ दाम चैवातिविततमुदरे यस्य वर्त्तते ॥ दामोदर इति ख्यातो विगता कुण्ठतास्य च ॥२८॥ विकुण्ठ एव वैकुण्ठः सर्वार्तिहरणाद्धरिः ॥उरुभिर्गीयमानश्च यद्यशोऽस्य भविष्यति॥ ॥२९॥उरुगाय इति स्थानाच्यवनादच्युताभिधः ॥ बहुना किमिहोक्तेन नानानन्तगुणो ह्यसौ ॥ ३० ॥ अनन्तकर्माऽनन्त श्रीस्तथैवानन्तरूपवान् ॥ नामान्यस्य भविष्यन्ति गुणः कर्माकृतिर्यथा ॥ ३१ ॥

यणके उदरमें बांधा था उसी समयमें उनका दामोदर नाम प्रसिद्ध हुआ है ॥२८॥ इनमें किसी प्रकारकी कुंठता नहीं है इस कारण यह वैकुण्ठ हैं और सबकी आर्तिको हरण करनेसे हरि नाम है॥२९॥अतिशय गाये जानेसे इनका नाम उरुगाय होगा,अपने स्थानसे किसी प्रकारसे भी च्युत अर्थात् स्ख लित नहीं होंगे इस कारण अच्युतनामसे विख्यात होंगे अथवा अधिक और मैं क्या कहूँ इनके सभी गुण जिस प्रकारसे अनन्त हैं॥३०॥श्री भी इसीप्रकारसे

अनन्त हैं और इसीप्रकारसे रूप भी अनन्त हैं इसप्रकारसे समस्त गुण समस्त कर्म और समस्त कृत्यके अनुसार पृथ्वीपर यह अनेक नामसे विख्यात होगा ॥३१॥ इसी रीतिसे यह युग२में अवतार लेंगे और उन्हीं२ युगोंके अनुसार इनके तीन वर्ण होंगे । सतयुगमें धर्ममूर्ति इनकी शुक्लवर्णकी होगी त्रेतामें रक्तवर्णकी ॥३२॥ इत्यादि विरंचि और महादेव और अन्यान्य देवता भी जिनकी मायाके वशीभूत हो जाते हैं वही यह तुम्हारा बालक भक्तकी भक्तिसे निरन्तर वशीभूत है ॥३३॥ इस कारण यद्यपि साक्षात् ईश्वरने तुम्हारे घरमें पुत्ररूपसे जन्म लिया है परन्तु तो भी तुम इसको ईश्वर न जान

युगेयुगेऽवतारस्य त्रयो वर्णा युगानुगाः॥कृते शुक्लो धर्ममूर्त्ती रक्तस्त्रेतायुगे क्रतुः॥३२॥विरिञ्चिभवमुख्याश्च यस्य मायावशीकृताः॥ स एवायं वशे भक्तैः कृतो भक्त्या निरन्तरम् ॥३३॥ तस्मादीश्वर एवासौ यदि ते पुत्रतां गतः ॥ परित्यजेश्वरज्ञानं पुत्र पुत्रेति तं शुभम् ॥ ईश्वरेच्छैव भक्तानां पालनीया प्रयत्नतः ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ॥ इति नन्दमुपादिश्य पूजितोऽभिययौ मुनिः ॥ नन्दो मां मुदितो विश्वं ज्ञातवान्परमेश्वरम् ॥३५॥ मुनौ विनिर्गते नन्द आत्मानं पूर्णमाशिषाम् ॥ मेने मया यद्विहितं शृणुष्व मुनिसत्तम ॥ ३६ ॥ यदा प्रचलितः पद्भ्यां गोपिकाप्रेमयन्त्रितः ॥ तासां प्रतिगृहं गच्छन्नाना चेष्टामचीकरम् ॥३७॥

कर अपना पुत्र ही जानना इसीसे तुम्हारा कल्याण होगा॥३४॥ श्रीकृष्णजी बोले कि महाभाग गर्गजी इस प्रकारसे महात्मा नंदजीको उपदेश देकर उनसे पूजितहो अपने स्थानको चले गये,महर्षिके उपदेशसे मुझे साक्षात् विश्वरूपी परमेश्वर जानकर नंदजीके हृदयमें अत्यंत प्रीति उत्पन्न हुई॥३५॥ इस कारण गर्गजीके चले जाने पर अपनेको आशापूर्ण हुआ माननेलगे. हे ऋषिसत्तम!इसके पीछे फिर मैंने जो कुछ किया वह सब सत्य२ही कहताहूँ तुम एकाग्रमन होकर सुनो ॥३६॥ जब मैं पैरों चलने लगा तब गोपिकाओंके प्रेममें मग्न होकर उन सबके घर जानेके लिये विविध प्रकारकी

चेष्टा करने लगा ॥३७॥ इससे उनका प्रेम दिन२ अधिक बढ़ने लगा, इससे वे मेरे प्रेमसे वशीभूत हो नन्दजीके घर विना कार्य और बिना आदरके आने लगीं॥३८॥और अपने बर्तन लेनेके बहानेसे मेरे घर आतीं, फिर वह अपने२ बर्तनोंको गिरा हुआ और गोरससे भरा हुआ देखती थीं फिर मेरे भांति२के बालचरित्रोंसे उनका मन अत्यन्तही प्रसन्न होजाता था ॥३९॥४०॥ हे नारद ! मैं कभी ग्वालबालोंके साथ लेकर खेलनेकी इच्छासे सम्पूर्ण गोपियोंके घरमें जाता और उन गोपियोंमेंसे जौनसी गोपी मुझे दही इत्यादि नहीं देती थी तो मैं उससे बलपूर्वक छीन लेता था, और फिर

तासां तु मय्यभूत्प्रेम दिनानुदिनमृद्धिमत् ॥ नन्दालये च गमनं विना काय विनाऽऽदरम् ॥ ३८ ॥ निधाय भाण्डमन्यत्र त्वदानयनकैतवात् ॥ भित्त्वा पात्रं मया भुक्तं गुप्तं दध्यादिकञ्च यत्॥३९॥पुनः पात्रमभग्नं तत् दृष्टं गोरसपूरितम् ॥ नानाबाल विनोदेन तासां हृष्टमभून्मनः ॥ ४० ॥ यशोदा बालरूपं मां निश्चिनोति निरन्तरम् ॥कदाचिदहमेवासां गृहं गच्छामि नारद ॥ ॥ ४१ ॥ बालकैर्गोपकैः सार्द्धं विनोदाधिक्यसिद्धये ॥या नार्पयत्यहं तस्या बलादप्यद्मि गोरसम् ॥ ४२ ॥ भक्ता मह्यं प्रयच्छन्ति भक्ते भोगं ददाम्यति॥पूर्वं निवेदितं भक्तैर्देहागारसुतादिकम्॥४३॥तेषां यत्किञ्चिदस्तीह धनं मे तन्न चान्यथा॥व्रजे बालविनोदेन सर्वं गृह्णामि तद्वसु ॥ ४४ ॥ मोहशोकौ क्रोधलोभौ क्रूरत्वं मदमत्सरौ ॥ न सन्ति मम भक्तानामतो मोदो व्रजौकसाम् ॥४५ ॥

उसको खा जाता था ॥४१॥४२॥ भक्तगण जो मुझे प्रीतिके साथ अर्पण करते हैं उनकी मैं अधिक वृद्धि करता हूं, सब भक्तोंने पहले मुझे अपनी देह, गृह, स्त्री, पुत्र इत्यादि ॥४३॥सभी मेरे अर्पण कर दिये थे, उनका संसारमें जो कुछ भी है वह सभी मेरा है,इसमें अन्यथा नहीं है, इस कारण मैं व्रजमें बाल लीला कर उससे सबको ग्रहण करता हूं ॥ ४४ ॥ मेरे भक्तोंको मोह, शोक, क्रोध,लोभ, क्रूरता,गर्व और मात्सर्य इत्यादि कुछ भी नहीं होता,

मेरे प्यारे भक्त व्रजवासियोंमें ऊपर कहे हुएमेंसे कोई दोष नहीं था ॥४५॥ मैं उनके छीकोंपर धरे हुए गोरसको देखकर पीढ़ी और ओखलीको लाकर उसके उतारनेकी अभिलाषासे बहुतसे उपाय करके छीके धरे हुए दही गोरस इत्यादि सभीको उतार लेता था॥४६॥और उसमेंसे कुछ थोड़ासा आप खाकर फिर सब ग्वालवालोंको बाँटता था और जो कुछ रहता उसको पृथ्वीपर फेंककर फिर उस घरसे दूसरे घरमें चला जाता ॥४७॥उस घरके गोप और गोपी आकर देखती कि पृथ्वीपर गोरस बिखरा पड़ा है। इधर उधर छीके खाली लटक रहे हैं,यह देखकर वह क्रोधित हो ऊँचे स्वरसे

शिक्यस्थितं समालोक्य गोरसं तज्जिघृक्षया॥ पीठोलूखलमाश्रित्य तदारुह्य मया हृतम् ॥४६॥ भुक्तं किञ्चित्तथा दत्तं बालकेभ्यस्त देव च ॥ शेषं निक्षिप्य भूमौ वाऽगमं तत्र गृहाद्गृहम् ॥ ४७ ॥ गृहेश्वरी गृहस्थो वा प्रविश्यालोक्य चेष्टितम्॥भग्नं क्षिप्तं हृतं द्रव्यं दृष्ट्वा संक्रोशते भृशम् ॥ ४८ ॥ केन मेऽपहृतं द्रव्यं दधिदुग्धादिकं सखि ॥ समीपस्था वदत्येषा नन्दपुत्रो गतोऽधुना ॥ ४९ ॥ आगतः सखिभिः सार्द्धं बालकैश्च समन्वितः ॥ भुक्त्वा पीत्वाऽथ दत्त्वा च गतो नूनं विलोक्यते ॥ ५० ॥ वक्तु समुद्यताऽहं त्वा केनचिन्मुद्रितं मुखम् ॥ इति वार्त्तां वदन्तीं तां समीपस्थां सखीं तु सा ॥ ५१ ॥

चिल्लाकर कहतीं ॥४८॥कि हे सखि ! किसने आकर मेरे घरके दही दूध इत्यादि सम्पूर्ण द्रव्योंका हरण किया है,इसी अवसरमें समीप ही खड़ी हुई एक गोपी बोली कि नन्दका पुत्र तेरे घरमें आया था ॥४९॥और वह अपने सखाओंके साथ सब दूध दहीको खा पीकर और सबको बाँटकर अभी भाग गया है ॥५०॥मैं जब इस बातको कहनेको हुई तो किसीने मेरे मुँहको अपने हाथसे बंद कर दिया,सामने खड़ी हुई सखीकी यह वार्ता सुनकर वह गोपी

उसको ॥५१॥ साथ लेकर अपने घरमें दही बिखरे हुएको दिखानेके लिये ले गयी, वह गोपी जिस समय मेरे प्रभाव और चरित्रोंको देखनेके लिये उसके घरमें गयी ॥५२॥ कि मैं भी उसी अवसरमें उसके घरमें जा पहुँचा और उसी प्रकारका आचरण किया [अर्थात् दूध दहीको खा पीकर बरतनोंको फोड़ दिया] फिर जब वह अपने घरमें आयी तो आकर देखा कि समस्त दूध दही बिखरा हुआ पड़ा है, यह देखकर वह बड़े भारी आश्चर्यमें हो गयी और वह क्रोधित हो ऊँचे स्वरसे चिल्लाकर यह कहने लगी॥५३॥५४॥ कि किसने आकर यह कार्य किया है, मैं अभी जरा एक पड़ोसनके यहां गयी थी कि इसी

गृहीत्वा दर्शयामास गोपिकां निजमन्दिरम् ॥ यावद्विशति सा द्रष्टुं कृष्णप्रभवचेष्टितम् ॥ ५२ ॥ तावत्तस्या गृहं गत्वा तथैवाचरितं मया॥ पुनरागत्य सा गेहमात्मनस्तत्र चाखिलम् ॥५३॥ मयैवापहृतं द्रव्यं वीक्ष्य गोपी सुविस्मिता॥ तदाऽऽक्रोशं कृतवती केनागत्य कृतं त्विदम्॥५४॥ अधुनैव गता गेहादन्यस्या गृहमीक्षितुम्॥ मम गेहेऽखिलः केन नाशितो भाण्डगोरसः ॥ ५५ ॥ कुण्डोपधृतपात्राणि विक्रेतुं संव्रजाम्यहम्॥ गृहेगृहे समाक्रोशः कृतः स्त्रीभिः परस्परम् ॥ ५६ ॥ तत एवाथ ताः सर्वा मातरं वक्तुमुद्यताः ॥ अभिजग्मुस्ततः सर्वा यशोदायै निवेदितुम् ॥ ५७ ॥ वीक्षितुं मुखपद्मं मे कर्म चात्यन्तमद्भुतम् ॥ आगत्योचुर्यशोदायै मत्कर्म बलसूचकम् ॥ ५८ ॥

अवसरमें कोई आकर मेरे दूधके बरतनोंको फोड़ गया और उसमेंका दूध दही पृथ्वीपर फेंक गया है ॥५५॥ ऐसा कहकर वे गोपियें फिर अपने शीसपर गेंडुरी रख उसपर गोरसकी मटकी धर बेचनेके लिये घर२में फिरती हुई मेरे चरित्रोंको परस्परमें कहने लगीं॥५६॥ और फिर उन सबने सलाहकर यशोदाजीसे कहनेके और मेरे मुखकमलको देखनेके लिये उद्यत हो घरमें चलीं, आकर मेरे किये बलसूचक अद्भुतकर्मोंको यशोदाजीसे कहने लगीं॥५७॥ ५८॥

गोपियें बोलीं कि हे महाभागे नंदगृहिणि! वरानने यशोदे! तुम्हारे पुत्रने जो काम किये हैं उनको हम एक एक करके कहती हैं तुम श्रवण करो ॥५९॥ तुम्हारे घरमें यह बालक शान्तस्वभाव और चंचलताको छोड़ साधुभावसे निवास करता है ऐसा देखनेमें आता है परन्तु हमारे घरमें उस प्रकारका नहीं रहता, और क्या कहूं तुम्हारा यह बालक जो कार्य करता है और किसीको भी उस कार्यके करनेका सामर्थ्य नहीं है ॥६०॥ किस समय हमारे घरमें जाता है और किस समय बाहर हो जाता है यह हम नहीं देख सकतीं। यह घरके भीतर जाकर अपनेसे आप दही दूध इत्यादिको लेकर खाता है, फिर जो कुछ

॥ गोप्य ऊचुः ॥ हे यशोदे महाभागे नन्दपत्नि वरानने ॥ शृणु पुत्रकृतं कर्म यदस्माभिर्निगद्यते ॥ ५९ ॥ त्वद्गृहे शिशुरेवायं साधुवृत्त्या विदृश्यते॥यत्करोत्यात्मजोऽयं ते कोऽपि वक्तुं न तत्क्षमः॥६०॥प्रविशन्तं न पश्यामः कदा प्रविशति ह्यसौ॥प्रविश्य भुङ्क्ते दध्यादि भोजयत्यन्यबालकान् ॥ ६१ ॥ रिक्तपात्रमथाक्षिप्य भूमौ याति निरन्तरम् ॥ कुत्रापि दृश्यते नैव पश्चादन्ये वदन्ति हि॥६२॥ यदा किञ्चिन्न लभते रोदयित्वाऽथ बालकान्॥विधाय विपुलं क्लेशं याति शीघ्रमलक्षितः॥६३॥उपायानखिलान्वेत्ति चौरवृत्त्या च शङ्कितः ॥ उच्चैः संवीक्ष्य पीठाद्यैर्विरचय्य विधिं स्वयम् ॥ ६४ ॥

खाते २ बचता है उसको अपने सखाओंको खिला देता है ॥६१॥ फिर जब बरतन खाली हो जाते हैं तो उनको पृथ्वीपर फेंककर निरन्तर चला जाता है और यह कहीं दिखलाई नहीं पड़ता, इसके पीछे दूसरे लोग कहते हैं॥६२॥ फिर इसका एक और स्वभाव है कि जब इसको घरमें कोई खानेकी वस्तु न मिले तब हमारे छोटे २ बालकोंको सोतेसे जगाकर उन्हें भाँति २ के कष्ट दे फिर उसी समय उनको रुलाकर भाग जाता है॥६३॥ यह सब कामोंमें चतुर है विविधप्रकारके उपायोंका जाननेवाला है, चोर लोग भी इससे डरते हैं इसकी सलाहको सबजनें सुनकर छीकेपर रक्खे हुए दूध और दहीको देखकर उसी

समय किसी सखाकी पीठपर चढ़कर अपनी विधिसे उतार लेते हैं फिर और भी गोप ग्वालोंके कंधेपर चढ़कर समस्त द्रव्योंको उतारकर फिर यह तुम्हारा बालक आप खा जाता है॥६४॥इस रीतिसे यह बालकोंके कन्धोंपर चढ़कर बरतनोंको पृथ्वीपर पटककर भाग जाता है,यह देखते ही हम चिल्लाने लगती हैं,तब यह किसी प्रकारका डर न मानकर ऊँचे स्वरसे हँसने लगता है। हे मातः!और अधिक क्या कहें,यह जरासा बालक है तब तो इसमें इतने चारित्र हैं और जब यह बड़ा हो जायगा तब नहीं कह सकतीं कि यह क्या करेगा॥६५॥६६॥ श्रीकृष्णजी बोले कि जब गोपियोंने मेरी

अधिरुह्य वयस्यांसे गृह्णाति द्रव्यभाजनम्॥विभज्य वानरेभ्योऽथ बालेभ्यः स्वयमत्ति च॥६४॥आरुह्य गोपकस्यांसे भित्त्वा भाण्डं प्रयात्यसौ॥ यदाऽऽक्रोशनमत्युच्चैः कुर्मः स हसति स्फुटम्॥अद्य बालतनुर्मातः किमग्रेऽसौ करिष्यति॥६६॥ श्रीकृष्ण उवाच॥ गोपीष्वेवं वदन्तीषु शृण्वन्त्यां मम मातरि॥न वदामि न पश्यामि यशोदाभयशङ्कितः॥६७॥ गोपीनां वचनं श्रुत्वा यशोदा किं वदेदिति॥ अधोदृष्ट्या प्रपश्यामि पुनर्वाचो वदन्ति ताः॥६८॥लिप्तेषु चित्रितेष्वेव भवनेषु तवात्मजः॥करोति मेऽन्यथा याति नाना भीत्या प्रतर्जनैः॥६९॥बालकान्प्रेष्य पात्राणि चास्फोटयति कुत्रचित्॥ एवं प्रकुरुते प्रातः प्रत्यहन्तु तवात्मजः॥७०॥

माताके निकट इस प्रकारके वचन कहे, तब मैं यशोदाजीके डरके मारे कुछ भी न बोला और न मैंने उनकी ओरको देखा॥६७॥नीचेको दृष्टि किये यही देखता रहा कि देखूं अब माता इनको क्या उत्तर देती हैं,इसके पीछे फिर सब गोपियें मिलकर कहने लगीं॥६८॥कि तुम्हारा यह बालक हमारे घरमें जाकर भांति भांतिके अनिष्ट कार्य करता है,कभी बालकोंके हाथमें हमारे बरतन देकर उनमें चूर्ण२करवाता है,फिर यह सभी बालक

गर्जना करते हुए हमें भय दिखाते हैं और हमारे बालकोंके वस्त्रोंको चीर फाडकर फेंक देते हैं इस प्रकारसे यह तुम्हारा पुत्र अपने सखाओंके साथ प्रतिदिन ऊधम मचाता है ॥६९॥७०॥हम क्या करें कहां जायँ?हे यशोदे!तुम अपने इस पुत्रको बरज लो उनके वचनोंको सुनकर यशोदाजी कहने लगीं कि तुम्हारी इन बातोंको सुनकर मुझे बड़ा ही आश्चर्य होता है, कारण कि हमारा यह बालक सर्वदा ही अपने घरमें बैठा रहता है और कहीं भी किसीके घरको नहीं जाता॥७१॥७२॥हाय! मैं और अधिक क्या कहूं,यह बालक स्वभावसे ही बड़ा डरपोक है,अपने घरमें घुसते हुए भी इसे डर हो

किं कुर्मः कुत्र गच्छामो यशोदे वारयात्मजम् ॥ इति श्रुत्वा यशोदा च प्राह गोपीः समन्ततः ॥ ७१ ॥अहो मेऽद्भुतमाभाति ह्येतासां वचने ध्रुवम् ॥ गृहे भवति बालोऽसौ न कुत्रापि च गच्छति॥७२॥हा विभीतो न वै याति परगेहं पुनः कुतः॥ प्रातः केन क्रमेणासौ यूयं विभ्रान्तबुद्धयः ॥ ७३ ॥ भवतीनां मनो यादृक्तथा बाले निगद्यते ॥ वृथा परापराधेन को लाभो वा भविष्यति ॥ ७४ ॥ युष्माकमाशीर्वचनैर्बालकः समभून्मम ॥ वद्ध्वोंऽमोघाभिराशीर्भिर्न चाक्रोश्यः कदाचन ॥ ७५ ॥ आक्रोशवाक्ये मम चेन्मनोऽतीव भयाकुलम् ॥ किं पुनश्चास्य बालस्य स्वभावात्सौम्यरूपिणः ॥ ७६ ॥

ता है फिर दूसरेके घरमें किस प्रकार जाता होगा,तुम्हें अवश्य ही इसमें भ्रम हो गया है तभी तो तुम इसप्रकार कहती हो॥७३॥अथवा जैसा तुम्हारा मन है वैसे ही तुम इस बालकको कहती हो,तुम वृथा ही एकके शिर क्यों अपराध डालती हो,इसमें तुम्हें क्या लाभ होगा॥७४॥ विचारकर देखो कि तुम्हीं सबके आशीर्वादोंसे हमारे यह पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ है इस कारण तुम सभी इसको आशीर्वाद दो,किसी प्रकार भी इसके ऊपर क्रोध मत प्रकाश

करो। मैं जो किसीको क्रोधयुक्त देखती अथवा रिसभरी वार्ता सुनती हूं तो निश्चय ही मेरे प्राण भयभीत होते हैं, यह बालक स्वभावसे सौम्यमूर्ति है इस सुकुमार बालकके ऊपर क्रोध करते हुए मुझे भी डर लगता है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ हे व्रजयुवतियो ! तुम क्या नहीं जानती कि यह बालक मेरा प्राण है और कभी भी किसीका कुछ अपराध नहीं करता, इस कारण तुम मुझसे क्या कहती हो ? ॥ ७७ ॥ माता जब यह कहकर चुप हुई तब मैं रोने लगा, उसीसे माताको मोह प्राप्त हुआ वह सबको भूल गयी और सब गोपियें भी आश्चर्यमें हो गयीं, फिर उनमेंसे कोई कुछ भी नहीं

बालकोऽयं मम प्राणः किं वेत्ति व्रजयोषितः॥नापराध्यति कस्मैचित्किं वा सर्वा वदन्ति मे॥७७॥ततोऽहमब्रुवं किञ्चिद्रुदन्निव विमोहयन्॥वचनं श्रोत्रसुखदं तासामपि मनोहरम्॥७८॥कुत्रत्याः क्व गृहं मातश्चैतासां नच वेद्म्यहम् ॥ वृथा जल्पन्ति जननि प्रागतोऽत्र समागताः॥७९॥ अहं बिभेमि सततं वानरेभ्यः कुसङ्गिनः ॥ तान्वानरान्सखीनेता वदन्त्यत्राति विभ्रमात् ॥८०॥ त्वयैकस्मिन्दिने मातर्वानराद्भीषितो यतः॥तत आरभ्य कुत्रापि न गच्छामि गृहान्तरात्॥८१॥ पीत्वा स्तनं तु तृप्तः संस्तवो त्सङ्गगतो ह्यहम् ॥ क्व गतो गृहमेतासां कश्च भुक्तस्तु गोरसः ॥ ८२ ॥

बोली आपसमें एक एकका मुँह देखने लगीं, इसके उपरान्त मैं उन सभीको सुखदेनेवाले मनोहर ॥७८॥ वचनोंको बोला कि हे मैय्या ! यह कौन हैं ! और कहांसे आयी हैं, इनका घर कहां है, मैं तो इनको बिंदु और विसर्गके समान कुछ भी नहीं जानता. हे मातः ! ये सब मिलकर तुम्हारे सामने झूंठ कह रही हैं ॥७९॥ मैं तो वानरोंसे सदा ही डरता हूं, इस कारण उनका हमारा साथी होना किस प्रकार संभव हो सकता है ? परन्तु यह तो वानरोंको हमारा साथी कहकर तुम्हें समझाती हैं इनको इसमें भ्रम हो गया है ॥८०॥ हे मातः! आपने जो एकदिन मुझे वानरको दिखाकर डरा दिया था उसी

दिनसे मैं घरसे बाहर कहीं भी नहीं जाता॥ अधिक क्या कहूं तुम्हारे स्तनोंके दूधके पीनेसे ही मुझे इच्छानुसार तृप्ति हो जाती है, मैं उसीको पान करता हूं, और आपके पास सर्वदा ही शयन किये रहता हूं, तब फिर किस समय इनके घर गोरस पीनेके लिये गया ॥८१॥८२॥ आप जो मुझे अत्यन्त प्रीति और यत्नके साथ सम्पूर्ण पदार्थ खानेके लिये देती है मुझे उसमें किंचित् भी रुचि नहीं होती, ऐसी अवस्थामें भी क्या मैं उनके घर चोरी करनेके लिये गया था॥८३॥ यह भला किस प्रकार संभव हो सकता है, यह निश्चय ही झूठ कह रही हैं, मैं तो दूसरोंके घर भूलसे भी कभी नहीं जाता, आपही इसमें

त्वया गृहे यन्महता दीयते तु प्रयत्नतः॥ तन्मे न रोचते चौर्य्यं कथमन्यगृहे कृतम्॥८३॥ ध्रुवं मिथ्या वदन्त्येताः परकीयमहं गृहम्॥ न वेद्मि किं प्रजल्पन्ति प्रत्यक्षं त्वं विचारय ॥ ८४ ॥ यावत्पिता गृहे तिष्ठत्तावन्मां लालयत्यसौ ॥ पश्चात्त्वमेव मां मातर्न मुञ्चसि कदाचन॥८५॥ तवाङ्गुलिमथालम्ब्य प्रविशामि गृहान्तरम्॥ गृहाद्बहिर्वाऽपि तथा त्वया सार्द्धं व्रजाम्यहम्॥८६॥ एता ब्रुवन्ति सखिभिः सहास्माकं गृहं गतः॥ सखायः स्वगृहे सन्ति वानराश्च वनान्तरे॥८७॥ अहं तवान्तिके नित्यं किमुन्मत्ता वदन्ति वै ॥ यदि बालाः सखायो म आयान्ति क्रीडिते तदा ॥ गृहाङ्गणे गृहद्वारि क्रीडा भवति नान्यतः ॥ ८८ ॥

विचारकर देखिये॥८४॥ मेरे पिताजी जबतक घरमें रहते हैं तबतक वह मुझे अपने साथ लिये हुए समयको व्यतीत करते हैं, फिर जब पिताजी बाहर चले जाते हैं तब आप मुझको अपने साथ लिये हुए रहती हैं आप कभी भी मुझको इकला नहीं छोड़तीं ॥ ८५ ॥ मैं सर्वदा ही तुम्हारी ऊँगली पकड़े हुए घरके भीतर जाता हूं, और आपकेही साथ घरके बाहर होकर इधर उधर फिरता हूं ॥ ८६ ॥ फिर तो भी यह अपनी अपनी सखियोंके साथ कहती हैं कि, मैं इनके घरमें गया था, मेरे सखा सर्वदा ही अपने घरमें रहते हैं और वानर भी वनके बीचमें

निवास करते हैं, और मैं भी नित्य आपके साथ रहता हूँ, इस कारण यह उन्मत्ताके समान कथा कहती हैं, और भी देखो! हमारे सखा यदि कभी खेलनेको आ जाते हैं, तब हम सब मिलकर घरके दरवाजेके बाहर खेलते रहते हैं, और कभी भी कहींपर जाकर हमलोग खेल अथवा किसी प्रकारका कार्य नहीं करते ॥८७॥८८॥ सम्पूर्ण गोपियोंको मेरे इन वचनोंके सुननेसे बोलनेकी सामर्थ्य न रही सभीने समझा कि हमारी ही भूल है यह विचारकर अपने २ घरोंको चली गयीं ॥ ८९ ॥ इति श्रीआदिपुराणे नारदशौनकसंवादे भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२ ॥ श्रीभगवान्

गेहं गन्तुं चोत्सुका व्रीडिताश्च ह्येतच्छ्रुत्वा गोपिकास्तास्समस्ताः ॥ वचो नोचुः किंचिदेवोत्तरं वा ह्यात्मभ्रान्तिं मेनिरे तास्तदा हि॥८९॥इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे वैयासिके नारदशौनकसंवादे कृष्णचौर्यवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥ श्रीभगवानुवाच॥श्रुत्वा तथा मम वचो यशोदा संशयं गता ॥ गोपिकानां सविनयं समाधानमथाकरोत्॥१॥भवतीनां वचः सत्यं यद् ब्रुवन्ति समागताः ॥ नायं ममैव बालोऽयं युष्माकमपि नान्यथा॥२॥स्वकीयबालकक्रूरैरपराधैर्न पीड्यते ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा वदनं वीक्ष्य मे चिरम्॥३॥यशोदामानितास्ताश्च स्वगृहाण्यभितो ययुः ॥ हसन्त्यः कथयन्त्यश्च यशोदावचनादलम् ॥४॥ धन्यं जनुर्यशोदाया यस्या बालोऽयमीदृशः ॥ किशोरवयसाऽस्मभ्यं यशोदानिकटे शिशुः ॥ ५ ॥

बोले कि यशोदाजी मेरे इन वचनोंको सुनकर संशयमें पड़ीं। इसके उपरांत विनय सहित संपूर्ण गोपियोंको समझा बुझाकर कहने लगीं ॥ १ ॥ कि तुमने आकर जो कुछ कहा है वह सब सत्य है और मेरा यह बालक भी झूठ नहीं कहता है॥ २॥ गोपी बोलीं अपने बालकके अपराध करनेपर तुम उसे नहीं मारती हो, गोपियोंके इन वचनोंको सुनकर माता मेरे मुखको देखने लगीं॥३॥यह सुनकर यशोदाजीने सभीको शांत किया, वह उनके वचनों

को सुनकर मेरे मुखको देखकर अपने २ घरोंको चली गयीं, जानेके समय हँसकर यशोदाजीसे कहा, कि यशोदाजीका ही जन्म सार्थक है, कारण कि जिन्होंने ऐसे अलौकिक शक्तिसम्पन्न बालकको गर्भमें धारण किया, देखो ! कुमार अवस्थामें ही इस बालकके ऐसे आश्चर्यदायक कार्य हैं ॥४॥५॥ इनके चरित्रोंको हम नहीं जानतीं इस बालकने शीघ्रताके साथ क्या कहा कुछ भी समझमें नहीं आया और फिर किसीसे भी यह विचलित नहीं होता ॥६॥ और हमने जो कुछ कहा था उसको इसने एकबार ही मिथ्या कर दिया यशोदाजीको भी इसके वचनोंपर पूर्ण विश्वास हो गया है ॥ ७ ॥

ब्रूते किं कारणं तच्च न विज्ञस्तस्य चष्टितम् ॥ अस्पष्टं वचनं वक्ति त्वरया न चलत्यपि ॥६॥ अस्माकमेव वचनं मिथ्या च कुरुतेऽखिलम् ॥ यशोदाऽपि च प्रत्येति तद्वचः सर्वमेव हि ॥७॥ किं कुर्मः कथयामः क्व कः प्रत्येष्यति नो वचः॥ आगमिष्यति चेद्बालः पुनरस्मद्गृहं यदि ॥८॥ तं गृह्णीमो बलाद्गोप्यो यूथीभूय व्रजाबलाः॥गृहीत्वा तं नयिष्यामस्तदा किं कथयिष्यति ॥९॥ यस्या गृहे विशत्यद्य दत्त्वा गेहे कपाटकम्॥स्वाक्रोशन्तु भृशं सर्वा आयास्यामो द्रुतं श्रवात् ॥१०॥ सख्यो गच्छति श्रीकृष्णः शीघ्रं कृत्वा पलायनम् ॥ ततोऽप्येनं ग्रहीष्यामः करिष्यामो मनोगतम् ॥ ११ ॥

अब हम क्या करें और कहां जांय कौन हमारे वचनोंका विश्वास माने खैर जो हुआ अबकी बार यह बालक फिर कभी हमारे घरमें आवे ॥८॥ तब सब गोपियें मिलकर इसको पकड लेना और फिर पकडकर उसी समय यशोदाजीके पासको ले चलेंगी तब वह क्या कहतीं हैं देखेंगी ॥ ९ ॥ यह बालक जिसके घरमें भी आज जाय वही अपने घरके किवाँड बंद कर लेना और फिर ऊँचे स्वरसे चिल्ला पडना तब हम सभी वहां आ जायँगी.

और इसके सखाओंको भाग जानेके समय शीघ्र ही इसको पकड़ मनचीते कार्यको करेंगी ॥१०॥११॥ फिर इसे यशोदाजीके समीप उनके ही घर ले चलेंगी तब उनसे कृष्णके दोषोंको कह सुनावेंगी तब देखो फिर यशोदाजी क्या कहती हैं ॥१२॥ इस रीतिसे आपसमें सम्पूर्ण गोपियें वार्तालाप कर अपने घरोंको चली गयीं, इसके उपरान्त जब रात्रिमें सोयीं तो उन्होंने स्वप्नमें भी वही चरित्र देखे ॥१३॥ कि कोई स्वप्नावस्थामें हमें गोदी लेकर बड़े प्यारके साथ बारम्बार आलिंगन और मुखचुम्बन करती है और फिर मेरे शरीरको देखकर अत्यन्त सुख पा रही है ॥१४॥

यास्यामः सदनं नीत्वा यशोदायाः पुनर्वयम् ॥ वक्ष्यामः खलु तं तस्मै तदा सा किं वदिष्यति ॥ १२ ॥ इदमेव परं कार्यं कथयित्वा गृहं गताः ॥ रात्रौ ताः शयने सुप्ता ददृशुस्तत्तदेव हि ॥१३॥ काचिद्गृह्णाति मामङ्के समालिङ्गति चुम्बति ॥ काचित्पश्यति मे कान्तं मुखमत्यन्तमद्भुतम् ॥१४॥ काचिद्यशोदापुरतो ब्रूते बालस्य चापलम् ॥ काचिदालक्ष्य हसति मन्मुखं मदनाकुला ॥ १५ ॥ सुमनागपि गोपीनामन्तरायो न विद्यत ॥ तथा जाग्रदवस्थायां तथा स्वप्ने महत्सुखम् ॥ १६ ॥ व्यतीतायां निशायां तु प्रातरेवाहमुत्सुकः ॥ सखीनाहूय सकलानिदं वचनमब्रुवम् ॥ १७ ॥

और कोई यशोदाजीके पास जाकर मेरी बालचपलताको कह रहा है, और कोई कामके वशीभूत होकर मेरे मुखको देखकर मेरे साथ वार्तालाप करती हुई हँसी कर रही है ॥१५॥ उन गोपियोंके हृदयमें मेरा अभिन्न प्रेम था किसी भांतिसे भी अन्तर नहीं था, इससे वह जाग्रत् और स्वप्नकी अवस्थामें सदा ही परम सुखको भोगा करती थीं ॥१६॥ रात्रिके बीत जानेपर प्रातःकाल ही उत्सुकमन हो सम्पूर्ण सखाओंको बुलाकर यह वचन मैं बोला[1] ॥१७॥

१–यह कृष्णकी उक्ति है ।

कि हे सखाओ ! तुम सुनो जो मैं कहता हूं, जब गोपी आवेंगी तो तुम लोग भाग जाना वे मुझे पकड़ लेवेंगी ॥१८॥ पर मैं उनके हाथ आकर भी फिर अपने हाथको छुटाकर भाग आऊँगा, फिर उनके बारम्बार पकड़नेपर भी मैं उनके हाथसे छूटकर भाग ही जाऊंगा॥१९॥ इस रीतिसे उनके साथ भांति२ की क्रीड़ा करता हुआ समयको व्यतीत करता था। मेरे सखा ग्वालबाल स मिलकर मेरे भ्राताको पुकारकर कहते कि हे राम! हे कृष्ण! हम लोग सब ॥२०॥ उस गोपीके घरमें जाकर पहलेके समान खाने लगे परन्तु डर लगते ही उसी समय वहांसे भाग आये, फिर वहां जरा देरको भी न ठहर सके,

भोः सखायः शृणुध्वं मे वचनं यद्ब्रवीमि वः॥पलायितेषु सखिषु मां ग्रहीष्यन्ति गोपिकाः॥१८॥ पलायनं विधास्यामि तासां पाणिगतोऽप्यहम् ॥ गृहीतो बहुशस्ताभिरुन्मुच्यापि पलायितः॥१९॥करिष्येऽनेकशः क्रीड़ास्ताभिः सह मनोरमाः॥ ते मामूचु र्गोपबाला राम कृष्ण त्वया सह ॥२०॥ भोक्ष्यामस्तत्र गत्वा च न तिष्ठामो भये सति ॥ तावत्त सङ्गिनो नूनं यावन्नायान्ति गोपिकाः ॥२१॥ दृष्ट्वा गोपीरुपैष्यामः पलाय्य निजमन्दिरम् ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा गोपास्तानहमब्रवम् ॥ २२ ॥ ज्ञात मया यदुक्तं वै का शक्तिश्चरतामिह ॥ अहमेव बलं बुद्धिरहमेव स्वलं क्रिया ॥२३॥ अहं गमिष्ये गोपीनां गृहेष्वेवं विनिश्चितम् ॥ एष्यन्ति चेन्मयि गते गोप्यो वेष्टयितुं बलात् ॥ २४ ॥

इस कारण जबतक वह गोपी न आवे तबतक हम तुम्हारे ही साथ रहेंगे॥२१॥उसको देखकर फिर उसी समय भागकर अपने अपने घरोंको चले जायँगे, मैं उनकी यह वार्ता सुनकर उनसे बोला ॥२२॥ कि तुम्हारे अभिप्रायको मैं जान गया हूँ परन्तु किसमें ऐसी शक्ति है जो मेरे सम्मुख ठहर सके फिर तुमको कौन पकड़ सकता है ? देखो ! मैं ही सबका बल हूँ, मैं ही सबकी बुद्धि हूँ, मैं ही सबकी क्रिया हूँ ॥२३॥मैं ही इस प्रकार निश्चिन्त

तासे गोपियोंके घरमें जाता हूँ और जब वह मुझे बल करके पकड़ने लगती हैं ॥२४॥ हे बालको ! तभी मैं अपनेको छुड़ा लेता हूँ इस कारण तुमको कुछ भी भय नहीं है, अब तुम और सब बालक जाओ जिस घरमें देखो कि इस घरकी घरवाली नहीं है ॥२५॥ वहां ही तुम सब जाकर शीघ्रतासे भोजन कर आओ, हे व्रजबालको ! मैं इधर उधर देखता हुआ व्रजमें घूमूंगा ॥ २६ ॥ जिस घरको तुम सूना देखो उसी समय उसमें जाकर भोजन करो, इस प्रकारसे निश्चय कर वे सब किसी गोपीके घरमें घुसे ॥ २७ ॥ तब उसी समय वह गोपी भी अपने घरको आयी तो वह

तदात्मानं विमोक्ष्यामि भवन्तो यान्तु बालकाः ॥ वर्त्तमाना भवन्नैव गृहिणी यत्र सद्मनि ॥ २५ ॥ तत्र प्रविश्य भोक्तव्य मस्माभिर्गोपबालकाः ॥ व्रजमध्ये चरिष्यामो वीक्षमाणाः परस्परम् ॥ २६॥ विलोक्यैव गृहं शून्यं प्रवेक्ष्यामो द्रुतं वयम् ॥ एवं विचार्य कस्याश्चित्प्रविष्टोऽहं गृहान्तरम् ॥ २७ ॥ गोपी गृहं प्रविश्याथ मामुवाचागतो भवान् ॥ केशेष्वद्य गृहीत्वा त्वां यामो मातुस्तवान्तिकम् ॥ २८ ॥ तदाऽहं लज्जितस्तस्या वचनश्रवणेन हि ॥ भ्रामिता मोहिता साऽन्यत्रावोचात्किञ्चिदेव न ॥ २९ ॥ तया कैतवमन्त्रेण गोपीभिर्मन्त्रितं यथा ॥ गृहीतमखिलं तस्याः पश्यन्त्यप्यवदन्न च ॥ ३० ॥

मुझसे बोली कि आज तुम आये दीख हो, अच्छा आज मैं तुम्हें पकड़कर तुम्हारी माताके पासको ले जाऊंगी ॥ २८ ॥ मैं उसकी यह वार्ता सुनकर लज्जित हुआ, इसके पीछे फिर मैंने अपनी मायाका विस्तार किया, कि जिसके वशसे सब एकबार ही मोहित हो गये और सभीको भ्रम उत्पन्न हो गया, फिर कोई कुछ भी नहीं बोल सका ॥२९॥ काठकी पुतलीके समान चेष्टारहित होकर सब देखती रह गयीं, उनकी सब

कल्पना और विचार नष्ट हो गये, मैं इसी अवसरमें उनके सम्मुख ही समस्त पदार्थोंको लेकर, बालकोंके साथ खाने पीने लगा ॥३०॥ तब उसी समय वह गोपी मुझसे बोली कि हे कृष्ण ! तुम कब और किस रीतिसे यहां आये हो ! ॥३१॥ यदि अनुग्रह करके आये हो तो आनंदके साथ रहकर हमारे घरको शोभित करो। तब मैंने उत्तर दिया कि माता मुझे बारम्बार ताड़ना करती है,इस कारण मैं उनसे रूठकर इधर उधर घूमता हुआ इस स्थानपर आया हूं ॥३२॥ मुझे भूख बड़ी देरसे लग रही है, यदि कुछ हो तो खानेके लिये दे दो, मैं इस समय खानेके लिये ही तुम्हारे घरपर आया हूं,यह देखो मेरे सब सखा मुझे बुलानेके लिये आ रहे हैं,मुझे भूख लग रही है इसी निमित्त मेरी माताने इनको मेरे बुलानेके निमित्त भेजा है,

वयं भुक्त्वा च पीत्वा च यदा गन्तुं समुद्यताः ॥ तदा पप्रच्छ मां गोपी कथं कृष्ण समागतः॥ ३१ ॥सुमुख स्थीयतां तात मद्गृहं शोभितं कुरु॥ मया चोक्तमहं मात्रा ताडितो बहुशो गृहे ॥३२॥ क्षुधितोऽहं प्रदेयन्ते किञ्चिच्च भोजनं मम ॥ सखायश्चागता नेतुं क्षुधार्त्तो न व्रजाम्यहम् ॥३३॥ सा सत्यमिति मत्वैव मोहिता मद्वचःश्रवात् ॥ उत्तार्य्य पात्रे गव्यं च बहुशोऽदात्सुसंस्कृतम्॥ ॥ ३४ ॥ मया च भुक्तं सखिभिः ततोऽन्यस्या गृहं गतः ॥ बहिर्मयि गते सा च मोहमाप व्यचिन्तयत् ॥ ३५ ॥

परन्तु मैं जाऊंगा नहीं [इसी कारणसे कहता हूं कि यदि कुछ हो तो मुझे खानेके लिये दे दो,भूखके मारे मेरे हृदयमें ज्वाला भड़क रही है, अब और अधिक देर मैं नहीं ठहर सकता हूं, भूखके मारे प्राण कंठतक आ रहे हैं इस कारण तुम शीघ्र ही मुझे खानेके लिये दो]॥३३॥मेरे इस प्रकारके वचनोंको सुनकर उसको अत्यन्त ही मोह प्राप्त हुआ, तब वह भ्रमरूपी कुएँमें पड़कर मेरे वचनोंको सत्य मानकर ढेरके ढेर पकवान और सुन्दर गायका दूध एक पात्रमें लेकर मुझे खानेके लिये देने लगी॥३४॥तब मैं सखाओंके साथ भोजन कर एक और दूसरी गोपीके घर गया,मेरे चले जानेपर उस गोपीको

मोह प्राप्त हुआ और चिन्ता करने लगी ॥३५॥ देखो! मैंने कैसी चतुरता की और गोपीने भी कैसा कार्य किया कि मैंने उसीके हाथसे दूध दहीको लेकर सपूर्ण सखाओंको बांटा॥३६॥और जब मेरे सब सखा खा पीकर चले गये तब वह गोपी मेरे मोहसे छूटकर चैतन्यताको प्राप्त ई और बोली कि देखो मैंने क्या किया अब मैं क्या करूं मनुष्यको कार्य करनेके उपरांत ही अच्छे बुरेका ज्ञान होता है॥३७॥अब फिर कभी जब कृष्ण आवेंगे तब अपना हितसाधन करूंगी, इधर मैंने दूसरी गोपीके घरमें सखाओंके साथ प्रवेश किया॥३८॥जैसे ही मैं उसके संपूर्ण पदार्थोंको (छींकेसे) उतारकर खाना

किं मया मन्त्रितं मार्गे गोपीभिः किमिदं कृतम् ॥ पश्यन्त्या मे हृतं गव्यं सखिभ्यश्च समर्पितम् ॥३६॥ भुक्त्वा पीत्वा गताः सर्वे ह्यहो मे बुद्धिमोहनम्॥कृतमासीत्प्रपश्यन्त्या गतेष्वथ करोमि किम् ॥३७॥ पुनरेष्यन्ति चेदत्र करिष्यामि निजं हितम्॥ अथान्यासदने चाहं प्रविष्टः सखिभिः सह॥ ३८॥ यावदुत्तार्य्य तद्द्रव्यं भोक्तुमेव समुद्यताः ॥ तावत्प्राप्ता गृहं गोपी द्वारमारोध्य संस्थिता ॥३९॥ उवाच साऽस्मान्के यूयं मद्गृहं समुपागताः ॥ तदाऽहमब्रुवं तस्यै वञ्चयन्नथ युक्तिभिः ॥४०॥ पित्रा नन्देन मात्रा च प्रेषितस्तत्र सन्निधौ ॥ अतिथिर्मे मुनिः कश्चित्सह शिष्यैरुपागतः ॥ ४१॥

चाहा कि वैसे ही उस गोपीने आकर घरका द्वार बन्द कर दिया॥३९॥ और फिर मुझसे बोली कि तुम किस लिये मेरे घरमें आये हो? तब मैं निःशंकित हृदयसे उसी समय उसकी युक्तिको खंडन करके उससे कहने लगा ॥४०॥ कि पिता नन्द तथा मैया यशोदाजी इन दोनोंने ही मुझे तुम्हारे पास भेजा है, उन्होंने कहा है कि आज हमारे घर ऋषि अपने शिष्योंको साथ लिये हुए आये हैं और वह हमारे अतिथि सत्कारको ग्रहण करेंगे ॥४१॥

इसलिये तुम्हारे घरमें जो कुछ दूध दही हो वह सभी हमें दे दो,इसी कारणसे मैं बहुत देरसे तुम्हारे घरमें बैठा हुआ तुम्हारी बाट देख रहा था। तुम घर पर नहीं थीं॥४२॥वह गोपी मेरे यह वचन सुनकर भ्रमके साथ अपने घरका सब ही दूध दही आदरके साथ मुझे देकर बोली कि जब नन्द यशोदाने तुम्हें लेनेके लिये भेजा है तब मैं इस जरासे दूध दहीको किस प्रकार घरमें रख सकती हूं इस कारण तुम सभी ले जाओ॥४३॥वह मेरे कपटको नहीं जानती थी इस कारण कुछ भी नहीं समझ सकी और समझनेकी चेष्टा भी नहीं की इसी निमित्त सीधे स्वभाव उसने सब ही मुझे दे दिया।मैं सहसा उन सब को लेकर सखाओंको साथ ले द्वारपर पहुँचा॥४४॥और वहां बैठकर दूध दहीको निःशंक हृदयसे खाने पीने लगा,यह देखकर वह गोपी मुझसे पूंछने

दधिदुग्धादिय त्किञ्चिद्भवेदद्य तवालये॥चिरं स्थितो भवद्गेहे भवती न गृहे स्थिता॥४२॥साऽब्रवीन्मां मया वस्तु सर्वं तुभ्यमिहार्पितम्॥गोरसस्तु कथं रक्ष्यस्तावके गृहवस्तुनि॥४३॥इत्युक्त्वा दधिदुग्धादि ददौ कैतववञ्चिता॥मयाच समुपादाय सखिभिर्द्वारि प्रापितम्॥४४॥तत्र पीतं च भुक्तं च तावत्सा च समागता॥पप्रच्छ किं हृतं बाला भवद्भिर्वञ्चितास्मि किम्॥४५॥कथयामि यशोदायै यत्कृतं मम वञ्चनम्॥मयोक्तं मुनिरेवाहं शिष्येभ्योऽपि च पायितम्॥४६॥तदाऽतिरोषिता गोपी तत्र व्याक्रोष्टुमुद्यता॥पश्यध्वं कैतवोक्त्याऽहंवञ्चिता बालकेन वै॥४७पूर्वस्मिन्दिवसेऽस्माभिर्विचारः परमः कृतः॥विप्लावितं मयाऽद्यैवं शृण्वन्त्याचास्यभाषितम्॥४८

लगी कि तुमने किसलिये मुझसे छल करके मेरे घरके सभी दूध दहीको ले लिया है॥४५॥ मैं तुम्हारे इस कपट व्यवहारको भली प्रकारसे यशोदाजीसे जाकर कहूंगी,मैंने उसको उत्तर दिया।कि तुम विना जाने बूझे क्या कह रही हो तुमने जो कुछ दिया था वह मैंने सभी ऋषि और उनके शिष्योंको भक्षण करा दिया है॥४६॥ मेरे इन वचनोंको सुनकर उस गोपीके क्रोधकी सीमा न रही,तब वह ऊंचे स्वरसे चिल्लाकर सबको पुकारने लगी कि आकर देखो तो इस बालकने कैसी चतुराईसे मुझे छला है॥४७॥ देखो पहिले दिन मैंने सब गोपियोंके साथ क्या विचार किया था और आज

क्या कर बैठी अब जिस प्रकार मैं छली गयी हूं उसे तुम्हारे समीप कहती हूं ॥४८॥ हे मुने ! उस गोपीने अपने छले जानेकी जो वार्ता सुनायी तो सुनते ही वह समस्त गोपियें हँसने लगीं ॥४९॥ और जैसे ही वह हमारे पकड़नेके लिये आतीं कि वैसे ही हम सब भाग जाते, यह देखकर फिर वह बड़े जोरसे हँसने लगतीं ॥५०॥ और बारम्बार मेरी बातचीत करते कहतीं कि अच्छा आज तो भाग गये अब और क्या किया जाय ? समयके चले जानेपर ही मनुष्योंको बुद्धि आती है॥५१॥इस प्रकारसे परस्परमें वार्तालाप कर सभी अपने २ स्थानोंको चली गयीं, इसके उपरान्त मैं

गोप्यः पश्यन्तु बालानां चेष्टितं सदने मम ॥ इति ता वचनं श्रुत्वा प्रहस्याखिलगोपिकाः ॥ ४९ ॥ समुद्यतास्ता मां धर्तुं वयं शीघ्रं पलायिताः ॥ताः प्रहस्याऽब्रुवन्भूयो भूयस्तच्चेष्टितं मम ॥ ५० ॥ गतं तद्गतमेवास्तु कर्तव्यं किं मयाऽधुना ॥ बुद्धिरुत्पद्यते नृणां समये निर्गते सति॥५१॥ एवं निगदमानास्ता प्रययुः स्वं स्वमालयम्॥ततो गतोऽहमन्यस्या भवनं सखिभिः सह॥ ॥५२॥ दृष्ट्वा तद्गृहिणीशून्यं प्रविष्टोऽभ्यन्तरं गतः ॥ दधिदुग्धसमाकीर्णं नवनीतं च यत्स्थितम्॥ ५३॥ नानारसविशेषैश्च पक्वान्नादियुतैः शुभैः ॥ विलोक्याहं भृशं प्रीतः सखायो मुदिता मम ॥ ५४ ॥ निविष्टा मण्डलीकृत्य वीक्षमाणा मुहुर्मुहुः ॥ दत्त्वा द्वारि कपाटं च ह्यखादिष्म यथेच्छया ॥ ५५ ॥

फिर वहांसे सखाओंके साथ दूसरी गोपीके घर गया ॥५२॥ उस समय गोपी घरमें नहीं थी, मैं यह देखकर इस सुअवसरको पाकर उसी समय उसके घरमें घुस गया और जाकर देखा दही दूध मक्खन धरा हुआ है॥५३॥और भांति २ के सुन्दर स्वादिष्ठ पदार्थ रखे हुए हैं,यह देखकर मैं आप जितना ले सका ले करके उन सभीको खाने लगा और प्रसन्न हो सखाओंके साथ ॥५४॥ मंडली बांधकर बैठा। द्वारकी किंवाड़ें बंदकर चारों ओरको देखता

हुआ इच्छानुसार भोजन करने लगा॥५५॥उस घरकी स्त्रीने देखा कि मेरे घरके किंवाड़ बंद हैं, तब वह ऊँचे स्वरसे चिल्लाने लगी कि कौन हमारे घरके भीतर है ॥५६॥ शीघ्र ही किंवाड़ खोल दो मैं घरमे आऊंगी, यह सुनकर मेरे सखाओंने किंवाड़ खोल दिये ॥५७॥ जबतक मैं भी समस्त पदार्थोंको आनंदपूर्वक खा चुका कुछ भी बाकी न छोड़ा, यह तो मैं निश्चय ही जानता था कि मेरा कोई गोपी कुछ भी नहीं कर सकेगी॥५८॥ इसके उपरान्त उस गोपीने घरके भीतर आकर देखा कि यहां जो दूध दही और पकवान इत्यादि सम्पूर्ण पदार्थ धरे थे उनमेंसे अब कुछ भी नहीं रहा॥५९॥

तद्गृहस्येश्वरी द्वारं दृष्ट्वा बद्धकपाटकम् ॥ उच्चराक्रोशनं चक्र को ममास्ति गृहान्तरे ॥५६॥ मोचयाशु कपाटं वै प्रविशामि गृहे निजे ॥ इति सा द्वारि संरावमकरोद्गोपबालकः ॥५७॥ तावद्भुक्तं यथेष्टं च मया च प्रीतमानसैः॥अहं जानामि मां सौम्य किं करिष्यति गोपिका॥५८॥ सा समुत्तीर्य सदनं प्रविश्यापश्यदालये॥ दधि दुग्धं च पक्वान्नं न किञ्चिदवशेषितम् ॥ ५९ ॥ भुक्त्वा पीत्वा भुवि क्षिप्त्वा भाण्डं भग्नं कृतं च तैः॥ दृष्ट्वा चुक्रोश सदनेऽब्रवीदानीय बल्लवी ॥६०॥ हे हे सख्यः समायान्तु पश्यन्तु मम मन्दिरम्॥ पात्राणि रिक्तभग्नानि यच्चान्यदखिलं कृतम् ॥ ६१ ॥ इदानीं निर्गता गेहात्तदाऽगत्यापि नाशितम्॥दधि दुग्धादिकं सर्वं सञ्चितं यद्गृहे स्थितम् ॥ ६२ ॥

इस ओर मैं उन समस्त पदार्थोंको भोजन कर फिर बरतनोंको पृथ्वीपर फोड़कर भाग आया, यह देखकर वह बल्लवी घरके दरवाजेके ऊपर खड़ी होकर चिल्लाकर कहने लगी॥६०॥कि हे सखियो!तुम सभी आकर देखो कि मेरे घरके सब बरतन कैसे टूटे फूटे पड़े हैं, फिर और भी इसके अतिरिक्त एक कार्य किया है तुम सब आकर उसे देखो तो सही ॥६१॥ इस समय मैं जरा ही घरसे बाहर गयी थी कि इतनेमें ही मेरे संचित किये हुए दूध

दही इत्यादि सम्पूर्ण पदार्थोंका नाश कर दिया॥६२॥अब बताओ क्या करें और कहां जायँ,जरा देरको भी घर इकला छोड़कर कहीं नहीं जा सकतीं, भला किसप्रकारसे सर्वदा घरमें बैठी रहें ॥६३॥ यशोदाजीने तो यह निश्चय ही जान लिया है कि हमारा पुत्र बालक है वह कुछ नहीं करता है, गोपियें जो कुछ कहती हैं वह सभी मिथ्या है॥६४॥देखो!मेरे घरका दरवाजा खुल रहा था कि इसी अवसरमें वह बालकोंके साथ घरमें जाकर किंवाड़ बंद कर मेरे संपूर्ण पदार्थ खा गया है,उसके खा लेनेसे कमती नहीं होता परंतु जो बचता है उसको वह पृथ्वीपर फेंक गया है॥६५॥मैं जरा ही देरको

क्व यामि किं करिष्यामि क्षणं त्यक्तुं न शक्यते ॥ गृहात्सख्यः कदाचिन्न बहिर्यामि सदा स्थिता ॥६३॥ यशोदा मन्यते चैव बालको मम पुत्रकः ॥ नैव किञ्चित्करोतीह मिथ्यैवाहुर्व्रजाङ्गनाः ॥६४॥ मुक्तद्वारे मम गृहे प्रविष्टो बालकैः सह ॥ दत्त्वा द्वारि कपाटं च द्रव्यं भुक्तं च नाशितम् ॥६५ ॥ परावृत्याऽभिगच्छामि यावत्तावत्पलायिताः ॥ मया ज्ञात्वा धृतो मोहो मुक्त्वा गृह कपाटकम् ॥६६॥ अहं मम सखीं काचिद्रक्षायै यत्नतो गृहम् ॥ तदा यशोदामानीय दर्शयिष्यामि निश्चितम् ॥६७॥ गते कार्ये सदा नृणां भवत्येव विचारणा ॥ पूर्वतो जायते बुद्धिः कथं काय विहीयते ॥ ६८ ॥

घरसे गयी थी कि इतनेमें ही मेरे आते २ वह सभी खा गया है, अब न जाने कहांको भाग गया है, सो जाते हुए उसे नहीं देखा, मुझे उस समय बुद्धि नहीं आयी इसी लिये तो मैंने आकर द्वार खोल दिया था ॥६६॥ नहीं तो किवाड़ोंको न खोलकर तुममेंसे किसी सखीको द्वार रक्षाके निमित्त बैठाकर फिर यशोदाजीके पास जा उनको अपने साथ लाकर दिखाती तब मेरा अभिप्राय सिद्ध होता ॥ ६७ ॥ जब समय चला जाता

है तभी मनुष्योंको बुद्धि उत्पन्न होती है; पहले बुद्धिके उत्पन्न होते ही कार्यसिद्धिमें फिर किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं होती ॥ ६८ ॥ वह गोपी इसी प्रकारसे वार्तालाप करते २ मौन हो गयी, फिर मैं शीघ्रतासे एक और गोपीके घरको गया ॥ ६९ ॥ अतिशीघ्रताके साथ जानेसे उस घरकी गोपी अत्यन्त वेगके साथ बाहर आकर मुझसे बोली कि तू कौन है और किस लिये मेरे घरमें आया है ? ॥७०॥ हमारा मित्र भागकर तुम्हारे घरमें गया है। उसी समय मैं दधि और मक्खन आदिको लेकर शीघ्र ही घरसे बाहर हो गया ॥ ७१ ॥ इसके पीछे वह गोपी घरमें

इत्येवंबहुधाचोक्तःसखिभिर्विचराम्यहम्॥ततोऽन्यसदने यावत्प्रविशामित्वरान्वितः६९तावद्गृहान्तराद्गोपीनिःसृताऽसातुसत्वरा तदाहमब्रुवं तां च क्यात इति भाषिणीम्॥७०॥सखाऽस्माकं पलायित्वा निविष्टस्तव सद्मनि॥अहं गव्यं द्रुतं हृत्वा बहिर्जातस्तदा खिलम्॥७१॥मां वीक्ष्यान्तर्गता ह्येत्य बहिर्नाऽपश्यदागता॥वीक्ष्य सर्वं हृतं द्रव्यं बालानां च पलायनम्॥७२॥चुक्रोश किं यदेतेन कैतवोक्त्या प्रतारिता॥ज्ञातं तच्चेष्टितं मेऽद्य वचनं चावधारितम्॥७३॥पुनश्चेदेष्यति गृहे तत्करिष्ये यदीप्सितम्॥एवमुक्त्वा च सा गोपी विरराम गृहे स्थिता॥७४॥ततोऽहमन्यसदनं प्रविष्टः सखिभिः सह॥मिलित्वा कतिचिद्गोप्यो मां ग्रहीतुं समुद्यताः॥७५॥

जाकर देखने लगी कि यहांपर जो संपूर्ण पदार्थ रक्खे थे उनमेंसे अब कुछ भी नहीं रहा, मैं उस समय उन संपूर्ण पदार्थोंको खाता हुआ छिपकर भागने लगा॥७२॥ यह देखकर वह गोपी चिल्लाकर कहने लगी कि मैं इस बालककी चतुरतासे छली गयी हूं, आज इसके आचार व्यवहार और विलक्षण बातचीतको भलेप्रकारसे समझ गयी हूं ॥७३॥ अबकी बार इसके आनेपर मैं इसकी खूब अक्कल ठीक करूंगी, यह कह वह दरवाजेपर आकर चिल्लाने लगी॥७४॥इसके उपरान्त मैं सखाओंको साथ लिये हुए और एक गोपीके घरमें गया, तब मुझे देखकर कितनी ही गोपियें आपसमें

सलाह कर मेरे पकड़नेके लिये उद्यत हुई ॥७५॥ मेरे सखा यह देखकर उसी समय वहांसे भाग गये, तब मैं इकला रह गया, परन्तु कोई गोपी भी उनमेंसे मेरे पास न आकर भयभीत हो चारों ओर फिरती हुई ॥७६॥ मुझसे कहने लगीं कि देखो ! आज क्या होता है, अब तुम्हारे ऊपर दया नहीं की जायगी, हम सब तुम्हें पकड़कर यशोदाजीके पास ले जाकर दिखावेंगी ॥ ७७ ॥ और तुम्हारे चरित्र अथवा अपराध यह सभी एक एक करके उनसे कहेंगी. हे कृष्ण ! आज तुम हमारे वशमें आये हो और तुम्हारे सब सखा भाग गये हैं ॥ ७८ ॥ यदि तुम कहो कि मैं यहां

ता दृष्ट्वा मे सखायश्च पलायनपरा ययुः॥अहमेको धृतस्ताभिर्भीता नैवान्तिकं ययुः॥७६॥ता ऊचुरद्य का वार्त्ता क्व यासि भव नादितः॥त्वां गृहीत्वा यशोदायाः पुरो यास्यामहे द्रुतम्॥७७॥सर्वापराधांस्ते कृष्ण वदिष्यामस्तदग्रतः॥त्वमस्माकं वशे यातः सखायस्ते पलायिताः॥७८॥त्वं चैव शपथं कुर्याः पुनरेष्यामि न क्वचित्॥तदा त्यजामस्त्वामद्य नान्यथा हि कथञ्चन॥७९॥ ततोऽहमब्रवं ताभ्यो युष्मद्भीतिर्न वर्त्तते ॥ क्रीडन्नहं प्रविष्टोऽत्र सखिभिः सहितो यदा ॥८०॥ का हानिर्वः कृता मेऽद्य नापराधं विना भयम् ॥ यशोदाय च किं यूयं वदिष्यथ ब्रुवन्तु मे ॥ ८१ ॥

फिर कभी नहीं आऊंगा तब हम तुमको छोड़ सकती हैं नहीं तो हम किसी प्रकार भी नहीं छोड सकतीं ॥७९॥ तब मैंने उनसे कहा कि. मैं तुमसे किसी प्रकारसे भी भय नहीं मानता, कारण कि मैं तो खेलता २ अपने सखाओंके साथ यहां आया था ॥८०॥ इसमें तो तुम्हारी किसी प्रकारकी भी हानि नहीं हुई, अपराधके न करनेपर फिर भयकी संभावना कहां है, इस कारण तुम यशोदाजीके पास जाकर क्या कहोगी ? बताओ ॥ ८१ ॥

तुम क्या नहीं जानती कि विना अपराध किये मेरी माता कभी भी मुझे नहीं मारती हैं, मेरी यह बातें सुनकर वह सब गोपियें ऊंचे स्वरसे हँसकर कहने लगीं ॥८२॥ कि अच्छा तुमने जो अपराध किया है वह दिखाये देती हैं, यह कहकर वे सब चारों ओरसे मुझे घेरकर बैठ गयीं। उसी अवसरमें ॥८३॥ एक और गोपी बोली कि तुमने हमारे घरमें रक्खे हुए समस्त पदार्थ खा लिये यह बात जो हम कहती हैं सो तुमको (यशोदाजीके) पास ले जाकर दिखा देंगी ॥८४॥ वे आपसमें मिलकर इस रीतिसे चिल्लाने लगीं, मैं उनकी मंडलीमें बैठा हुआ कितनी ही देरतक विचार करता

मिथ्यागसं न मां माता कदाचित्ताडयिष्यति ॥ इति मद्वचनं श्रुत्वा ता विहस्याब्रुवन्पुरः ॥ ८२ ॥ स्त्रीभिस्त्वमधुना नून शीघ्रमागत्य वेष्टितः ॥ क्षणावस्थानमात्रेण सापराधो न यत्कृतम् ॥८३॥ उवाचान्या ममेदानीं गृहे नागः कृतं त्वया ॥ तद् ब्रूहि तत्र नीत्वा त्वां दर्शयिष्यामहे वयम् ॥ ८४ ॥ एवं विवदमानानां तासां मण्डलमध्यगः ॥ चिरं विमृश्य कस्याश्चिद्धारं च त्रोटितं मया ॥८५॥ च्युता यतस्ततो मुक्तास्ता धर्तुं यावदन्यतः ॥ तावत्पलायितः शीघ्रं ताश्च हा हेति चुक्रुशुः ॥८६॥ कथं हस्तगतो यातः पुनरेष्यति न क्वचित् ॥ धूर्त्तविद्याविदो बालः प्रौढोऽयं नात्र संशयः ॥८७॥ कापाटरोधं पूर्वं च कृत्वास्माभिर्न वेष्टितः ॥ गते काले नृणां बुद्धिः पुनर्भवति निश्चितम् ॥ ८८ ॥

रहा, उनमेंसे एक गोपीके गलेके हारको मैने उसी समय खींचकर तोड़ दिया ॥८५॥ इससे उसके सब मोती एक एक करके गिर गये, वह जैसे ही उनके ढूँढ़नेमें लगीं कि मैं वैसे ही इस अवसरको पाकर वहांसे भाग गया, यह देखकर वे सब गोपियें हाहाकार करती हुई चिल्लाकर आपसमें कहने लगीं ॥८६॥ कि यह किस रीतिसे हाथमें आकर भाग गया है, अब ऐसा जाना जाता है कि यह बालक फिर कभी यहां नहीं आवेगा, यह बालक अवश्य ही धूर्तविद्याके जाननेवाले मनुष्योंमें प्रधान है, इसमें किंचित् भी संदेह नहीं ॥ ८७ ॥ हम लोग यदि पहले ही किंवाड़े बंद करके इसको बैठातीं

तब यह किसी प्रकारसे भी नहीं भाग सकता था, जब समय चला जाता है तभी मनुष्योंको बुद्धि उत्पन्न होती है, अच्छा! जो होना था सो तो हो गया उसमें तो किसीका विचार ही नहीं हुआ, फिर कल होगा तब इसके आनेपर वैसा विचार किया जायगा ॥८८॥८९॥ इस प्रकारके वचन कहकर सम्पूर्ण गोपियें मेरे किये हुए चरित्रोंको स्मरण करके और प्रेमके साथ उन सबका गान करती हुई मेरे ही विषयकी वार्तालाप करती हुई अपने अपने घरोंको चली गयीं ॥ ९० ॥ इति श्रीआदिपुराणे सकलपुराणसारभूते नारदशौनकसंवादे भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

गतं तद्गतमेवास्तु पुनः कालो भविष्यति ॥८९॥ इत्थं चोक्त्वा गोपिका हासपूर्वं स्मृत्वा स्मृत्वा चेष्टितं यत्कृतं मे ॥ अन्योन्यं च प्रेमपूर्वं कथा मे संजल्पन्त्यः स्वालयान्येव जग्मुः ॥९०॥ इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे वैयासिके नारदशौनकसंवादे गोपीधृतकृष्णमोक्षो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अथान्यदिवसे प्रातः समानीय सखीन हम् ॥ वानरानपि संगृह्य कृतवान्यच्छृणुष्व मे ॥१॥ कस्मिंश्चिद्गोपिकागेहे प्रविष्टोऽहं त्वरान्वितः ॥ उत्तार्य्य दधि शिक्याच्च भोक्तुं यावत्समुद्यतः ॥२॥ तावद्गोपी समागत्याब्रवीत्किं क्रियते त्वया ॥ कथमुत्तारितं पात्रं कुत्रेदं दधि नीयते ॥३॥ तदाऽहम ब्रवं गोपीं धन्य न कलिरागतः ॥ तव भ्राता मम सखा तेनाहूताः समागताः ॥४॥

श्रीभगवान् बोले कि इसके उपरांत मैंने दूसरे दिन सखा और वानरोंको इकट्ठा करके जो कुछ किया था सो सुनो॥१॥ मैं शीघ्रताके साथ सखाओंको साथ लिये हुए एक और गोपीके घरमें घुस गया और छींकेपरसे दहीको उतारकर जैसे ही खानेके लिये हुआ कि ॥ २ ॥ उसी समय उस गोपीने मुझसे आकर कहा कि तुम यह क्या करते हो और बर्तनोंको छींकेपरसे क्यों उतारा, दहीको कहां लिये जाते हो ॥३॥ तब मैं बोला कि धन्य है! कलियुग

अभी नहीं है(देखो) तुम्हारा भाई मेरा सखा है उसके बुलानेसे हम यहां आये हैं, तुम मुझसे यह क्या कहती हो ॥ ४ ॥ वह मेरे मित्र तो चले गये मैं तुम्हारे घरमें अकेला सो रहा था जब सोकर उठा तो छींकेपर देखा कि सभी बर्तनोंपर चींटियें चढ़ गयीं थीं उन्हें देखकर मैंने शीघ्र ही इन बर्तनोंको उतारकर इनपरकी चींटियोंको झाड़ दिया है॥५॥६॥सो तुमने इसके विपरीत समझा,इसमें तो तुम्हारा उपकारही हुआ है सो तुमने नहीं विचारा। संसारकी गतिही एसी है मनुष्य गुणोंको न देखकर दोषोंको ही देखा करते हैं, मेरे इस प्रकार कहनेपर उनका संदेह दूर हुआ और वह मुझसे बोली कि तुम चिरंजीव

सखायोऽन्ये गता एकश्शयेऽहं भवने तव ॥ गन्तुं सुप्तोत्थितो यावदुद्यतः शिक्यसंस्थितम्॥५॥पात्रं पिपीलिकाव्याप्तं दृष्टमे तन्मया द्रुतम् ॥ ततः पात्रं समुत्तार्य क्रियते तन्निरासनम् ॥६॥ विपरीतं तव ज्ञानं गुणे दोषोऽवधारितः ॥ एवमुक्ताऽब्रवीत्सा मां चिरं जीवेनिवञ्चिता ॥७॥ ततोऽहमन्यसदन प्रविष्टः सखिभिः सह ॥ वर्तमाना गृहे गोपी दृष्ट्वा मामुत्थिता द्रुतम् ॥८॥ आगच्छागच्छ मद्गेहे किमर्थं समुपागतः ॥ ततोऽहमब्रवं तां च वक्ष्ये विश्राम्य च क्षणम् ॥ ९ ॥ मम मातुः प्रियाऽसि त्वं तस्यास्त्वर्थाधिकारिणी ॥ द्वितीया भगिनी या ते तामाहूय वदाम्यहम् ॥१०॥

रहो॥७॥इसके पीछे मैं एक और गोपीके घरमें गया सब सखाभी मेरे साथ हुए । गोपी उससमय घरमें ही थी मुझे देखकर वह अतिशीघ्र उठकर॥८॥बोली कि आओ२किसलिये तुम हमारे घरमें आये हो,मैं बोला कि थोड़ीदेर विश्राम कर लेने दो तब फिर कहता हूं कि मैं किसलिये आया हूं॥९॥तुम हमारी माताकी स्नेहमयी प्यारी सहेली हो,तुम्हारे ऊपर हमारा अधिक प्रेम है तुम्हें बुलानेके लिये मेरी माताने मुझे भेजा है,तुम्हारी जो दूसरी बहन है उसको भी

साथ लेकर चलना इसलिये उसे भी बुला लाओ ॥ १०॥ वह मेरी यह वार्ता सुनकर अपनी भगिनीको बुलानेके लिये घरसे बाहर गयी कि इतनेमें ही मैंने उसके घरमें रक्खे हुए सम्पूर्ण पदार्थोंको लेकर आप खाय सखाओंको खवाये और जो कुछ शेष रहे वह वानरोंको बांट दिये ॥ ११॥ इसके पीछे गोपीके न आते सखाओंको साथ लेकर मैं वहांसे शीघ्र भाग गया ॥ १२॥ इसके उपरान्त वह गोपी अपनी भागिनीको साथमें लेकर आयी और आकर देखा कि घरके सभी बरतन इधर उधर बिखरे पड़े हैं, यह देखकर वह अपनी बहनसे बोली॥ १३॥ कि मुझे ऐसा भ्रम हो गया था कि जो मैं उस समय

तामानेतुं गता यावत्तावद्द्रव्यं मया हृतम्॥ भुक्तं दत्तं च गोपेभ्यो वानरेभ्यस्त्वशेषतः॥ ११॥ पलायिता गृहात्तस्माद्यावदायाति गेहिनी ॥ सा भगिन्या समागत्य दृष्ट्वाऽऽत्मगृहभाजनम्॥ १२॥ इतस्ततः परिक्षिप्तमुवाच भगिनीं पुरः ॥ यद्तश्चलिता भ्रान्ता बुद्धिर्नासीत्तदा मम ॥ १३॥ कामद्य कथयाम्येतद्यतो बुद्धिभ्रमो मम ॥ भगिन्य दर्शयित्वा च विरराम गृहे स्थिता ॥ १४ ॥ ततोऽन्यभवनं गत्वा यत्कृतं तन्मुने शृणु ॥ कस्याश्चिद्गोपिकायास्तु गृहं गोप्यः समागताः ॥ १५ ॥ मिलिता मङ्गले कार्य्ये गानवाद्यमहोत्सवे ॥ तत्र यावद्गतोऽहं ता मां दृष्ट्वा सहसोत्थिताः ॥ १६ ॥

कुछ भी न जान सकी, मैं अब आज किसको यह चरित्र दिखाऊं मेरी ही बुद्धिके दोषसे ऐसा हुआ है, यह कहकर अपनी बहनको दिखाती हुई घरमें जा बैठी॥ १४॥ हे मुने! इसके उपरान्त मैंने और एक गोपीके घरमें जाकर जो कुछ किया था सो कहता हूं तुम श्रवण करो. किसी और गोपीके घरमें जाकर मंगलकार्य करनेके लिये समस्त गोपियें इकट्ठी होकर गीत गा रही थीं वे सब गोपियें इस रीतिसे आपसमें मिलकर अनेक प्रकारके आनंद मना

रही थीं, मैं उसी समय वहां गया, मुझे दखते ही व सब एकबार ही उठ खड़ी हुई ॥१५॥१६॥ और अपसम कहन लगीं कि, यह चोर आया है यह पहले अपने सखाओंके साथ भाग गया था, हम लोग तब इसको नहीं पकड़ सकी थीं, आज सब चारों ओरसे घेरकर इसको पकड़ लो, अब देर करनेका अवसर नहीं है ॥१७॥ उन गोपियोंने इस रीतिसे परस्परम सलाह करके अपने घरके दरवाजेके किंवाड़ बन्द कर लिये और सब गानवियाको छोड़कर मुझे पकड़नेके लिये सन्नद्ध हुईं॥१८॥कि मैं उसी समय उनसे बोला कि हे गोपियो ! मैं जो तुमसे कहता हू सो तुम सुनो, मेरे पिता

ऊचुश्च चौर आयतः सखिभिर्गोपबालकैः ॥ गृह्णीमः सर्वतश्चेमं वेष्टयित्वाऽथ मा चिरम् ॥१७॥ गोपिका मन्त्रयित्वेति रुद्ध्वा द्वारि कपाटकम् ॥ त्यक्त्वा गानं च वाद्यं च यावद्धर्त्तुं समुद्यताः ॥ १८ ॥ तावन्मयोक्तं हे गोप्यः शृणुताऽस्मद्वचः स्फुटम् ॥ पित्रा मात्रा प्रेषितोऽहं भविताऽद्य महोत्सवः॥१९॥यूयं तत्र समाहूताः शीघ्रं गच्छत मा चिरम्॥श्रुत्वा मद्वचनं गोप्यो हर्षिता मामथाऽब्रुवन् ॥२०॥ उच्यते सत्यमथवाऽनृतं कृष्ण वदस्व नः ॥ नानृतं वच्म्यहं क्वापि न तथा वेद्मि च क्वचित् ॥ २१ ॥ सर्वे व्रजौकसश्चैव सखायो गोपबालकाः ॥ ते प्रोचुरेवमेवेति ततस्ता गन्तुमुद्यताः ॥ २२ ॥

माता दोनोंने ही मुझे यहां भेजा है, आज हमारे घरमें उत्सव होगा॥१९॥ इस कारण तुम सभीको बुलाया है, तुम अब विलम्ब न करो और शीघ्र ही वहांको चलो। गोपियें मेरे यह वचन सुनकर अत्यन्त हर्षित हुईं और मुझसे कहने लगीं ॥२०॥ कि हे श्रीकृष्ण ! तुम क्या सत्य ही कहते हो, तुम्हारा कहना मिथ्या नहीं है।सच कहो तुम्हारी यह बात झूंठ तो नहीं है, साफ२करके हमसे कह दो, मैं बोला कि मैं झूंठ नहीं कहता हूं सत्य ही सत्य कहता हूं, मैं झूंठ बोलना तो कभी नहीं जानता॥२१॥यह तो व्रजवासी मनुष्य सभी जानते हैं, यदि तुम्हें विश्वास न आवे तो तुम हमारे इन सखाओंसे पूछ लो,

तब मेरे सभी सखा बोले कि कृष्ण जो कहता है वह सभी सत्य है,उन्होंने वास्तवमें ही तुम्हें बुलानेके लिये भेजा है तब गोपियोंको विश्वास आया और वे जानेके लिये तैयार हुई॥२२॥फिर सभी घरसे बाहर हो नंदजीके घरको चलीं,मैं उस सुअवसरको पाकर उनके घरके भीतर घुसा, और समस्त पकवान दही दूध इत्यादिको लेकर वहांसे चल दिया ॥२३॥ इसके पीछे मेरे सब सखा घरसे बाहर निकल कर कोई आगे कोई पीछे इस प्रकार जाने लगे और वे उन सब गोपियोंसे आकर बोले कि तुम कहां जा रही हो, तुम्हारे घरमें अब कुछ भी नहीं है जाकर देखो ॥२४॥ कृष्णने

विनिर्गता यदा गेहाद्गत्वाऽस्माभिर्गृहान्तरम्॥हृतं पक्वान्नमखिलं दधिदुग्धादिकं च यत्॥२३॥विनिस्सृत्य पुनः पश्चाद्गत्वाऽग्रे गोपदारकाः ॥ अब्रुवन्नास्ति त्वद्गेहे किञ्चिदद्य क्व गम्यते ॥ २४ ॥ यूयं च वञ्चिताः सर्वा मोक्षणार्थं निजात्मनः ॥ नाहूताः केनचिन्मातो निवृत्तास्स्वं स्वमालयम् ॥२५॥ एतच्छ्रुत्वा वचो गोप्यः प्रोचुर्बालैस्तु किं हृतम् ॥ कृष्णस्य दूताने तान्हि न काचिद्वेत्ति गोपिका ॥२६॥ गानवाद्येऽन्तरायोऽभूत्तथा गव्यादिकं हृतम् ॥ स्पर्शोऽपि नैषां भवति किं कुर्मः कुत्र याम वा ॥२७॥ अहो विचेष्टितं तस्य गोपीनां वञ्चनं द्रुतम् ॥ तयोर्वृद्धत्वसमये जातोऽयं बालकः प्रियः ॥ २८ ॥

अपनेको छुड़ानेके लिये ही यह उपाय किया है,यथार्थमें माता यशोदाजीने तुम्हें नहीं बुलाया है,बुलानेका कोई कारण भी नहीं है,इसलिये तुम वहां न जाकर अपने घरको लौट जाओ॥२५॥गोपियें मेरी यह वार्ता सुनकर बोलीं कि बालकोंने क्या चुरालिया है,व्रजकी रहनेवाली किसी गोपीनेभी यह नहीं जाना कि,यह सभी बालक श्रीकृष्णके दूत हैं ॥२६॥ हमें गाती हुई देखकर छलकरके इन्होंने घरमें जाय संपूर्ण द्रव्योंको हरण कर लिया है, कुछ भी बाकी नहीं रहा,अब हम कहां चली जायँ और क्या करें(हे गोपियो!तुम सभी कृष्णके चरित्रोंको देखो)॥२७॥नन्द और यशोदा दोनों हीवृद्ध हो

गये हैं, फिर वृद्धावस्थामें पुत्रका जन्म हुआ है इसलिये उनकी प्रीतिका इसके ऊपर ठिकाना नहीं है॥२८॥यह बालक सैकडों अपराध करता है परंतु वह कभी इसको नहीं डपटते अथवा न कभी मारते हैं और जो हम उसके अपराधोंको उनसे जाकर कहें तो उन्हें विश्वास नहीं आता और वह कहते हैं कि हमारा पुत्र कुछ भी नहीं जानता और न कुछ करता है॥२९॥क्या करें वह गोपी इस प्रकार कहती है जिस प्रकार प्रेम भी न्यून न हो, और घरके धनादि सकल पदार्थोंकी भी रक्षा हो तथा बडोंके सामने झूठ भी न हो इस प्रकार सब गोपी समझबूझ अपने२घरको आकर अपने२कामोंमें लगगयीं ३०॥३१

स ताडयति नो वक्ति प्रत्येति न च मद्वचः ॥ ब्रूते बालो न जानाति न किंचित्कुरुते हि सः ॥२९॥ किं कुर्मस्सा तथा वक्ति यथा स्नेहो न हीयते ॥ गृहे वित्तादिकं तावत्सर्वं संजायते पुनः ॥३०॥ स्नेहभङ्गभयादेव गुरोर्वक्तु न गम्यते ॥ इत्यागता गृहं स्वंस्वं ता युक्ता गोपनायिकाः ॥३१॥ काश्चिद्गानं पुनश्चक्रुस्तत्र यत्राभवत्पुरा ॥ अहं चान्यगृहं यातः सखिभिः सह वानरैः ॥३२॥ काचिद्गृहाङ्गणे गोपी स्थिताऽपि परमासने ॥ तां दृष्ट्वाऽहं शनैर्यातः कृतवानक्षिमुद्रणम् ॥ ३३ ॥ सा जानीते सखी काचित्कुरुते नेत्रमुद्रणम् ॥ न चुक्रोश विदित्वैवं काचिद्धास्यमचीकरत् ॥ ३४ ॥

इनमेंसे जो गोपी प्रथम जहां गा रही थी उसी स्थानपर बैठकर फिर गाने लगी, मैं इस अवसरमें अपने सखा और वानरोंको साथ लेकर एक और गोपीके घरमें गया॥३२॥उस समय वह गोपी आंगनमें बैठी थी, पीछेसे यह देख न ले इस कारण मैं धीरे२गया, और पीछेसे जाकर अपने दोनों हाथोंसे उसके दोनों नेत्र बन्द कर लिये (इसी अवसरमें मेरे संपूर्ण सखा समस्त पदार्थ और दूध इत्यादिको लेकर चल दिये और भलीभांतिसे खूब खाने लगे)॥३३॥इस ओर उस गोपीने विचारा कि मेरी किसी सखीने आकर मेरे नेत्र बन्द कर लिये हैं यह विचारकर वह बडे ऊंचे स्वरसे

हँसने लगी ॥३४॥ इसी अवसरमें जब मैंने देखा कि मेरे सखा सम्पूर्ण पदार्थ लेकर यहांसे भाग गये तब मैंने उसके नेत्र खोलदिये वह गोपी मुझे देखकर चिल्लाने लगी और बोली कि तू कौन है कौन है यह कहकर और भी ऊँचे स्वरसे चिल्लाने लगी, मेरे सखा उसी समय भागगये, मैं अतिशीघ्रताके साथ उनके पीछे जाकर उनका साथी हुआ ॥३५॥ इसके पीछे इतनेमें ही एक और गोपीके घरमें गये वह अपने द्वारपर खड़ी हुई थी, मैं उससे बोला कि माता पिताकी आज्ञासे मैं गो चरानेके लिये जाता हूं ॥३६॥ तुम भी अपने बछड़े इत्यादिको छोड़ दो, म उनको भी चरा लाउंगा, वह गोपी मेरी इस बातका विश्वास मानकर हर्षित हो अपने सम्पूर्ण गाय और बछड़ोंको खोलनेके लिये तैयार हुई॥३७॥और जिस स्थानपर बँध रहे थे

यदा गृहीत्वा गव्यादि सखायो मम निःसृताः ॥ मया मुक्ताऽथ सा दृष्ट्वा मां चुक्रोश गृहाङ्गणे ॥ कस्त्वं कस्त्वमिति प्रोच्चस्तावत्सर्वे पलायिताः॥३५॥पुनरम्यगृहं यावद्यामि सा द्वारमास्थिता॥तामुक्तवानहं मात्रा प्रेषितो वत्सचारणे ॥३६॥ यामि वत्सांश्चारयितुं वत्सांस्त्वमपि मोचय॥सा तदाकर्ण्य मुदिता तथा कर्तुं समुद्यता॥३७॥गता यत्र स्थिता वत्साः प्रविष्टास्तद्गृहे वयम्॥भुक्त्वा पीत्वा बहिर्याताः वत्सानुन्मुच्य साऽऽगता॥मयैते मोचिता वत्साः क्व कृष्णः क्व च बालकाः॥३८॥कयाचिदुक्तं बालास्ते शीघ्रं शीघ्र पलायिताः ॥ गृहीत्वा त्वद्गृहात्सर्वं सा श्रुत्वा गृहमाविशत् ॥ ३९ ॥ ददर्श भाण्डं भग्नं च भुक्तं पीतं च गोरसम् ॥ ४० ॥

उस स्थानपर उनको खोलनेके लिये गयी, इसी अवसरमें मैं सखाओंके साथ उसके घरके भीतर जा घुसा, और सम्पूर्ण पदार्थोंको खापीकर उसी समय वहांसे बाहर हो गया, इतनेमें ही वह गोपी अपने बछड़ोंको खोलकर वहां लेकर आयी कि जहां मैं खड़ा था और बोली कि मैं बछड़ोंको खोलकर लायी हूं कि इतनेमें ही कृष्ण बालकोंके साथ कहांको भाग गया॥३८॥उसके यह वचन सुनकर एक गोपी बोली कि वह अब क्या यहां बैठा है वह तो तेरे घरके सम्पूर्ण पदार्थोंको ग्रहणकर बालकोंके साथ शीघ्रतासे भाग गया है, उसकी यह बात सुनकर वह गोपी अपने घरके भीतर गयी॥

जाकर देखा कि घरके समस्त बरतन टूट फूटे हुए पड़े हैं और घरके संपूर्णपदार्थोंको गोरसको खा पी गया है॥ ३९॥४०॥ यह देखकर वह ऊँचे स्वरसे चिल्लाकर कहने लगी कि क्या नंदजीका पुत्र चलागया है, देखो कैसा आश्चर्य है, इस बालकने साक्षात् छल रूपसे जन्मग्रहण किया है॥४१॥ कि देखो मैं इतनी बड़ी होकर भी इस बालकके हाथसे छली गयी, उसकी चतुराईको कुछभी नहीं समझ सकी, वह सखा और वानरोंको साथ लिये हुए मेरे घरकी ओरको निकला ॥ ॥४२॥ और अकस्मात ही मुझसे बोला कि तुम्हारे बछड़े कहां हैं और कितने हैं उनको ले आओ, मैं अपने बछड़ोंको चरानेके लिये जाता हूं, सो

चुक्रोशोच्चरनेनेह किं कृतं नन्दसूनुना॥अहोयं नन्दतनयः किं जातश्छद्मसारकः॥४१॥कथं प्रतारिता तेन बालेनाहं वयोधिका ॥ अकस्मादागमद्गेहं निर्गतो वानरैः सह ॥४२॥ मामुवाच क्व ते वत्साः कति वाऽऽनय तानिह॥स्ववत्सैश्चारयिष्यामि तच्छ्रुत्वाऽहं विमोहिता॥४३॥अहं गता तथा कर्तुं बालकैर्लुण्ठितं गृहम्॥यशोदा नहि कस्याश्चिद्वचनं मनुते ध्रुवम् ॥४४॥ यद्गतं गतमेवास्तु न वक्तव्यं मयाऽपि हि ॥ एतावदुक्त्वा गोपीभ्यो विररामाथ मानिनी ॥४५॥ गृहं प्रविष्टा सुमुखी स्मरन्ती कैतवं मम ॥ गृहेऽन्यस्मिन्प्रविष्टोऽहं सखिभिर्वानरैः सह ॥ ४६ ॥

उन्हें भी चरा लाऊंगा, यह बात सुनकर मैं एकबार ही मोहित हो गयी ॥ ४३ ॥ और उसी समय बछड़ोंको लेनेके लिये गयी इसी अवसरमें वह मेरे घरमें जाकर समस्त पदार्थोंको लूटकर ले गया कैसा आश्चर्य है ? यशोदाजी तो किसीकी बातका विश्वास नहीं करतीं केवल पुत्रकी ही बात मानती हैं ॥४४॥ जो होनहार सो तो हो गया, अब मैं भी यशोदाजीसे जाकर इस वृत्तान्तको नहीं कहूंगी, अगाड़ीके लिये सावधान रहूंगी यह कहकर वह गोपी शान्त हो गयी॥४५॥ और फिर वह गोपी मेरे छलोंको स्मरण करती हुई अपने घरमें गयी, इस ओर मैं सखा और वानरोंके साथ दूसरी

गोपीके घरमें गया,उस समय उस घरकी गोपीको सोती हुई देखकर धीरे२ समस्त बरतनोंको उतारकर उनमेंसे भांति२के द्रव्य निकाल सखाओंके साथ इच्छानुसार खाने लगा ॥४६॥४७॥ हम सबको भोजन करते हुए उस गोपीने आकर देखा और मुझको पकड़कर कहा कि क्या अब भी मुझको सोती हुई ही जानते हो ४८॥ तुम बारंबार मेरे घरमें आकर चोरी करके ले जाते हो और मैं तुमको एकबार भी नहीं पकड़ सकी थी,इसलिये आज तुम्हें पकड़ लिया है,अब यशोदाजीके पास ले जाकरके जो तुमने किया है वहभी कहूंगी ॥४९॥ यह कहकर वह जैसे ही स्वप्नसे मुझे पकड़नेके लिये तैयार

सुप्तामालक्ष्य गोपीं तां शनैर्गत्वा गृहान्तरे ॥ उत्तार्य दधिदुग्धादि भुक्तं सर्वैर्यथेच्छया ॥४७॥ भुञ्जानेष्वथ वाऽस्मासु स्वप्ने ऽपश्यत्तथैव सा ॥ जग्राह मां स्वप्न एवोवाच मां यास्यहो कथम् ॥४८॥ कृत्वा बहुतिथश्चौर्य्यं मद्गृहेऽथ पलायिताः ॥ त्वं धृतो ऽस्यद्य नेष्यामि यशोदायास्तथाऽन्तिकम् ॥४९॥ इत्थं तस्या विकर्षन्त्या निद्रानाशोऽभवत्ततः ॥ उत्तिष्ठन्तीं विलोक्यारं वयं सर्वे पलायिताः ॥५०॥ समुत्थिता तु साऽपश्यद्यथा स्वप्ने विलोकितम् ॥ समाहूय सखीवृन्दमस्मत्कृत्यमुवाच तत् ॥५१॥ कुत्रचिच्छून्यसदनं प्रविश्य हरते स्वयम् ॥ धूर्तोऽयं विविधैर्यत्नैः प्रतारयति गोपिकाः ॥ ५२ ॥

हुई कि वैसे ही उसी समय उसकी नींद जाती रही, तब वह उठकर इधर उधर देखने लगी,हमलोग पकड़े जानेके भयसे उसी समय भाग गये ॥५०॥ तब उसने उठकर कहा कि स्वप्नमें जो कुछ देखा था वह इससमय प्रत्यक्ष हो गया है,तब फिर अपने साथकी और गोपियोंको बुलाकर मैंने जो किया था उसे दिखाती हुई उनसे बोली [देखो! कैसा आश्चर्य है कि हम लोग कृष्णके पकड़नेका कोई भी अवसर नहीं पाती हैं,देखो!वह कभी किसीको अपनी छलनाके वचनोंसे मोहित करके उसके संपूर्ण पदार्थोंको चुरा लेते हैं] ॥ ५१ ॥ और कभी किसीके सूने घरमें जाकर वहांपर रक्खे हुए सम्पूर्ण

द्रव्योंको ले जाते हैं, इस बालककी चतुराईका अन्त नहीं है और यह धूर्तोंमें शिरोमणि है, संपूर्ण गोपियोंको यह विविध प्रकारसे छलता है ॥ ५२ ॥ इस बालकके स्वभावके वर्णन करनेका किसीमें भी सामर्थ्य नहीं है अब क्या कहें और कहाँ जाँय? इस बालकने अत्यन्त मोहित कर रक्खा है॥५३॥ देखो! आज वह सखाओंको साथ ले हमारे घरमेंसे संपूर्ण पदार्थोंको चुराकर ले गया है अब उसमेंसे कुछ भी शेष नहीं रहा, इसप्रकार सब गोपियें मिल कर आपसमें वार्तालाप करने लगीं, मैं उसी अवसरमें एक और गोपीके घरके भीतर गया ॥ ५४॥ उस समय उस घरकी गोपी पलँगके ऊपर बैठी हुई

न काऽपि चास्य बालस्य चेष्टितं वक्तुमर्हति ॥ किं ब्रूमः कुत्र गच्छामो बालकेनातिमोहिताः ॥५३॥ अयं चास्मद्गृहात्सर्वं हरते नावशिष्यते ॥ एवं विवदमानासु गोपीष्वन्यगृहेऽगमत ॥५४॥ तत्रस्था गोपिका काचित्पर्य्यङ्कासनसंस्थितम् ॥ भ्रातरं लालयन्ती च गायन्ती मद्गुणाञ्छुभान् ॥५५॥ मां दृष्ट्वा सा समुत्थाय ददावासनमुत्तमम् ॥ प्राह मा गच्छ तिष्ठेति सखिभिः सह मानद ॥५६॥ किमर्थमिह चायातः किमिच्छसि गृहाण तत् ॥ ब्रूहि मे करणीयं यत्त्वदाज्ञा च न लंघ्यते ॥ ५७ ॥ सा मयोक्ता तव स्नेहादागतोऽस्मि तवान्तिकम् ॥ सखायो मे क्षुधार्तास्तु भोक्तुमिच्छाम किञ्चन ॥ ५८ ॥

अपने भ्राताको लालन पालन करती मेरे पवित्र चरित्रोंको गान कर रही थी॥५५॥मुझे देखते ही वह वहांसे उठ खड़ी हुई और उसी समय मेरे बैठनेको आसन देकर मुझसे बोली कि हे मानद! आओ, अपने सखाओंके साथ इस आसनपर बैठो ॥ ५६ ॥ तुम किसलिये आये हो, तुम्हारी क्या इच्छा है सो कहो, मुझे क्या करना होगा आज्ञा दीजिये, जो कुछ मुझे करनेके लिये कहोगे उसे मैं उल्लंघन न करूंगी ॥ ५७ ॥ मैं उससे बोला कि

तुम्हारे स्नेहके वशसे मैं तुम्हारे घरमें आया हूं, मेरे सखा इस समय भूखके मारे व्याकुल हो रहे हैं, इसी कारण तुम्हारे निकटसे कुछ भोजनकी प्रार्थना करते हैं ॥ ५८ ॥ जो तुम्हारी श्रद्धा हो तो दही गोरस जो कुछ भी हो वह इन्हें खानेके लिये दे दो, यह वार्ता सुनकर वह अत्यन्त ही आनंदित हुई और थोड़ी देरके पीछे उसके घरमें जितना भी गोरस इत्यादि था वह सभी प्रसन्नचित्त हो ले आयी ॥ ५९ ॥ और उसने प्रीतिसहित मेरे आगे रक्खा और मुझसे बोली कि तुम प्रीतिपूर्वक इसे इच्छानुसार भोजन करो. हे मुने ! उसकी ऐसी प्रीतिको देखकर मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ ॥ ६० ॥ और फिर आप

देहि नस्ते यदि श्रद्धा तेन दध्यादि गोरसम् ॥ तच्छ्रुत्वा साऽतिहर्षेण समानीय च गोरसम् ॥ ५९ ॥ ददौ प्रेम्णा स्मितं कृत्वा प्रीत्या भोक्तुं यथेष्टकम् ॥ तस्याश्च प्रीतिभावेन तोषितोऽहं मुने भृशम् ॥६०॥ भुक्त्वा दत्त्वाऽथ गोपेभ्यो वानरेभ्यो विशेषतः ॥ तस्यां मम कृपा जाता सर्वं द्रव्यमनन्तकम् ॥ ६१ ॥ या मह्यमर्पयेत्प्रीत्या तस्यास्तन्न क्षयं व्रजेत् ॥ न चार्पयेद्या हि रक्षेद्वा निस्तस्यास्तु जायते ॥ ६२ ॥ इति मे प्रकटीकृत्य दर्शितं मुनिसत्तम ॥ याऽगोपयत्तु दध्यादि मत्तो भीता हि गोपिका ॥६३॥

भोजन करके जो उसमें बचा उसको अपने सखा और वानरोंको दे दिया, उन सबोंने भी खाकर अत्यन्त ही आनन्द माना। उस गोपीने मुझे जो भक्तिपूर्वक गोरस दिया था उससे उसके ऊपर मेरी अधिक कृपा हुई, उसी कृपाके प्रतापसे उसके घरमेंके सम्पूर्ण द्रव्य अनन्त हो गये ॥ ६१ ॥ जो गोपी प्रीतिपूर्वक भक्तिके साथ मुझे इस प्रकारसे अर्पण करती हैं उन्हींको अक्षयकी प्राप्ति होती है. सारांश यह है कि जो मुझे न देकर केवल रखते ही हैं उन्हींका समस्त द्रव्य क्षय हो जाता है, अथवा उनके यहां कुछ भी नहीं रहता ॥ ६२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह मैं सभी प्रत्यक्ष दिखा देता हूं, देखो ! जो गोपियें मेरे

भयसे दधि इत्यादि पदार्थोंको मुझसे छिपाकर रखती हैं ॥६३॥ उनका इकट्ठा किया हुआ भी सभी नष्ट हो जाता है, मैं छल बल करके सभीको हरण कर लेता हूं और जो मुझे देती हैं उनके सम्पूर्ण पदार्थ अनंत हो जाते हैं ॥६४॥ अधिक क्या कहूं संसारमें जो कुछ भी है वह सभी मेरा है, इस कारण जो मुझे नहीं देते हैं वे किस प्रकारसे भोग कर सकते हैं इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥ ६५ ॥ जिस २ घरमें जाकर मैंने सब पदार्थ खाकर उनका नाश कर दिया उन्हीं २ घरमें जाकर मैं अन्नधनादि पदार्थोंकी वृद्धि कर देता हूं, इस प्रकार शिक्षा करता हुआ मैं प्रतिदिन गोपालोंके स्थानमें भ्रमण करता हूं। गोप,

तस्या हृतं मया सर्वं बलेनाऽथ च्छलेन वा ॥ सञ्चितं नाशमायाति दत्तमानन्त्यमृच्छति ॥६४॥ यत्किञ्चिद्वस्तुमात्रं हि सर्वं मत्तो न चान्यतः ॥ यो नार्पयित्वा भुङ्क्ते स स्तेन एव न संशयः ॥६५॥ अतोऽन्यासां तु भवने नाशितं चाखिलं मया ॥ तस्यास्तु वर्द्धितं या मे प्रीत्या सर्वं समर्पयत् ॥६६॥ इत्यहं शिक्षयन्घोषे अटामि प्रतिवासरम् ॥ गोपा गोप्यस्तथा गावो वृक्षा वीरुत्तृणानि च ॥ ६७ ॥ एतत्सर्वं च विज्ञेयं ममैवानन्दविग्रहम् ॥ सर्वान्व्रजस्थान्ये मत्तो भिन्नान्पश्यन्ति दुर्धिया ॥ ६८ ॥ तेषां हि मूढबुद्धीनां गतिर्नात्र परत्र च ॥ ततो व्रजे विनोदेन मुनेऽक्रीडमहर्निशम् ॥ ६९ ॥ ततस्तस्या गृहे भुक्त्वा पीत्वा प्रीततरा वयम् ॥ गन्तुमुच्चलिताः सर्वे ह्यन्यगोप्या गृहं प्रति ॥ ७० ॥

गोपी, गऊ, वृक्ष, लता और तृण ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ इन सभीको मेरे आनन्दका देनेवाला जानो, जो व्रजमें स्थित अखिल पदार्थोंको मुझसे भिन्न देखते हैं ॥६८॥ उनकी बुद्धि मोहसे ढकी हुई है और उनको स्वर्ग-अपवर्गकी गति नहीं मिलती, इस कारण प्रतिदिन मैं व्रजमें आनन्दके लिये क्रीडा करता हूं ॥६९॥ फिर हम सब उस गोपीके घर इस रीतिसे भोजन पान करके अत्यन्त सन्तुष्ट और तृप्त हो गये, इसके पीछे फिर हम सब

वहांसे बाहर आकर एक और गोपीके घरमें जानेका उपाय करने लगे ॥७०॥ वह हमको दूरसे ही देखकर अपने द्वारपर आ खड़ी हुई (इसके पीछे हम बल करके उस गोपीके घरमें चले गये) तब वह गोपी एक २ के घर जाकर गोपियोंको बुलाने लगी ॥७१॥ इतनेमें ही वहां व्रजनारियें बहुतसी आकर इकट्ठी हो गयीं, तब वह घरके द्वारको बन्द करके कहने लगीं ॥ ७२ ॥ कि हे कृष्ण! अब क्या करोगे, तुम जभी घरसे बाहरको आओगे तब तुमको हम सभी पकड़कर कुछ भी विचार न करके यशोदाजीके पासको ले चलेंगी ॥७३॥ वे सब गोपियें इस प्रकारसे निश्चय करके दरवाजेके

सा चास्मान्वीक्ष्य दूराद्धि गृहद्वारगता सती ॥ ययावन्यापदेशेन गोपीनां सा गृहे गृहे ॥७१॥ विलोक्यास्मान्गृहे विष्टान्समाहूय व्रजस्त्रियः ॥ समागता ततो द्वारमारुद्ध्य प्रसभं स्थिताः ॥७२॥ यदा गृहाद्बहिर्यासि कृष्ण त्वां सर्वयोषितः ॥ धृत्वा यशोदाभवनं नयामश्च विचारय ॥७३॥ एवमुक्त्वा स्थिता द्वारि चास्माभिर्भुक्तमेव हि ॥ तज्ज्ञात्वा सुभृशं भीताः सखायस्ते पलायिताः ॥७४॥ गोपीभिर्न धृताः केऽपि मत्पलायनशङ्कया ॥ अहमेकः स्थितस्तत्र द्वारि दत्त्वा कपाटकम् ॥७५॥ अद्यो पलब्धो बहुभिर्दिवसैर्यत्नतो भृशम् ॥ कथं ते गमनं चाद्य भविष्यति विचारय ॥ ७६ ॥

ऊपर खड़ी रहीं, इस ओर मैं भी सम्पूर्ण पदार्थोंको खा चुका, भोजनको समाप्त हुआ जानकर मेरे सब सखा डरके मारे उसी समय भाग गये ॥७४॥ गोपियोंने उनको नहीं पकड़ा, कारण कि जो हम इनको पकड़ेंगी तो इस अवसरको पाकर कृष्ण भाग जायँगे, उन्हें यही शंका थी, मैं वहां इकला रह गया, तब मैंने घरके दरवाजेके किंवाड़ भीतरसे बन्द कर लिये ॥७५॥ यह देखकर गोपियें कहने लगीं कि तुम आज बहुत दिनोंके पीछे बड़े यत्नसे

पकड़े गये हो, अब किस प्रकार भागोगे विचार कर देखो ॥७६॥ तुमने बहुत दिनोंसे अनेक प्रकारके दाँव घात किये थे, परन्तु आज उनमेंसे एक भी नहीं चल सकता है, कारण कि चोरोंका बहुत समय होता है॥७७॥ और साधुओंका कभी कोई समय आ जाता है; इस कारण आज जो हमारे मनमें आवेगा वही करेंगी ॥७८॥ तुमको हम पकड़कर यशोदाजीके पासको ले चलेंगी, वह मुझको चारों ओरसे घेरकर इस प्रकारसे नाना प्रकारके वचन कहने लगीं ॥७९॥ मैंने इसी अवसरमें शीघ्रताके साथ जो कुछ दूध दही उसके घरमें था सभीको खा लिया, इसके पीछे खानेसे जो कुछ भी बचा उसको

बहूनि त्वं दिनान्यत्र कृतवान्हि गतागतम् ॥ चोराणां समयाः सन्ति बहुशोऽथानुवासरम् ॥७७॥ साधो कदाचित्समयश्चैकदा सर्वसाधकः ॥ तस्मादद्य विधास्यामो यथाऽस्माकं मनोगतम् ॥७८॥ गृहीत्वा त्वां विनेष्यामो यशोदाभवने वयम् ॥ एवं बहुविधा वाचो जल्पन्त्यो मामवेष्टयन् ॥७९॥ भुञ्जानेन मया क्षिप्रं दधिदुग्धादि तत्र च ॥ गृहीत्वा नेत्रयोः क्षिप्तं कस्याश्चिद्व्याकुलाऽभवत् ॥८०॥ लब्धमार्गो बहिस्तस्मान्मण्डलात्प्रस्थितोऽस्म्यहम् ॥ उवाच ताः कथं यत्नः सफलो निष्फलोऽथवा॥८१॥ नाहं कैश्चिद्धृतः क्वापि बलिष्ठैरपि पूरुषैः ॥ एतावद्यत्ननिचयैर्द्धार्य्यः स्त्रीभिरहं कथम् ॥ ८२ ॥ भवतीनामिह प्रेमरशना मम शृङ्खला ॥ तथा यत्नं विचार्य्याशु कुरुध्वमविलम्बितम् ॥ ८३ ॥

हाथमें लेकर मैं उनके नेत्रोंकी ओरको फेंकने लगा; तब वे व्याकुल हो गयीं और (घरका द्वार छोड़ दिया) ॥८०॥ इस अवसरमें मैं भी मार्ग पाकर उनके घरके भीतरसे निकल गया, तब वह कहने लगीं कि हमारे यत्न सफल होकर भी किस प्रकारसे निष्फल होगये ॥८१॥ कभी भी मुझे कोई बलवान् मनुष्य अनेक प्रकारके यत्नोंसे नहीं पकड़ सकते तो फिर स्त्रियोंकी क्या सामर्थ्य है जो मुझे पकड़ सकें ॥८२॥ [इसका सारांश यह है] कि

तुम्हारे प्रेमरूपी वचन ही हमारे बाँधनेकी जञ्जीर हैं, तुम विचार करके उसके अनुसार यत्न करनेमें शीघ्र प्रवृत्त हो, इसमें किसी प्रकारका भी विलम्ब न करो ॥ ८३ ॥ हमने तुम्हारे पकड़नेमें बहुत ही यत्न किया परन्तु यथाकथञ्चित् वशीभूत होनेपर भी तुम तो शीघ्र ही (मनके) भीतरसे बाहर ही निकल जाते हो ॥८४॥८५॥ तुमने किस प्रकारसे छलनेकी शिक्षा पायी है तुम बड़े चतुर हो तुम्हारे समान पृथ्वीपर न कोई हुआ और न होगा ॥८६॥ तुम इधर आये और उधर गये, क्षणकालको भी कहीं नहीं ठहरते इस कारण तुम्हारे पिता माता कभी तुमको मारते नहीं, सर्वदा ही बड़ी प्रीतिसे

यथा मम गतिर्नैव कदाचिज्जायतेऽन्यतः ॥ ता ऊचुरात्मग्रहणोपायं कृष्ण वदाशु नः ॥ ८४ ॥ बहुधा तु कृतोऽस्माभिः प्रयत्नस्त्वं न गृह्यसे ॥ कथंचिद्वशितो यत्नात्तथापि त्वं बहिर्गतः ॥८५॥ केन त्वं शिक्षितो नानाच्छलमार्गविचक्षणः ॥ त्वत्समो भूतले कश्चिन्न भूतो न भविष्यति ॥ ८६ ॥ सखायस्त्वाऽभितो यान्ति न तिष्ठन्ति क्षणं क्वचित् ॥ अतः पितृभ्यां तनयस्ताड्यते नहि लाल्यते ॥ ८७ ॥ त्वं पित्रोर्वयसोऽतीते जातः संलाल्यसे ततः ॥ धृष्टो भवसि तेन त्वं सखिभिर्भ्राम्यसि व्रजे ॥ ॥ ८८ ॥ गृहं प्रविश्य पात्राणि भिनत्स्यत्सि च गोरसम् ॥ प्रयत्नैर्बहुभिर्नापि लभ्यसे त्वं कथञ्चन ॥ ८९ ॥

तुम्हारा लालन पालन करते हैं ॥८७॥ तुम पिता माताके वृद्धावस्थामें उत्पन्न हुए हो इस कारण तुम्हारे ऊपर उनका अत्यन्त प्रेम है, तुम स्वयं सखा और वानरोंको साथ लिये हुए व्रजमें विचरते हो ॥८८॥ और सबके घरोंमें जाकर बरतनोंमेंसे दूध दहीको निकाल२कर खाते फिरते हो, तुम बड़े भारी धूर्त हो जो इतने यत्न करके भी कोई तुमको नहीं पकड़ सकता है, इस कारण अब हम इसी समय व्रजको त्यागकर कहीं और जाकर बसेंगी ॥ (तुम्हारे

यह नहीं कह सकतीं ॥६॥ देखो यहांपर आपका पुत्र वानर और सखाओंको साथ लेकर सर्वदा ही हमारे घरके भीतर निःशंक हो चला जाताहै॥ ७॥ और यह यदि स्वयं भोजन कर ले तबतो अत्यन्तही सुखकी बात है, परन्तु ऐसा न करके वह कृष्ण अपने साथी वानर और सखाओंको खिला देता है ॥ ८ ॥ फिर यदि ग्वाल बालभी भोजन करलें तब भी संतोष है परन्तु वानरगण भी भोजन करके ढेरके ढेर पदार्थोंको इधर उधर फेंककर ॥९॥ सम्पूर्ण बरतनोंको फोड़ देते हैं इससेही हमें बड़ा दुःख होता है यह तुम्हारा पुत्र प्रतिदिन आकर यह कार्य करता है ॥ १० ॥ उसमें तो किसीका चारा ही नहीं है,

अत्र नित्यं तव सुतः सखिभिर्वानरैः सह॥अकस्माद्विशतेऽस्माकं भवनेषु हि नित्यशः॥७॥भुंक्तां यदि स्वयं किञ्चिद्भवने नः परं सुखम्॥न तथा कुरुते कृष्णो भोजयत्यपरान्पशून् ॥८॥ भुञ्जते गोपबालाश्च नहि दुःखाय तद्धि नः॥यद्वानरान्भोजयति भुवि प्रक्षिपतीति च॥९॥यद्भिनत्ति च पात्राणि ततो दुःखं करोति च ॥ आगत्यागत्य पश्यामः कृतं कर्मात्मजस्य ते॥१०॥विक्रुश्य बहुशो गेहे तिष्ठामः क्षुब्धमानसाः॥ गतं तद्गतमेवास्तु किं कुर्म्म इति निश्चिताः॥यत्र कुत्राप्यसौ याति कैतवोक्त्या प्रवञ्चयन् ॥११॥ भुङ्क्ते बालैश्चकपिभिश्छलेन च बलेन च ॥ वेष्टितोऽपि च गोपीभिर्भूयो भूयः पलायते॥१२॥बालान्रावयते क्वापि रोदित्यपि च धावति॥ गृहे मूत्रपुरीषं च कुरुते लिप्तमार्ज्जिते॥१३॥वाग्वज्रताडनं क्वापि तथा तर्जनभर्त्सने॥प्रत्यहं कुरुतेऽस्माकं कथं सोढुं हि शक्यते॥१४॥

क्या करें फिर इस प्रकारसे समझकर अपने घरमें ही चुप होकर बैठ रहती हैं [परन्तु प्रतिदिन इस प्रकारसे कहांतक किया जा सकता है इसी कारण हम सबने यही निश्चय किया है कि व्रजको छोड़कर कहीं और जगह जाकर वास करेंगी] और क्या कहूं यह बालक जहां जाता है उसी स्थानमें छलसे सभीको छल लेता है ॥११॥ छलबल करके बालक और वानरोंके साथ भोजन करताहै, जब गोपियें मिलकर इसको पकडनेका बारम्बार उपाय करती हैं तभी यह भाग जाता है ॥१२॥ कभी हमारे बालकोंको सोतेसे जगा देता है, कभी उनको मारता है, कभी लिपेपुते घरमें मलमूत्र करता है ॥१३॥ कभी यह

वज्रके समान वाणीसे ताडन करता है और कभी तर्जन गर्जन करता है प्रतिदिन यह ऐसा कार्य करता है, अब बताओ तो सही हमलोग कहां रहें ॥१४॥ यह कभी नेत्रोंमें धूल डालता है और कभी गलेके हारको तोड़कर सम्पूर्ण वस्त्रोंको फाड़कर भयसे भाग जाता है ॥ १५ ॥ जिस समय हम घरके कार्योंमें लग जाती हैं उस समय यह सखा और वानरोंके साथ आकर हमारे घरमें रक्खे हुए दूध दही इत्यादिको खा जाता है ॥१६॥ जब यहँ घरमें जाकर इस प्रकारके अत्याचार करता है इसीलिये हम अपने घरके कामको कुछ भी नहीं कर सकती हैं ॥१७॥ हे परमपूज्य नंदरानी !

नेत्रेषु धूलिं क्षिपति हारं च त्रोटयत्यलम् ॥ वस्त्राणि पाटयित्वा च भयादिव पलायते ॥१५॥ भुक्त्वा पीत्वा दधि पयः सखिभिर्वा नरैः सह ॥ यदा वयं व्यग्रधियो गृहकृत्येषु भामिनि ॥१६॥ तदा गृहं प्रविश्याशु गृहोत्सादं करोत्यसौ ॥ न शक्नुमस्ततः कर्त्तुं गृह कार्य्यं च किञ्चन ॥१७॥ व्रजत्यागे मनोऽस्माकं नान्यत्कर्तुं हि शक्यते ॥ अथवा स्वसुतं देवि निवारय कथञ्चन ॥१८॥ तदा वासो भवेन्नूनमस्माकं नान्यथा क्वचित् ॥ व्रजे वासः सुखायैव न त्यजामः कदाचन ॥१९॥ तव पुत्रस्य कृत्येन व्रजत्यागो भवि ष्यति॥२०॥श्रीकृष्ण उवाच॥ इति तासां वचः श्रुत्वा यशोदा सुस्मिता सती॥मामुवाच कथं पुत्र गोपिकाः कथयन्ति हि ॥२१॥

हमारे चित्तमें यह बात आती है कि व्रजका रहना त्यागकर अन्यत्र चली जाँय, अथवा जैसे बने वैसे तुम्हीं अपने पुत्रको समझा बुझा कर रोक लो ॥१८॥ जब आप अपने पुत्रको समझा लेंगी तो हम कदापि अन्यत्र नहीं जाँयगी, कारण कि व्रजमें रहनेसे हमें सब प्रकारका सुख है ॥ १९ ॥ परन्तु तुम्हारे पुत्रके उपद्रवोंसे ही व्रजको छोडना होगा ॥२०॥ श्रीकृष्णजी बोले कि मेरी माता उनके यह वचन सुनकर मधुर २ हँसकर मुझे बुला

मुझसे कहने लगीं कि हे पुत्र ! ये गोपियें किसलिये ऐसी बातें कहती हैं॥२१॥ तुम्हारे घरमें तो सर्वदा ही दही, दूध और चारों प्रकारके पदार्थ भरे रहते हैं, किसीका भी अभाव नहीं रहता; फिर तुम किस कारण औरोंके घरोंमें जाते हो? मैं क्या तुम्हें नहीं देती हूं ॥२२॥ तुम्हारी जो इच्छा हो वही तुम्हारे घरमें भरा हुआ धरा रहता है, तुम्हारे यहां जो करनेकी इच्छा हो वह तुम अनायास ही कर सकते हो ॥२३॥ फिर तुम क्यों उन गोपियोंके घरमें जाते हो? बालक और वानर ये सभी तुम्हारा क्या उपकार करेंगे ॥२४॥ जो उनको साथमें लिये हुए तुम प्रतिदिन पराये घरमें जाते हो? यह जो गोपी नयी आयी हुई

दध्यादिकं गृहे सर्वं वर्त्ततेऽत्र चतुर्विधम् ॥ कथं परगृहे यासि मया किं नैव दीयते ॥ २२ ॥ सदादत्त्वाखिलं नूनं विद्यते तव सद्मनि ॥ यद्यदिच्छसि कर्त्तुं त्वं तत्कुरुष्व निरन्तरम् ॥ २३ ॥ कथं व्रजसि गोपीनां गृहेषु परसद्मसु ॥ बालका वानराश्चैव किं करिष्यन्ति ते हितम् ॥ २४ ॥ यैः सार्द्धं परगेहे च व्रजसि त्वं हि नित्यशः॥नववध्वोऽखिला गोप्यो यद्वा तद्वा वदन्ति ताः ॥ २५ ॥ या वदन्ति प्रवयसस्ता विचार्य्य वदन्ति वै ॥ तवापराधादेतासां वचनं सह्यते मया ॥ २६ ॥ विनाऽपराधं कः कस्य सहते रुशतीं गिरः ॥ यदि त्वं न व्रजस्यासां गृहेषु कथयन्ति किम् ॥२७॥ स्वल्पमन्यापराधं हि परस्तु बहु मन्यते ॥ आत्मीयानां न गणयत्यपराधं कदाचन ॥ २८ ॥

हैं वे तो चाहे जो कुछ कहें ॥२५॥ परन्तु जो वृद्ध गोपियें कह रही हैं वह तो समझकी ही बात है, तुम्हारे ही अपराधके कारण मैं उनकी बातोंको सहन करती हूं ॥२६॥ यदि तुम्हीं अपराध न करते तो किस प्रकारसे मैं इनकी बातोंको सह सकती थी, यदि तुम्हीं इनके घरमें न जाते तो यह किस प्रकार कह सकतीं ॥२७॥ देखो! यह मनुष्य पराये किंचित् अपराधोंको भी दूना चौगुना बताते हैं और चाहे अपने घरका बडाभारी अपराध कर लें

परन्तु वह किसीके गिननमें भी नहीं आता ॥२८॥ यदि तुम हमारी बात मानो तो कभी किसीके घरमें मत जाना, यदि अब कभी जाओगे तो मैं पकड़ कर तुमको खूब मारूंगी, इसमें संदेह नहीं ॥२९॥ मैं उनकी यह वार्ता सुनकर उनको मोहित करनेके लिये कहने लगा कि हे मातः! ये सब जो कुछ कहती हैं उसका उत्तर देनेमें हमारा सामर्थ्य नहीं है॥३०॥तो भी कुछ कहता हूं, यदि विश्वास न करो तब फिर क्या किया जा सकता है, मैं जब

यदि मे वचनं कुर्य्यात्कदाचिदपि मा भवान्॥ अन्यासां भवनं गच्छेत्ताडयिष्यामि नान्यथा ॥ २९ ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा अवोचं मोहयन्निव ॥ एतासां वचनं मातः किं वदामि न शक्यते ॥ ३० ॥ वक्तुं तथाऽपि वक्ष्यामि न प्रतीतिं करोषि किम् ॥ क्रीडन्तमात्मनो द्वारि सह मां गोपबालकैः ॥ ३१ ॥ आनयन्ति समाहूय बलादप्यात्मनो गृहम् ॥ गोप्य एतास्तर्जयन्ति न च वेद्मि कथञ्चन ॥ ३२ ॥ पितामहाय पित्रे च मात्रे मातामहाय च॥प्रयच्छन्ति हि गालीश्च शतशोऽथ सहस्रशः॥ ॥ ३३ ॥ करौ गृहीत्वा कर्षन्ति मां चरन्तमितस्ततः ॥ काचिदञ्जनमादाय नेत्रे अञ्जयति ध्रुवम् ॥ ३४ ॥ काचिन्मे वसनं काचिन्मालां वलयमेव च ॥ वंशीं च किङ्किणीं पादयुगाभ्यां ता हरन्ति हि ॥ ३५ ॥

गोपबालकोंके साथ बाहर खेलने लगा ॥ ३१ ॥ तब ये गोपियें मुझे बुलाकर अपने घरको ले जातीं, और फिर लजाकर चिल्लाने लगतीं इसका कारण क्या है यह कोई नहीं जान सकता॥३२॥ [अधिक क्या कहूं] मेरे इधर उधर फिरनेपर इनमेंसे कोई मेरे दोनों हाथोंको पकड़कर पृथ्वीपर घसीटती है, कोई अंजन लेकर मेरे नेत्रोंमें लगाती है॥३३॥३४॥कोई मेरे वस्त्र, कोई मेरी माला, कोई कंगन, कोई वंशी और कोई मेरे दोनों पैरोंके

नूपुरोंको छीनती हैं ॥३५॥ मैं इनके ऐसे व्यवहारसे रुष्ट होकर वहांसे चला आता हूं, तब ये सब मिलकर मेरे मार्गको रोकती हैं ॥ ३६ ॥ और अपने बरतनोंको तोड़फोड़कर उसमेंके गोरसको फेंक देती हैं, फिर मुझसे कहती हैं कि निश्चय ही हम यशोदाजीके पास जाकर ॥३७॥ जिससे वह तुम्हें मारें इस रीतिसे तुम्हारे अपराध कहेंगी [सारांश यह है] जो यह कहती हैं मैंने वह काम कभी नहीं किया है ॥ ३८ ॥ ये सब आपसमें दल

रुष्टोऽहं कर्मणा तेन तत्स्थानाच्चलितस्ततः॥ रुन्धन्ति मम मार्गं च तदा गोप्यश्च संघशः॥३६॥भग्ने पात्रे स्वयं ताभिर्गोरसः क्षिप्यते बहिः॥वदन्ति च यशोदाग्रे सर्वा गत्वा च निश्चितम्॥३७॥वयं तथा वदिष्यामो यथा त्वां ताडयिष्यति॥यद्यदेता वदन्ति त्वां तदहं न व्यधां क्वचित्॥३८॥एता आगत्य सङ्घेन तवाग्रे कथयन्ति वै ॥ मातस्त्वं वेत्सि मे कर्म्म त्वत्तो गोप्यं न किञ्चन॥ ॥३९॥ क्षुधितास्तृषिता बालाः परगेहं प्रयान्ति हि ॥ कदाऽहं भोजितो नैव त्वया मातर्गृहाद्गतः ॥४०॥ अनिशं मां भोजयसि परगेहं कुतो व्रजे ॥ इति मद्वचनं श्रुत्वा माता गोपीस्तदाऽब्रवीत् ॥ ४१ ॥ गोप्य आत्मीयकर्म्माणि सङ्गोप्य परकर्म्म वै ॥ कथयन्त्यो न संलज्जा धन्या यूयं व्रजाङ्गनाः ॥ ४२ ॥

बांधकर आपके सम्मुख आकर वृथा ही कह रही हैं, हे मातः ! आप मेरे कामोंको जानती हैं, तुम्हारे सामने मेरा कोई काम छिपा नहीं है ॥३९॥ देखो ! बालक भूखा प्यासा होनेपर ही पराये घर जाता है, परन्तु मैं तो कभी अपने घर भी अधिक भोजन नहीं करता ॥४०॥ आप दिनरात ही मुझे खिलाती पिलाती रहती हैं, इस कारण मैं इनके घरोंमें क्यों जायगा, मेरी यह वार्ता सुनकर माता गोपियोंसे बोलीं ॥ ४१ ॥ कि हे व्रजयुवतियो !

तुम धन्य हो ! कारण कि तुम अपने किये हुए काम दूसरोंके ऊपर डालती हो, ऐसा करते हुए तुम्हें लाज नहीं आती ॥ ४२ ॥ बालक भूखा प्यासा होनेपर ही दूसरोंके घर जाता है परन्तु यह बालक तो कभी भी भूखा और प्यासा नहीं रहता, मेरे घर तो सर्व प्रकारके पदार्थोंके ढेरके ढेर विद्यमान रहते हैं ॥ ४३ ॥ और मैं भी सर्वदा कहती रहती हूं कि इनमेंसे कुछ खा पी ले; यह बालक कभी प्रीतिपूर्वक खा लेता है और कभी नहीं भी खाता ॥ ४४ ॥ इस प्रकार यह बालक अपनी इच्छासे ही खाता है और जब इसकी इच्छा नहीं होती तब नहीं भी खाता, तुम सबके कहनेमें इस बालकको अत्यन्त क्लेश प्राप्त

क्षुधितास्तृषिता बालाः परगेहं प्रयान्ति हि ॥ नायं क्षुधार्त्तस्तृषितो राशयः सन्ति सर्वशः ॥ ४३ ॥ अनुव्रजाम्यहं नित्यं पिब भक्षतिवादिनी ॥ कदाचित्पिबति प्रीत्या कदाचिन्न पिबत्यपि ॥ ४४ ॥ एवं भुङ्क्ते न भुङ्क्ते च बालकोऽयं निजेच्छया ॥ अतिक्लेशैर्मया प्राप्तः बालोऽयं त्वत्प्रसादतः ॥ ४५ ॥ रोरुदीति च सोच्छ्वासो मद्भीत्या बालको ह्यसौ ॥ मम प्राणाधिकप्रेयान्न ताड्योऽयं वृथा मया ॥ ४६ ॥ यदि आगः कृतोऽनेन तदा वै कुरु विनिग्रहम् ॥ श्रुत्वा चोक्तीर्यशोदायाः पुनरूचुश्च गोपिकाः ॥ ॥ ४७ ॥ प्रतीतिं बालवाक्ये च कुरुष नास्मदीरितं ॥ ४८ ॥ न चत्प्रतीतिं कुरुष किं कुर्म्मः कथयाम किम् ॥ वयं मिथ्याति वादिन्यो नहि सोऽयं तवात्मजः ॥ ४९ ॥

हुआ है ॥ ४५ ॥ मेरे भयसे यह बालक हिड़की बाँधकर रोने लगता है, यह बालक मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारा है, मैं विना कारण इसको नहीं मार सकती ॥ ४६ ॥ यदि यह किसीका अपराध करेगा तब मैं इसको उचित दंड दूँगी, गोपियें यशोदाजीकी यह वार्ता सुनकर फिर बोलीं ॥ ४७ ॥ कि आप तो अपने पुत्रकी ही बातका विश्वास मानती हो, हमारे वचनोंपर आपको कभी विश्वास नहीं होता ॥ ४८ ॥ फिर जब विश्वास ही नहीं है

तब फिर हम क्या कर सकती हैं, वास्तव में हम ही झूंठी हैं आपका पुत्र नहीं ॥४९॥ इसमें हमें अत्यन्त ही आश्चर्य विदित होता है, हमारी जिह्वा तालुको स्पर्श नहीं कर सकती, इसलिये हम और अधिक क्या कहें॥५०॥आप तो अपने पुत्रको सीधा मानती हैं यह तो मनुष्योंका स्वभाव ही है कि अपने और परायेमें भेद माना करते हैं ॥५१॥ विशेष करके बालकको पहले लाड़ प्यार करके कभी उसको नहीं डपटते, फिर जब वह बालक अपनेको भी उद्वजित (चिन्तित) करता है तभी जान सकते हैं ॥५२॥ प्यार करनेमें बहुतसे दोष हैं और धमकाते रहनेमें बहुतसे गुण हैं, इस कारण अपने

चित्रमस्माकमित्येव वक्तुं केन सुशिक्षितः॥ जिह्वा न तालु स्पृशति समयोक्ति वदत्यपि॥५०॥तथा त्वमपि जानासि साधुरेष ममात्मजः॥आत्मीये परकीये च समता न भवेन्नृणाम् ॥५१॥ बालको लालितः पूर्वं कदाचिन्न तु ताडितः॥ ज्ञास्यतीयं यदा बालस्त्वामेवोद्वेजयिष्यति॥५२॥लालने बहवो दोषास्ताडने बहवो गुणाः॥तस्माद्धितार्थी बालांश्च ताडयेन्न तु लाडयेत्॥५३॥ परन्तु वार्धके जाते जातोऽयं युवयोः सुतः ॥ तस्मात्ताडयितुं नैव कुरुते भवती मनः॥५४॥ भवत्विदानीं गच्छामो यदा किञ्चित्करिष्यति॥नीत्वा त्वां दर्शयिष्यामस्तदा किं वा वदिष्यति ॥ ५५ ॥ इत्युक्त्वा तास्ततो गोप्यः स्वकीयनिलयं ययुः ॥ गतासु तासु गोपीषु यशोदा मामशिक्षयत् ॥ ५६ ॥

हितकी अभिलाषा करनेवाले मनुष्य सर्वदा ही अपने बालकोंको ताड़ना करते रहते हैं, कभी प्यार नहीं करते ॥५३॥ परन्तु तुम्हारे तो वृद्धावस्थामें यह बालक हुआ है, इसी कारण तुम्हारा मन इसके मारने पीटनेको नहीं करता ॥५४॥ अब तो हम अपने घरको जाती हैं, परन्तु अबकी बार जो इस बालकने कुछ किया तो आपके पास लाकर दिखावेंगी, उस समय देखें कि आप क्या कहेंगी ॥५५॥ यह कहकर सब गोपियें अपने २ घरोंको

चली गयीं, उनके चली जानेपर यशोदाजी मुझे शिक्षा देने लगीं॥५६॥ कि अब तुम किसीके घर कभी न जाना, किसीको कभी दुर्वचन न कहना, अपने माता पिताको गाली न दिलाना, कभी झूंठ न बोलना ॥५७॥ पापकर्म न करना, चोरी अथवा कपट न करना, सबसे मधुर वचन बोलना, जिससे सबको सुख उत्पन्न हो ऐसे कामोंको सर्वदा करते रहना ॥ ५८ ॥ कभी किसीको चिन्तित न करना, जो कोई तुम्हें न बुलावे तो विना बुलाये उसके घर न जाना, मैंने जो कुछ तुमसे कहा उसीके अनुसार करना॥५९॥हे पुत्र! यदि बालक और वानर तुम्हारे पास आवें तो तुम उनको अपने ही

न गच्छेरन्यवेश्मानि न वदेर्दुर्वचः क्वचित्॥न गालीर्दापयेः पित्रोर्न ब्रूया अनृतं वचः॥५७॥पापं कर्म्म न कुर्वीथाश्चौर्य्यं कपटमेव च॥तथ्यं प्रियं ततो ब्रूयाः कुर्य्याः कर्म्म सुखावहम्॥५८॥नोद्वेजयेस्तथा कञ्चिदनाहूतो न वेश्मनि न ॥गच्छेस्त्वं कदाचिच्च कुरु मे शिक्षितं वचः ॥५९॥ यदि बाला वानराश्च प्रियाः पुत्र तवान्तिकम्॥आनयस्व गृहे सर्वान्पिब भुङ्क्ष्व ददस्व च॥तदा सुखं मे भविता नान्यथा किञ्चिदेव हि ॥६०॥ श्रुत्वेति वचनं तस्या अहमप्यब्रुवं ततः॥न प्रतीतिं मद्वचसि कुरुषे त्वं ततः कुरु ॥ ॥ ६१ ॥ गोपं प्रौढं निजं कञ्चिन्मदीयं सहचारिणम् ॥ तं पृष्ट्वा ज्ञास्यसे मातः सर्वमेव च चेष्टितम् ॥ ६२ ॥ तासामपि च कर्म्माणि वदिष्यति स एव ते ॥ यत्र कुत्रापि क्रीडन्तं वीक्ष्य मां वेष्टयन्ति ताः ॥ ६३ ॥

घरमें बैठकर भोजन कराना, ऐसे करोगे तो हमें परमसुख होगा॥६०॥ माताके यह वचन सुनकर मैं बोला, कि मेरी बातका यदि तुम्हें विश्वास न आवे तो तुम मेरे साथमें ॥६१॥ किसी वृद्ध गोपको भेज दिया करो और फिर उससे पूछ लिया करना, तब आपको मेरे सम्पूर्ण चरित्र विदित हो जाया करेंगे॥६२॥और उन गोपियोंके कर्तव्योंको भी तुम भली प्रकारसे जान जाया करोगी, मैं जो कहीं किसी स्थानमें जाकर खेलता हूं तो ये सब

उसी समय मुझे देखनेके लिये आ जाती हैं॥६३॥और अपने घरके कामोंको छोड़कर मेरे सम्मुख बैठी रहती हैं और अधिक मैं क्या कहूं शौचादि कर्ममें निरत मुझको हठात् (जबरदस्ती) पकड़कर अपने घरको ले जाती हैं॥६४॥उनकी मुझमें अत्यन्त इच्छा होनेपर भी मैं भागकर चला ही आता हूं, अपने घरके पात्रोंको गोपिका अपने आप स्वभावसे ही मेरे इष्टमित्रोंको देकर भोजन करा देती हैं जो कुछ वस्त्रादि घरके हैं वह भी मित्रोंके हाथमें देकर मारपीट कर कहती हैं कि॥६५॥६६॥कैसे दधि दुग्ध हमारा भोजन किया और क्यों यह सब पात्र तोड़फोड़ डाले अब हम तुमको भी

गृहकर्म्माणि सन्त्यज्य तिष्ठन्ति मम सन्निधौ ॥ बलाद्गृहीत्वा स्वोत्सङ्गे नयन्ति स्वगृहं प्रति ॥ ६४ ॥ अत्यन्तात्मेच्छया चैव यामि कृत्वा पलायनम् ॥ आनीय गृहपात्राणि स्वयमेव हि गोपिकाः ॥ ६५ ॥ प्रयच्छन्ति सखिभ्यश्च भोजयन्ति स्वभावतः ॥ पश्चाद्गृहीत्वा वसनं ताडयन्ति सर्वानपि ॥६६॥ कथं दधि पयोऽस्माकं भुक्तं पात्रं च भेदितम् ॥ तदा तानपि कृच्छ्रेण मोचयामि कथञ्चन ॥६७॥ भुक्त्वा च ते पलायन्ते गोप्यो गृह्णन्ति मां तदा॥तदा क्रोशन्ति बहुशो यद्वा तद्वा वदन्ति च ॥६८॥ इति श्रीआदिपुराणे नारदशौनकसंवादे यशोदाकृष्णसंलापो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यशोदा मद्वचः श्रुत्वा प्रतीतिमकरोत्तदा ॥ अहमप्यन्यदिवसे तासां वेश्म तथाऽविशम् ॥ १ ॥

कृष्णके ही सामने छोड़ेंगी ॥६७॥ पहिले तो क्यों खाकरके भाग गये थे इस प्रकार गोपियां मुझको और मेरे मित्रोंको यद्वा तद्वा (जो चाहे सो) कह डालती हैं और चिल्लाती हैं ॥ ६८ ॥ इति श्रीआदिपुराणे सकलपुराणसारभूते नारदशौनकसंवादे भाषाटीकायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ श्रीभगवान् बोले कि यशोदाजीको मेरे वचन सुनकर विश्वास आ गया, इसके पीछे फिर मैं दूसरे दिन पहलेके समान गोपियोंके घरमें गया ॥ १ ॥

वहां जाकर अनेकप्रकारके छल बल कर समस्त वस्तुओंको ग्रहणकर कभी खाता कभी संपूर्ण बरतनोंको तोड़ता॥२॥कहीं वस्त्रोंको फाड़ता, कहीं हार जाकर तोड़ता और कहीं जाकर शंखको चूर्ण२कर फेंक देता था, व्रजनारियोंके घर२में महाकुलाहल होने लगा॥३॥एक गोपी अपने घरमें यौवनसे मतवाली होकर सखियोंके साथ मुझे पकड़नेके लिये उद्यत हुई॥४॥तब मैंने बलपूर्वक झटक दिया और वह पृथ्वीके ऊपर गिर पड़ी, इसी कारणसे उसके हाथोंके कंगन और गलेका हार टूट गया ॥५॥ उसके शरीरके स्थान२से रुधिर निकलने लगा, तब रुधिरसे लिप्त हुई वह गोपी उठकर यशोदाजीसे कहने

बलेन च्छद्मना वापि गृहीतं चाखिलं वसु ॥ कुत्रचिद्भुक्तमेवाथ पात्रभङ्गश्च कुत्रचित् ॥ २ ॥ वस्त्रस्य पाटनं क्वापि हारशङ्ख विभेदनम् ॥ महाक्रोशो बभूवाथ व्रजस्त्रीणां गृहेगृहे ॥३॥ कस्मिंश्चिद्भवने सौम्य प्रौढा यौवनगर्विता ॥ रुरोध मां सखीभिश्च स्वयं धर्त्तुं समुद्यता॥४॥ मया च सा बलात्क्षिप्ता पपात धरणीतले ॥ हस्तयोः स्फुटिताः शंखा हारश्छिन्नो द्विधाऽभवत् ॥५॥ वस्त्रे च गात्रे रुधिरस्रावो वै तत्र तत्र हा ॥ उत्थिता सा तथाभूता यशोदायै न्यवेदयत् ॥६॥ अहं मृषाश्रुर्गच्छामि रुदन्वै सदनं प्रति ॥ ततो यशोदा मामाह कथं रोदिषि पुत्रक ॥ ७ ॥ मयोक्तं शृणु मातर्मे वचनं यद्ब्रवीम्यहम् ॥ इयं पश्चान्ममागत्य पृष्ठे संताड्य पाणिना ॥८॥ चचाल वेगादपतत्स्खलिता च स्वयम्भुवि ॥ मिथ्या वदति मे दोषमियं त्वत्पुरतः स्थिता ॥९॥ तदा कर्ण्य यशोदा च बहुधा तामभर्त्सयत ॥ त्वं सदा यौवनोन्मत्ता बन्धनं कुरुषे भृशम् ॥१०॥

के लिये गयी ॥६॥ मैं भी उसी अवसरमें बिसूर२कर रोता हुआ उसके पीछे२ घरमें गया, यह देखकर यशोदाजी मुझसे पूछने लगीं कि हे बेटा ! तुम किस लिये रो रहे हो ॥ ७ ॥ मैं बोला कि हे मातः ! जो मैं कहता हूं सो तुम सुनो, इस गोपीने मेरे पीछेसे आकर मेरी पीठमें अपने हाथोंसे खूब घूंसे लगाये ॥८॥ उस चोटके लगनेसे मैं मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर गया, अब आपके सामने आकर बिसूर २ कर मुझे दोष लगाती है ॥९॥ यशोदाजी

इस वार्ताको सुनकर बारंबार उसको झिझककर कहने लगीं कि तुम यौवनसे मदमाती होकर सदा अत्यंत ऊधम मचाती हो ॥१०॥सबके ही घरमें बालक हैं कोई किसीको भी दोष नहीं देती,उसी प्रकार कोई गोपी भी हमारे कृष्णको दोष नहीं लगाती है॥११॥ माताके इन आक्षेपदायक वचनों को सुनकर वह गोपी लज्जित होकर चली गयी,ब्रह्मादि देवता भी उसको नहीं पा सकते जो वैष्णवोंकी स्त्री अनेक बार प्राप्त कर चुकी हैं। मेरी माताने एक समय देवताकी पूजा करनेके लिये ॥१२॥१३॥ भांति२ के पक्वान्न और दही दूध इत्यादिको इकट्ठा किया, समस्त सामग्रीको संभालकर

बाला गृहे गृहे सन्ति काऽपि कस्याऽपि दूषणम्॥नब्रवीति यथा नित्यं कृष्णस्याखिलगोपिका॥११॥इति साक्षेपवाक्यानि श्रुत्वा सा लज्जिता ययौ ॥ नैतद्ब्रह्मादिभिर्देवैरनुभूतं हि तत्सुखम् ॥१२॥ यल्लब्धं बल्लवस्त्रीभिरेवंभूतमनेकधा ॥ कदाचिद्देवपूजार्थमुद्यता जननी मम ॥१३॥ अकरोद्बहुपक्कान्नदधिदुग्धादिसञ्चयम् ॥ संपाद्य सर्वां सामग्रीं गोपीराह्वातुमुद्यता ॥१४॥ मामुक्त्वा गृहरक्षाऽत्र सम्यक्कार्या त्वयाऽनघ ॥ यावत्स्त्रियः समाहूय आनयामि स्ववेश्मनि ॥१५॥ अथ तस्यां गतायां तु मयाहूताश्च बालकाः॥वानराश्चागताः सर्वे ते मया भोजिताः सुखम्॥१६॥ आगता सा परावृत्य समाहूय व्रजस्त्रियः॥ दृष्ट्वा भूयो मत्कृतं च बभूवाथ समाकुला ॥१७॥ मामुवाच तदा माता किं कृतं शून्यसद्मनि ॥ आगत्यागत्य गोपीभिर्यदुक्तं जातमद्य मे ॥ १८॥

गोपियोंके बुलानेके निमित्त सन्नद्ध हुई ॥१४॥ और मुझसे बोलीं कि हे अनघ! मैं जबतक संपूर्ण स्त्रियोंको बुलाकर घरमें न आजाऊं तबतक तुम सावधानीसे बैठे हुए घरकी रक्षा करते रहना॥१५॥ यह कहकर वह तो(गोपियोंके बुलानेको)चली गयीं कि इतनेमें ही मैंने संपूर्ण वानर और बालकों को बुलाकर आनंदके साथ उनको वह संपूर्ण सामग्री खिला दी॥१६॥जब माता संपूर्ण स्त्रियोंको बुलाकर घर आयीं तब वह मेरे किये हुए चरित्रोंको देखकर अत्यंत ही व्याकुल हुई ॥१७॥ इसके पीछे मुझसे बोलीं कि तुमने सूनाघर पाकर यह क्या किया है ? गोपियें जो बारंबार आकर मुझसे

कहती हैं (उसपर मुझे विश्वास नहीं आता)॥ १८॥ जिस घरमें तुम्हारे समान बालक हो वहांपर देवताकी पूजाका होना कैसे संभव हो सकता है ? इसी कारणसे मैंने सम्पूर्ण देवताओंकी पूजा करनी छोड़ दी है ॥ १९॥ परन्तु जिन व्रजस्त्रियोंको जाकर मैं बुला आयी हूं वे आकर अब क्या कहेंगी, वे सब हँसकर यही कहेंगी कि अब तुमने अपने पुत्रके कर्तव्योंको जान लिया? ॥२०॥ वह इस प्रकार कह रही थी कि इतनेमें ही व्रजकी स्त्रियें आकर यशोदाजीको खेदित देखकर कहने लगीं कि तुम किसलिये दुःखित हो रही हो ॥ २१ ॥ यशोदाजी बोलीं कि मैंने पहलेसे ही सब कामोंका करना छोड़

यदीदृशैतादृशो बालो देवकार्य्यं कुतश्च वै॥त्यक्तं मयाऽधुना सर्वं देवकार्य्यादिकं च यत्॥१९॥आयास्यन्ति समाहूताः किं वदिष्यन्ति योषितः॥सर्वा एव हसिष्यन्ति ज्ञात्वा मां तव चेष्टितम् ॥२०॥ एवं वदन्त्यां तस्यां तु व्रजवध्वः समागताः ॥ तां दृष्ट्वा क्षोभितां प्रोचुः किमर्थं क्लिश्यते त्वया ॥२१॥ यशोदोवाच ॥ अहं पुरैव सर्वाणि कर्माणि प्रेक्ष्य च स्थिता॥ सन्ततिर्नास्ति यद्गेहे तद्गेहे मङ्गलं कुतः ॥ २२ ॥ देवताः पितरश्चैव न पुनः पूजिता मम ॥ इति त्यक्तं मया सर्वं यदाऽयं बालकोऽभवत् ॥ २३॥ कुर्वन्नरः कुलाचारं सर्वमाप्नोति शोभनम् ॥ इति वेदविदां वादः समारब्धो मया ततः ॥२४॥ देवाश्च पितरश्चैव पुत्र जातेऽतिविस्मृताः ॥ पुत्रस्नेहवशाद्गोप्यः किञ्चित्कर्त्तुं न शक्यते ॥ चित्तोत्साहादिदानीं तु समारब्धं तु किञ्चन ॥ २५ ॥

दिया है जिसके घरमें संतान नहीं है उसका मंगल कहां ॥ २२ ॥ इसी कारणसे मैं देवता और पितरोंकी पूजा कभी नहीं करती, जबसे यह बालक जन्मा है तबसे मैंने सभी कुछ करना छोड़ दिया है ॥२३॥ वेदके जाननेवालोंने कहा है कि मनुष्योंको अपनी कुलकी मर्यादाके आचारका व्यवहार करनेसे मंगल होता है, मैं भी उनके कथनानुसार ही कुलकी रीति करती रही॥२४॥ इस पुत्रके उत्पन्न होनेपर देवता और पितरोंको एकबार ही भूल

गयी,हे गोपियो! अपने पुत्रके स्नेहके मारे मेरी किसी कार्यके करनेमें सामर्थ्य नहीं होती आज कुछ करनकी मनमें इच्छा हुई थी ॥ २५ ॥ इसी कारण देवताकी पूजाके लिये सम्पूर्ण द्रव्य स्थापन करके तुम्हें बुलानेके लिये गयी थी॥२६॥इतनेमें ही मेरे इस चपल बालकने सम्पूर्ण पदार्थोंको नष्ट कर दिया, मैं आज इसको भली प्रकारसे शिक्षा देकर घरसे बाहर गयी थी उसका फल यह हुआ॥२७॥ जिसके घरमें ऐसा चपल पुत्र हो उसके यहां भला किस प्रकारसे देवता और पितरोंकी पूजा हो सकती है ॥२८॥ इसीलिये मैं आजसे अब किसीकी पूजा नहीं करूंगी,तुम्हें बुलाकर लायी थी सो अब

आस्थाप्य विविधं द्रव्यं देवकार्य्यार्थमद्य वै ॥ भवतीनां समाह्वानं कर्त्तुं यावद्गता ह्ययम् ॥२६ ॥ तावत्प्रणाशितं सर्वं बालेनातिचलेन हि ॥ शिक्षयित्वाऽथ विधिवत्सम्यगेनं गता बहिः ॥ २७॥ यस्य सद्मनि पुत्रोऽयं वर्तते चपलो ह्यति ॥ तत्र देवाश्च पितरः कथं पूज्या भवन्ति हि ॥२८॥ अद्यारभ्य कदाचिन्न पूजयिष्यामि कञ्चन ॥ समाहूता भवन्त्यो मे यात स्वं स्वं निकेतनम् ॥२९॥ गोप्य ऊचुः ॥ ज्ञातं त्वया पुत्रकर्म्म न प्रत्येषि कदाचन ॥ अस्माभिरुक्तं बहुधा त्वं जानासि मृषैव हि ॥३०॥ सम्यक्कृतं त्वया कृष्ण वस्तुजातं च नाशितम् ॥ प्रतीतिं नाकरोत्क्वापि यशोदावचने पुनः ॥ ३१ ॥ यावन्न लभते दुःखमात्मनो मानवः क्वचित् ॥ तावदन्यस्य दुःखेन प्रतीतिं नाधिगच्छति ॥ ३२ ॥

तुम सब अपने २ घरोंको चली जाओ ॥२९॥ तब गोपियें बोलीं कि आप तो पहले कभी किसीका विश्वास नहीं करती थीं आज तो आपने पुत्रके चरित्र देखे, हमने बहुतबार कहा था आप तो हमको मिथ्यावादिनी जानती थीं ॥३०॥ हे कृष्ण ! तुमने समस्त पदार्थ नष्ट कर दिये यह अच्छा किया है यशोदाजी किसीकी भी बातका विश्वास नहीं करती थीं॥३१॥ मनुष्यको जबतक कभी स्वयं दुःख नहीं होता तबतक ही वह दूसरोंके दुःखका विश्वास

नहीं करता है ॥३२॥ श्रीकृष्णजी बोले कि माता! इस प्रकारसे उनके वचन सुनकर बारम्बार मेरे ऊपर क्रोध करके मुझे पकड़नेके लिये तैयार हुई ॥३३॥ तब मैं उनके इस प्रकारके आक्षेपदायक वचनोंको सुनकर रुष्ट होकर घरसे बाहर चला गया, वह भी मेरे पकड़नेके लिये चलीं और समस्त गोपियें अपने २ घरोंको चली गयीं ॥३४॥ विचार करने लगा कि मुझे त्याग करके देवताओंकी पूजा करनेमें माताकी बुद्धि हुई है इसी कारण मैंने किसी वस्तु की रक्षा नहीं की सभीको नष्ट कर दिया ॥ ३५ ॥ विपरीत पराये धर्ममें मुझे सन्तोष नहीं होता, मेरी पूजा विना किये कभी देवताओंकी पूजा

श्रीकृष्ण उवाच॥इति तासां वचः श्रुत्वा तदा सा जननी मम ॥ आक्रुश्य बहुधा भूयो मां ग्रहीतुं समुद्यता॥३३॥अहं साक्षेपवचनै रुष्टो गेहाद्बहिर्गतः॥सा मामनुजगामाऽथ गोप्यश्च स्म गृहान्ययुः॥३४॥मया विचारितं सा मां त्यक्त्वाऽभूद्देवपूजने॥मतिर्भविष्यति ततो वस्तु तत्र न रक्षितम्॥३५॥व्यभिचारपरो धर्म्मो न मे तोषाय कल्पते॥यावन्मे पूजनं नास्ति तावद्देवान्न वै यजेत् ॥३६॥ मयि प्रपूजिते देवाः पितरश्चैव पूजिताः॥यथा सिक्ते वृक्षमूले पत्रशाखादिसेचनम्॥३७॥तथा मे पूजने जाते सर्वेषां पूजनं भवेत्॥ न भक्ता भक्तिमन्तोऽपि येऽन्यदेवार्चने रताः॥३८॥यथा स्त्री कुलटा मूढा न याति पतिलोकताम्॥योऽनन्यभक्त्या मां नित्यं भजेत मनुजो मुने ॥३९॥ तस्याधीनोऽस्मि सततं नैवान्यत्र व्रजे क्वचित् ॥ अनन्यभक्तिसदृशं नान्यत्प्रियतमं मम ॥ ४० ॥

न करे ॥ ३६ ॥ और मेरी पूजा करनेपर सम्पूर्ण देवता और पितरोंकी पूजा हो जाती है, वृक्षकी जड़में जल डालनेसे जिस प्रकार सम्पूर्णशाखा सींच जाती हैं ॥३७॥ मेरी पूजा करनेसे भी वैसे ही सबकी पूजा हो जाती है और जो लोग मुझे छोड़ करके और देवताओंकी पूजा करते हैं व भक्ति करने पर भी भक्त नहीं हो सकते ॥ ३८ ॥ कुलटा स्त्रियें जिस प्रकारसे पतिके लोकको पानेमें समर्थ नहीं होतीं वे भी वैसे ही मुझको नहीं पा सकते, हे मुने ! जो मनुष्य अनन्य भक्तिके साथ मेरी पूजा करते हैं ॥३९॥ मैं उनके निरन्तर अधीन रहता हूं और कहीं भी नहीं जाता ।अनन्यभक्तिके विना कोई

भी मेरी प्रीति साधनेमें समर्थ नहीं होता ॥४०॥ जो लोग अनन्य भक्तिके साथ मेरा भजन करते हैं वे सभी अव्यभिचारपरायण नहींहैं,इसी अभिप्राय से मैं यशोदाजीके घरमें रहता हूं ॥४१॥ और जो मैं गोपियोंके घर घरमें जाकर भोजन करता हूं उसका कारण यह है कि वे सभी मेरी भक्त हैं, वे केवल मोहित होकर मेरी पूजा नहीं करती ॥ ४२ ॥ हे मुने! मैंने अपनी लीलाको बढ़ानेके लिये ही उनको मोहित कर दिया है, जो सभी व्रजवासी अन्यथा विचारें ॥४३॥ तब फिर व्रजमें भली प्रकारसे हमारी लीलाकी वृद्धि न होगी मेरे गुणानुवाद और मेरा स्नेह इन दोनों

भजन्तोऽनन्यभक्ताश्च सर्वे तेऽव्यभिचारिणः॥इत्याशयाद्यशोदायाः कृता विप्रगृहे स्थितिः ॥४१॥ अन्यासामपि गोपीनां यद्भुक्तं तद्गृहे गृहे ॥ ता मद्भक्ताश्च मामेव मोहिता नार्चयन्ति हि ॥ ४२ ॥ ताश्चात्मलीलावृद्ध्यर्थं मोहिता नान्यथा मुने॥यदि सर्वेऽन्यथा भावा भवेयुर्व्रजवासिनः॥४३॥तदा लीलाविवृद्धिश्च न सम्यग्जायते व्रजे॥मत्कर्म्मभिर्मत्स्नेहेन मयि तेषां स्थितं मनः॥४४॥ ततोप्यनन्यभावस्तु न तेषां क्वापि हीयते ॥ एकदा च गता माता मोहिता मम मायया॥४५॥त्यक्त्वा क्रोधं पुत्र पुत्र गच्छ मा गच्छ माऽब्रवीत्॥मयोक्तं नैव ते गेहे आयास्यामि कथञ्चन ॥४६॥ देवपूजाकुलायास्ते मया किं कार्य्यमस्ति वै॥न तथा वर्त्तते प्रेम क्षुधिते तृषिते मयि॥४७॥देवेतररतायास्ते नाहं यामि गृहान्तरम् ॥ इत्युक्त्वाऽहं रुदंस्तत्र स्थितः सा भीषयत्तदा॥४८॥

ही उपायोंसे उनका मन मुझमें फँस रहा है ॥४४॥ इस निमित्त किसी प्रकारसे भी उनकी अनन्य भावमें त्रुटि नहीं है। उस समय मेरी माता मेरी माया से मोहित होकर ॥४५॥ क्रोधको बिसारकर मुझसे बोली कि हे पुत्र! आओ! आओ! मैं बोला कि मैं तुम्हारे घर नहीं आऊंगा ॥४६॥ तुम्हारे घर तो देवताओंकी पूजा और कुलका आचार होता है, फिर उस स्थानमें मेरा क्या प्रयोजन है [अधिक क्या कहूं] मेरे भूखा और प्यासा होनेपर भी आप पहलेके समान मुझसे प्रेम नहीं करतीं॥ ४७ ॥ तुम देवताओंकी पूजामें रत रहती हो इस कारण मैं आपके घर नहीं आऊंगा। यह कह

कर मैं रोता २ वहां ही बैठ गया, तब वह मुझे भय दिखाकर बोली कि जो तुम यहां बैठकर रोते रहोगे ॥४८॥ तो बंदर आकर तुम्हारा नाक कान काट लेगा इसमें संदेह नहीं ॥४९॥ इस कारण हे पुत्र ! शीघ्र उठकर घरको चलो, मैं उनके यह वचन सुनकर ऊँचे स्वरसे रोने लगा ॥ ५० ॥ माता मुझसे हँसकर बोली कि हे पुत्र ! तुम क्यों रोते हो ? फिर मैंने उत्तर दिया कि हे मातः ! वानर तो अत्यन्त अल्पबलवाले हैं ॥५१॥ हमारी सेवाके अतिरिक्त हमें और कोई लंघन नहीं कर सकता, जो मेरा नित्य भजन नहीं करते हैं उनको मैं स्वयं मोहित करता हूँ ॥ ५२ ॥ इसीसे वो उन्हें

तत्रैव मर्कटः क्रोधी रुदन्तमनुधावति ॥ आगत्य नासिकाकर्णौ लुनात्येव न संशयः ॥ ४९ ॥ अत उद्धृत्य शीघ्रं हि प्रविशामो गृहं सुतम् ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा प्ररोदमहमुच्चकैः ॥ ५० ॥ सा मामपृच्छद्धसिता कथं रोदिषि पुत्रक ॥ तदाऽहमब्रुवं मातरयमल्पबलः कपिः ॥५१॥ मां च लङ्घयितुं कोऽपि नेशो मत्सेवकं विना ॥ न नित्यं यत्र मे भक्तिस्तत्र मोहो मया कृतः॥५२॥ ते न बाधो न मोहश्च केवलं सुखमेव हि ॥ यन्मया मोहिता त्वं च मां वेत्सि तनयं स्वकम् ॥५३॥ ममैश्वर्यं न जानासि ततो भीषयसे हि माम् ॥ इति श्रुत्वा यशोदा मामब्रवीदतिविस्मिता ॥ ५४ ॥ कथं पश्येयमैश्वर्यमहं जानामि यद्विभुम् ॥ ततो मयोक्तं समये दर्शयिष्ये स्ववैभवम् ॥ ५५ ॥

किसी प्रकारकी बाधा अथवा मोह नहीं होता केवल आनंद ही होता है, आप ही मेरी मायासे मोहित होकर मुझे अपना पुत्र जानती हैं ॥ ५३ ॥ मेरा ऐश्वर्य आपको विदित नहीं है इसीसे आप मुझे भय दिखाती हैं, यशोदाजी मेरे यह वचन सुनकर विस्मित हो मुझसे बोलीं कि क्यों मैं तुमको ईश्वर नहीं जानती ? और क्यों तुम्हारे ऐश्वर्यको नहीं देख सकती? तब मैंने उत्तर दिया कि समय आनेपर अपने ऐश्वर्यको दिखाऊंगा॥५४॥५५॥

अब आप ही अपने घरको जाओ मैं किसी प्रकार भी नहीं जाऊंगा, तब माता यशोदा मुझे गोदीमें उठाकर अपने घरको ले गयीं ॥५६॥ और घरके काम काजमें लगकर जो मैंने कहा था वह सभी भूल गयीं॥५७॥ इस प्रकारसे मैं योगियोंकोभी अदृश्य होकर नित्य ही गोकुलमें क्रीडा करता हूं और अपने सुखमें आसक्त मनुष्योंको मोहितकर आनंदके व्यापारकी सहायतासे समयके व्यतीत करनेम प्रवृत्त हुआ हूं।।५८॥ इति श्रीआदिपुराणे सकल पुराणसारभूते नारदशौनकसंवादे भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥ श्रीभगवान् बोले—उस दिनके बीत जानेपर मैं फिर अपने सखा और वान

त्वं गच्छ नाधुना गेहं गमिष्यामि कथञ्चन ॥ अथ सा मामनुद्धृत्य धृत्वाङ्के चानयद्गृहम् ॥५६॥ विसस्मार मयोक्तं यद्गृहा ऽऽसक्ता सती तु सा ॥५७॥ इत्थं नित्यं गोकुले क्रीडमानः सर्वाल्लोकानात्मसौख्यप्रसक्तान् ॥ कृत्वा गोपीर्मोहयित्वा विनोदैः कालं निन्ये योगिनामप्यदृश्यः॥५८॥ इति श्रीआदिपुराणे नारदशौनकसंवादे कृष्णस्वगृहचौर्यवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः २६॥ श्रीभगवानुवाच॥ तस्मिन्दिने व्यतीते तु सखीनाहूय वानरान् ॥ तैः सार्द्धं विपिनं गन्तुमुद्यतः प्राह तानहम्॥१॥ अद्य सर्वे वयं मल्लयुद्धेन विहरामहे॥ ते ऊचुः कृष्ण ते तुल्यः कोऽपि नास्तीह बालकः॥२॥ भवान्केन कथं चापि मल्लक्रीडां करिष्यति॥ बलः कृष्णमथोवाच कुरु युद्धं मया सह ॥३॥ तदाऽहमब्रवं भ्रातस्त्वं मे मान्यतरोऽग्रजः॥ कथमत्र भवेद्योग्यं युद्धं श्रुतिविदूषितम् ॥४॥

रोंको बुलाकर उनके साथ वनमें जानेके निमित्त तैय्यार हुआ, और उनसे बोला ॥ १ ॥ कि आज हम सब मल्लयुद्ध करेंगे, तो वे बोले कि हे कृष्ण ! इस संसारमें तुम्हारे समान कोई भी नहीं है ॥ २ ॥ अत एव तुम किसके साथ किस प्रकारसे मल्लयुद्ध करोगे ? इसके उपरान्त बल रामजी मुझसे बोले कि भाई ! तुम हमारे साथ मल्लयुद्ध करना ॥ ३ ॥ मैं बोला कि आप हमारे बड़े भाई और माननीय हैं, इसलिये तुम्हारे साथ

हमारा युद्ध किस प्रकारसे हो सकता है, ऐसा युद्ध वेदादिशास्त्रोंमें दूषित होता है॥४॥ तब बलदेवजी मुझसे बोले कि हमारी इच्छासे ही तुम युद्ध करनेमें प्रवृत्त हो (उनके इस प्रकार कहनेपर) हम दोनों भाई युद्ध करने लगे ॥ ५ ॥ बलदेवजीने विविध भांतिसे बल करके मुझे जीत लिया, यह देखकर मेरे सभी सखा मेरी हँसी करने लगे ॥ ६ ॥ और मुझसे बोले कि हे कृष्ण ! यह दुष्ट बकी नहीं है, न यह तृणावर्त्त ही है, यह बलभद्र हैं और तुम्हारे बड़े भाई हैं, इसीसे यह बलवानोंमें प्रथम गिननेके योग्य हैं ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त मैंने एक दिन मिट्टी खाई, उसको देखकर

तदाह बलदेवो मां कुरु युद्धं ममेच्छया॥तथेत्युक्तं मया तत्र चावयोरभवद्रणः॥५॥नानारणविधानेन बलो मामजयत्पुरा॥ततःसर्वे सखायश्च जहसुर्मामभीक्ष्णशः॥६॥ कृष्ण नेयं बकी दुष्टो तृणावर्त्तो न वासुरः॥अयं हि बलिनां श्रेष्ठो बलभद्रस्तवाग्रजः॥७॥मया कृतं च मृद्भक्षं कथितुं मातरं ययौ॥चकार साक्षिणो गोपांस्तत्र गत्वा जगाद ह॥मृदं भक्षितवान्कृष्णः कथयामि तवाग्रतः॥८॥ रोगोऽत्यन्तं च भविता निवारय ततो द्रुतम्॥इति त्ववस्थितो यावद्बलभद्रोऽहमागतः॥९॥यशोदा मामुवाचेदं तदाक्रोशसमन्विता॥ कथं मृदं भक्षितावान्रोगस्ते भविता खलु॥१०॥तथैव जायते वत्स देहवैवर्ण्यमेव च॥उवाचाहं सखायो मे सर्वे मिथ्याभिशंसिनः ११

बलदेवजी मेरी मातासे कहनेके लिये चले और एक सखाको इस बातका साक्षी बना लिया, फिर मेरी माता यशोदाजीके पास जाकर बोले कि आज कृष्णने मिट्टी खाई है॥८॥ अतः उसको जाकर मने करो, कारण कि मिट्टीके खानेसे अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं, बलदेव यह कहकर जैसे ही वहांसे चले कि मैं भी उसी अवसरमें वहांसे चल दिया ॥ ९ ॥ यशोदाजी मुझसे बोली कि बेटा ! तुमने मिट्टी क्यों खायी ? मिट्टीके खानेसे शरीरमें रोग हो जायगा ॥१०॥ माताकी यह बात सुनकर मैं बोला कि मेरे सब सखा तुमसे झूठ कहते हैं (मैया मैंने मिट्टी नहीं खायी) ॥११॥

यदि आप मेरी बातका विश्वास न करो तो स्वयं मेरा मुख देख लो, तब माता बोली कि अच्छा अपना मुख फैलाकर दिखा, माताकी इस बातको सुनकर मैंने मुख खोलकर दिखाया ॥ १२ ॥ तब वह (मेरे मुखमें) अखिललोक, पृथ्वी, पाताल, आकाश, ज्योतिषचक्र, सम्पूर्ण सुर और असुर ॥ १३ ॥ लोक और लोकपालगण, पर्वत, नद, नदी, नगर, ग्राम, व्रज, अपनी आत्मा ॥ १४ ॥ गोप और समस्त गोपियें और

यदि सत्यगिरस्ते हि समक्षं पश्य मे मुखम्॥व्यादेहीति तयोक्तस्तु मुखं व्यादितवानहम्॥१२॥स तत्राखिललोकांश्चापश्यत्कौतुकमोहिता॥भूपातालककुब्व्योम ज्योतिश्चक्रंसुरासुरान्॥१३॥ लोकांल्लोकाधिपांश्चान्यान्गिरीन्नानानदीनदान्॥नगरग्रामसंघांश्च व्रजमात्मानमेव च॥१४॥ गोपानखिलगोपीश्च गोवत्सांश्च ददर्श ह ॥ ततः क्षणेन सा गोपी स्मृतियुक्ता बभूव ह ॥ कृष्णं बलं चात्मनोऽग्रे दृष्ट्वा विस्मयमागता॥१५॥वितर्कयन्ती बहुधा निश्चयं नाधिगम्य च ॥ स्वप्नो वा बुद्धिमोहो वा दैवी मायाऽथवाऽऽसुरी ॥१६॥ अथवा पुत्ररूपेण जातोऽयं भगवान्स्वयम् ॥१७॥ एतावत्कालपर्य्यन्तं मोहिताऽनेन मायया॥ अधुना शरणं प्राप्ता मामुद्धर जनार्दन ॥ १८ ॥

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, एवं मैं और बलदेव तथा अपनेको देखकर कौतुकके वश हो मोहित होकर आश्चर्य्य करती हुई ॥१५॥ और बारम्बार विचारकर निश्चय करने लगीं कि मैं क्या स्वप्न देखती हूं अथवा मेरी बुद्धि मोहसे मोहित हो गयी है, या दैवी और आसुरी माया प्रकट हुई है॥१६॥अथवा क्या स्वयं भगवान्ने पुत्ररूपसे मेरे घर जन्म लिया है॥१७॥इतने दिनोंतक इन्होंने अपनी मायाके बलसे मुझे मोहित करके रक्खा था, अब मैं इनकी शरणागत हूं

हे जनार्दन! आप मेरा उद्धार करो ॥ १८ ॥ इस संसारमें जो कुछ चर अथवा अचर हैं उन सबमें तुमसे भिन्न कुछ नहीं है, यह असत्य संसार तुम्हारी ही सत्तासे सत्यके समान स्थित हुआ दीखता है ॥ १९ ॥ सूर्यकी किरणोंसे जैसे प्यासे मृगको जलका भ्रम हो जाता है और सीपीमें जिस प्रकार चांदीका भ्रम होता है, उसी प्रकार कुबुद्धि पुरुष विषयमात्रको ही सत्य कहते हैं ॥ २० ॥ यह संपूर्ण विषयभोग स्वप्नके समान हैं और माया भी मनोरथके समान मिथ्या है एवं संपूर्ण संसार भी मिथ्या और नाशवान् है ॥ २१ ॥ आयु बिजुलीके समान चंचल है, यौवन फूलके समान क्षणमें भंग

त्वत्तो न किञ्चिद्भिन्नं हि दृश्यते सचराचरम् ॥ प्रतीयते हि मिथ्याऽपि समवस्थानसत्तया ॥ १९ ॥ यथा सूर्य्यस्य किरणे मृगतृष्णाजलभ्रमः ॥ शुक्तौ रूप्यं तथाऽर्थेषु सत्यबुद्धिः कुमेधसाम् ॥ २० ॥ विषयाः स्वप्नशङ्काशा यथा मायामनोरथौ ॥ सर्व एते प्रणश्येयुस्तथा सर्वमिदं जगत् ॥ २१ ॥ तडिच्चञ्चलमायुश्च यौवनं कुसुमोपमम् ॥ सस्वादाश्च विनश्यन्ति तथा प्राणिसमागमाः ॥ २२ ॥ गन्धर्वनगरप्रख्याः कस्तत्र रमते नरः ॥ माया ते महती ब्रह्मंस्त्वया संमोहितं जगत् ॥ २३ ॥ न पश्यति जनो मुग्धस्त्वामीश्वरमुपद्रुतः ॥ नवेत्ति कश्चनात्मानमनया मोहितो जनः ॥ २४ ॥ अविवेकप्रनष्टाक्षो यथाऽन्धो दर्पणे मुखम् ॥ एवं विदिततत्त्वायां यशोदायां पुनर्मया २५

होनेवाला है, मनुष्योंका परस्पर समागम और वार्त्तालापका होना यह सभी मिथ्या है ॥ २२ ॥ और यह गन्धर्वनगरके समान नाश हो जाता है, कोई मनुष्य भी उसमें व्यतिक्रम नहीं कर सकता. हे ब्रह्मन्! तुम्हारी माया अपरम्पार है, उसीके प्रभावसे संपूर्ण संसार मोहित हो रहा है, समस्त प्राणिमात्र ही मोहरूपी अन्धकारसे ढके हुए हैं ॥ २३ ॥ इसी कारणसे अपार भ्रममें पड़कर तुमको ईश्वर नहीं जानते हैं, अधिक क्या कहूं समस्त संसार मायासे ढककर अपने स्वरूपके जाननेमें समर्थ नहीं होता ॥ २४ ॥ अज्ञानके वशसे उनके ज्ञानके नेत्र नष्ट हो गये हैं, यशोदाजीको जब इस

तत्त्वका ज्ञान प्राप्त हुआ, तब मैंने फिर ॥२५॥ अपनी मायाका पुनर्वार विस्तार किया, उसीके प्रभावसे उनका मेरे ऊपर पहिलेके समान स्नेहका सञ्चार हुआ, वह उस अपूर्वतत्त्वको जानकर एकबारही भूलगयी थीं॥२६॥ तब वह मुझसे कहने लगीं कि हे पुत्र ! आओ तुम्हें भूख लगी होगी मेरे स्तनोंका पान करो, हे कृष्ण ! तुम मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारे हो, इस कारण सुखसे भोजन करके पीछे जाकर खेलना ॥२७॥ इत्यादि स्नेहके वचनोंको कहकर मुझे प्यार करने लगीं। हे मुने ! मेरे तत्त्वके जाननेसे मनुष्योंकी मुक्ति हो जाती है इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥२८॥ उस समय

प्रसारिता महामाया पुत्रस्नेहमयी परा॥विसस्मार तदा सर्वमपूर्वं तत्त्वबोधनम्॥२६॥उवाच पुत्र आगच्छ क्षुधितोऽसि स्तनं पिब॥ त्वं मे प्राणप्रियः कृष्ण भुङ्क्ष्व क्रीड सुखेन हि॥२७॥इत्यादिस्नेहवाक्येन यशोदा मामलालयत्॥यत्तु मत्तत्त्वविज्ञानान्मुक्तिः स्याच्चित्रमत्र किम्॥२८॥सांसारिकैः स्नेहपाशैर्बन्धान्मुक्तिस्तु यद्भवेत्॥तत्राश्चर्यं मुनेऽत्रेति मोहिता मायया तु सा॥२९॥मयि प्रसन्ने मज्ज्ञानं भवत्येव न दुर्लभम्॥पुत्रेति मयि यत्प्रेम तद्दुर्लभतरं नृणाम्॥३०॥अतः प्रसारिता माया पुत्रस्नेहमयी मया॥ अतो यशोदा मत्स्नेहं चक्रे मुदितमानसा ॥ ३१ ॥ वेदोऽपि यं न जानाति योगिनो यमुपासते ॥ यजन्ति यज्ञैर्विप्राश्च तं मां सा वेत्ति बालकम् ॥ ३२ ॥

सांसारिक बंधनमें पड़े हुए जो मनुष्य मुक्तिको प्राप्त करते हैं,इसमें भी कुछ आश्चर्य नहीं है ॥ यशोदाजी मेरी मायासे मोहित हो गयी थीं॥२९॥ मेरे प्रसन्न होते ही मनुष्य मुझको एकबार ही जानसकते हैं,पुत्र विचारकर मुझमें जो प्रेम है वह अत्यन्त ही दुर्लभ है॥३०॥इसीलिये मैंने पुत्ररूपी स्नेहमयी मायाको फैलाया था, इसी कारणसे यशोदाजी आनन्दित होकर मुझसे स्नेह करती थीं ॥ ३१ ॥ वेद भी जिसको नहीं जान सकते, योगीगण

जिसकी उपासना करते हैं, और ब्राह्मण भी यज्ञ के अनुष्ठानोंको करके जिसकी आराधना करते हैं, यशोदाजी उसे ही अपना बालक जानती हैं ॥ ३२ ॥ वह अपने सुखकी इच्छासे पुत्र विचारकर मेरा लालन पालन करती हैं, इनके समान भाग्यशालिनी पृथ्वीपर दूसरी स्त्री कोई नहीं दिखायी देती ॥ ३३ ॥ देखो सैकड़ों पुण्योंके प्रतापसे भी जिसको नहीं पा सकते, देवताओंकी पूजा अथवा शत २ अनुष्ठानको करनेपर भी जो दिखायी नहीं देता, वही भगवान् आज यशोदाजीके यहां पुत्ररूपसे जन्म लेकर नाना प्रकारके चरित्रोंको करके दिखा रहे हैं ॥ ३४ ॥ इति श्रीसकलपुराणसारभूते

अपालयत्पुत्रबुद्ध्या मामतीव सुखेच्छया ॥ तस्याश्च सदृशं भाग्यं नान्यस्य भुवि विद्यते ॥३३॥ न पुण्यपुञ्जैर्न तपोभिरुग्रैर्न देवतीर्थाटनयज्ञयोगैः ॥ न दृश्यते क्वापि च यः कथञ्चित् सोऽहं हरिः पुत्रतनुश्च यस्याः ॥३४॥ इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे नारदशौनकसंवादे कृष्णमृद्भक्षणलीलावर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ छ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कदाचित्प्रातरुत्थाय यशोदा जननी मम ॥ दासीषु कर्म्मसक्तासु निर्म्ममन्थ स्वयं दधि ॥ १ ॥ गायन्ती मम कर्म्माणि गीतानि च सुरादिभिः ॥ प्रचलत्क्षौमवसना संस्वनद्रसनादिका ॥ २ ॥ रज्ज्वाकर्षवशस्वेदकणव्याप्तमुखाम्बुजा ॥ चलत्केयूरवलयहारालकसुकुण्डला ॥ ३ ॥

नारदशौनकसंवादे आदिपुराणे भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥ श्रीभगवान् बोले—कि मेरी माता एकदिन प्रातःकाल ही उठीं, उस समय सम्पूर्ण दासियें अपने २ काममें लग रही थीं, तब वह अपने आप दही बिलोनेके लिये बैठीं ॥ १ ॥ उस समय मेरे गुणानुवादोंको गान करने लगीं, समस्त देवता भी जिसका गान करते हैं। दही बिलोनेके समय माताके शरीरपरके रेशमी वस्त्र चलायमान हो गये थे ॥ २ ॥ और वार्त्तालापके करनेसे, तथा रस्सीके खेंचनेसे उनके शरीरपर पसीनेकी बूँदें दिखायी देने लगी थीं, उनके केयूर (बाजू), खडुआ, हार, अलकें और कुण्डल

हिलने लगे॥ ३॥ और अधिक परिश्रमके करनेसे तथा श्वासके अधिक चलनेसे उनकी नीवी चालित हो गयीथी, और उदरमें त्रिवलीके पड़जानेसे वह अत्यन्त व्याकुल हो गयी थीं (इस प्रकार मैंने उनकी अवस्थाको देखकर) इसी अवसरमें मैंने वहां आकर क्रोधित हो अपने दोनों हाथोंसे रईको पकड़लिया॥ ४॥ परन्तु माताने तो भी दही विलोनेको न छोड़ा, फिर मैंने बहुतसे यत्न किये तो माताने दही विलोनेको ॥ ५ ॥ छोड़ा और अत्यन्त प्रीतिसे मुझे अपनी गोदमें बैठाकर दूध पिलाने लगीं, वह उस समय बारम्बार मेरे मुखको देखतीं और चुम्बन करती जाती थीं, इससे उनका समस्त शरीर

श्वासोच्छ्वासचलन्नीविस्त्रिवलीव्याकुलोदरा॥तत्रागत्य मया मन्थो हस्तेन क्रामितो रुषा॥४॥तथापि नात्यजन्माता दधि मन्थनमे वहि॥ममातिशययत्नेन कथञ्चिद्दधिमन्थनम्॥५॥त्यक्त्वाऽङ्के मां समाधाय प्रीत्या स्तनमपाययत्॥मुहुर्मुहुर्मम मुखमपश्यन्मुदितानना॥६॥चुल्ल्यामारोपितं दुग्धं वीक्ष्य यात्पात्रतो बहिः॥पतदग्नौ जलैः सेक्तुं मां त्यक्त्वा द्रुतमुद्ययौ॥७॥अहो दुरत्यमा माया लोकस्यार्थप्रणाशिनी॥यया विमोहितं सर्वं जगद्भ्रमति नित्यशः॥८॥हानिकाले परित्यज्य मां जनोऽन्यत्रगच्छति॥तस्य त्रैकालिकी हानिर्जायते नात्र संशयः॥९॥मां त्यक्त्वा सा ययौ यत्र पय उत्सिक्ततां गतम्॥तावन्मया तु दध्यन्नं भुक्त्वा दधि विनाशितम्॥१०॥

प्रफुल्लित होगया ॥ ६॥ इस ओर बोरसीपर धराहुआ दूध औट रहा था, इस अवसरमें उस दूधमें उफान आगया उसको देखकर माता मुझे गोदीमेंसे नीचे बैठाकर अतिशीघ्र दूधके उतारनेको चलीगयीं ॥ ७ ॥ अहो ! मेरी कैसी दुष्कर माया है, इसीके प्रभावसे मनुष्योंका सर्वस्व नष्ट हो जाता है, सम्पूर्ण संसार इसके ही प्रभावसे मोहित होकर नित्य भ्रमण करता है ॥ ८ ॥ मनुष्य अपनी क्षतिके होनेके समय मुझे त्यागकर अन्य स्थानमें चले जाते हैं, इसीलिये उनकी तीनों कालकी हानि होती हैं इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है॥९॥माता इस समय मुझे छोड़कर जहांपर दूध उफन रहा था वहां

चली गयी हैं, मैंने उसी अवसरमें दहीको भोजन कर नष्ट कर दिया ॥ १० ॥ मक्खनको लेकर कुछ खाकर मटकी तोड़ इधर उधर फेंक दिया, इसी रीतिसे यशोदाजीकी एक हानिके बदले तीन हानियें हुईं ॥ ११ ॥ जो मनुष्य इस रीतिसे मुझे त्यागकर और पदार्थोंके पानेकी इच्छासे जाते हैं वे मूर्ख हैं और उनको कभी ज्ञान नहीं होता और इसी कारणसे उन्हें सुख भी नहीं मिलता केवल दुःख ही मिलता है॥ १२॥ उनकी तीनों कालकी हानियें होती हैं इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। जब माता उफनते हुए दूधको उतारकर अतिशीघ्र आयीं॥ १३॥ तब उन्होंने दहीकी मटकीको इधर उधर

गृहीतं नवनीतं च नीत्वा क्षिप्तमितस्ततः ॥ एवं हानित्रयं तत्र यशोदायास्तथाऽभवत् ॥११॥ मामेव यः परित्यज्य वस्तुनोऽथ ऽभिधावति ॥ विवेकरहितो मूर्खो दुःखमेवाऽभिपद्यते॥१२॥ तस्य त्रैकालिकी हानिर्भवत्येवान्यथा न हि॥ उत्तार्य्य सुशृतं दुग्धं यावदायाति सत्वरम् ॥ १३ ॥ सा दृष्ट्वा परितो भग्नं दधिभाण्डं व्यलोकयत्॥ मामदृष्ट्वा बहिर्गेहाभ्यन्तरेऽपश्यदुद्यतम् ॥१४॥ नवनीतस्य हरणं स्थापयित्वा उलूखलम् ॥ मर्कटेभ्यः प्रयच्छन्तं गव्यं यत्सञ्चितं बहु ॥१५॥ सञ्चयो नहि कर्त्तव्यो मद्भक्तैः कृपणैर्यथा ॥ सञ्चयस्य विनाशो हि जायते निश्चितो बुधैः ॥ १६ ॥ यस्याहं च सदा दाता स कथं कृपणो भवेत् ॥ यत्राहं तत्र किं नास्ति भक्तिः किं कृपणायते ॥ १७ ॥

गिरा हुआ देखा; मैं उस समय घरमें नहीं था बाहर चला गया था, माताने मुझे नहीं देखा, घरके बीचमें उन्होंने ऐसी दुर्घटना देखी ॥ १४॥ इधर मैंने मक्खनको ले जाकर ओखलीमें रक्खा और उनके सञ्चित किये हुए मक्खनको (मैं) वानरोंको देने लगा ॥ १५॥ जो लोग हमारे भक्त हैं, वे कभी कृपणके समान इकट्ठा नहीं करते, इकट्ठा करनेसे निश्चय ही नाश हो जाता है ॥ १६॥ देखो मैं सर्वदा ही जिसको देता रहता हूं वह किस

रीतिमें कृपण हो सकता है,मैं जहांपर हूं वहां क्या नहीं है,भक्ति कभी कृपण नहीं हो सकती॥१७॥हमारे भक्तोंपर जो कुछ भी है उसीसे वह मुझे सन्तुष्ट करते हैं, दान और भोगके करनेसे मनुष्योंका जीवन सफल होता है॥१८॥यशोदाजी छड़ीको हाथमें लेकर मुझे बालक जानकर धीरे धीरे बाहर आ कर मेरे पीछे खड़ी हो गयीं॥१९॥मैं उनको आयी हुई देखकर उसी समय वहांसे भाग गया,वह भी मेरे पकड़नेके लिये शीघ्रताके साथ मेरे पीछे२चलीं ॥२०॥परन्तु मेरा पकड़ना तो दूर रहा वह मुझे स्पर्शतक भी न कर सकीं, देखो योगीगण भी सर्वदा मुझे अपने२मनोंको अर्पण करनेपर भी॥२१॥

यत्किञ्चिन्मम भक्तस्य तेन प्रीणाति मां सदा॥दानैर्भोगैर्ममोक्तैश्च सफलं जीवितं नृणाम्॥१८॥सा पश्यन्ती यष्टिहस्ता यशोदा बालकं हि माम् ॥ गृहान्तरे समागत्य शनैर्मे पृष्ठतः स्थिता ॥१९॥ आगतामहमालोक्य समुत्तीर्य्य पलायितः॥ग्रहीतुकामा मे पश्चादधावदतिवेगतः॥२०॥न लेभे स्पर्शनं चापि ग्रहणं तु कुतो भवेत्॥ये योगिनोऽपि स्वमनः प्रयच्छन्ति सदा हि माम्॥२१॥ ग्रहीतुं बहुकालेन न स्प्रष्टुमपि ते क्षमा ॥ अतिश्रमाकुलां व्यग्रां धावन्तीं तामितस्ततः॥ २२ ॥ दृष्ट्वा मेऽजायत कृपा ततोऽस्या ग्रहणेऽभवम् ॥ करे गृहीत्वा जननी सयष्टिर्मामभीषयत् ॥ २३॥ स्फोटनं दधिभाण्डस्य घृतदुग्धादिनाशनम् ॥ त्वया कथं कृतं मन्द तत्फलं ते ददाम्यहम् ॥ २४ ॥

चिरकालतक ग्रहण अथवा स्पर्श भी नहीं कर सकते । माताको अत्यन्त परिश्रमसे व्याकुल हुई इधर उधरको आती हुई ॥ २२ ॥ देखकर मुझे अत्यन्त ही करुणा उत्पन्न हुई,तब मैंने अपने आप ही उनको अपनेको पकड़ा दिया, मेरी माताने मेरे दोनों हाथोंको अपने हाथमें पकड़ लिया और छड़ीको हाथमें लेकर मुझे डराती और धमकाती हुई मुझसे कहने लगीं॥२३॥कि हे मूर्ख !तुमने किसलिये दहीके बरतनको तोड़कर इकट्ठे किये हुए

दूधको नष्ट कर दिया,उसका फल मैं भलीप्रकारसे तुम्हें आज दूंगी॥२४॥गोपियें सर्वदा मेरे पास आकर तुम्हारे चरित्रोंको कहती थीं,वह अत्यन्त ही सीधी साधी हैं तथापि मैं उनकी बातोंका विश्वास नहीं करती थी॥२५॥सत्य होनेपरभी मैं उनके ऊपर क्रोधित होती थी,इससे वहभी लज्जित होकर अपने २ घरोंको चली जाती थीं। माता यह कहकर बड़ी क्रोधित हुई और शीघ्र ही उन्होंने ओखलीसे मुझे बांधनेके लिये रस्सीको हाथमें उठाया॥२६॥जो पूर्वापर है आज वही बांधा जासकता है। मेरा पूर्व और अपर कुछ भी नहीं है,इसलिये मैं किस प्रकारसे बँधसकता हूं॥२७॥हे नारद!तुम

नित्यं गोप्यः समागत्य ब्रुवन्ति तव चेष्टितम्॥मया प्रतीतिर्न कृता साध्वीनां वचनेष्वपि॥२५॥एवमुक्त्वा ततः क्रोधाज्जननी स त्वरा सती॥ उलूखले तु सा रज्जुं जग्राह मम बन्धने॥२६॥ बन्धनं तस्य भवति यस्य पूर्वापरं भवेत्॥पूर्वापरं च मे नास्ति बन्धनं जायते कथम्॥२७॥ बृहत्वाद्ब्रह्म चाहं तु विशेषाच्छृणु नारद॥तत्कथं वेष्टनं मे स्यादनाद्यन्तस्य रज्जुतः॥२८॥ यदा बध्नाति दाम्ना सा व्यङ्गुलोनमभूत्तदा॥ तेनान्यत्संदधे माता तदपि न्यूनतां गतम्॥ २९ ॥ एवं स्वगेहदामानि न्यूनानि ह्यभवँस्तदा॥ गोपिकास्तत्समाकर्ण्य ममोलूखलबन्धनम्॥ ३० ॥

सुनो,अधिकतर मैं सबसे बड़ा कहा जाकर ब्रह्म हूं,मेरा आदि और अन्तभी नहीं इस कारण किस प्रकारसे मुझे बांधसकती हैं॥२८॥इसी कारणसे यशोदाजी जब रस्सीको लेकर मुझे बांधने लगीं,तो रस्सी दो अंगुल न्यून रही,फिर वह और रस्सी लायीं परन्तु वह भी कम पड़ गयीं॥२९॥इसी प्रकारसे वह घरकी सम्पूर्ण रस्सियोंको लायीं और सभी दो अंगुल कम पड़ गयीं,कोई भी पूरी न हुई।इस ओर सम्पूर्ण गोपियें मेरे ऊखलसे बँधनेके वृत्तान्तको

सुनकर॥३०॥मुझे देखनेको आकर कहने लगीं कि हे यशोदे ! हमने अनेकबार कहा था कि तुम अपने पुत्रको शिक्षा दो॥३१॥बन्धन और ताड़ना करनेसे ही पुत्र परम बुद्धिमान होता है, यद्यपि यह आपका पुत्र हमें प्राणोंसे भी अधिक प्यारा है ॥३२॥ परन्तु हम लोग आपसे इसके शिक्षा देनेके लिये सर्वदा ही कहती रहीं,परन्तु तोभी आप अपने पुत्रके स्नेहके वशसे इस कार्य्यके करनेमें समर्थ नहीं हुईं॥३३॥अब जब अपनी हानि हुई तब उस कार्य्यके करनेके लिये बैठी हो, अपनी वस्तुओंको बिगड़नेसे मनमें जैसा दुःख होता है ॥३४॥ औरोंकी हानिसे मनमें वैसा दुःख नहीं होता, आज

समाजग्मुर्गृहद्वारं सर्वास्ता ह्यब्रुवन्व चः॥यशोदे बहुशोऽस्माभिरुक्तं शिक्षयपुत्रकम्॥३१॥बन्धनात्ताडनाद्बालो भवेद्धि परमंसुधीः॥ किन्त्वस्माकं तव सुतः प्रियःप्राणाधिको ह्यसौ॥३२॥तथाऽपि खलु शिक्षार्थं देव्यब्रूमह्यभीक्ष्णशः॥पुत्रस्नेहवशादेव त्वया तन्नावधारितम्॥३३॥आत्मद्रव्यविनाशेन चाधुना कर्त्तुमुद्यता॥यथात्मवसुनाशेन क्षोभो मनसिवर्त्तते॥३४॥तथा न चान्यहानौ हि त्वयि प्रत्यक्षतां गतम्॥सुतस्य कर्म्म श्रुत्वाऽपि नहि चाक्रोशनं कृतम्॥३५॥इदानीं क्व गतः स्नेहो यत्त्वं बद्धुमिहेच्छसि॥बालोऽयं मे न जानाति कथं न प्रोच्यतेऽधुना॥३६॥इति तेषां वचः श्रुत्वा जननी व्याकुलाऽभवत्॥अशक्ता बन्धने यत्नपरा परमविस्मिता॥३७॥

आपको प्रत्यक्ष (विदित) हो गया है, पुत्रके कर्मोंको सुनकर भी आप कभी उसपर क्रोध नहीं करती थीं ॥३५॥ अब आपका वह स्नेह कहां चला गया, जिससे आप इस बालकके बांधनेके लिये तैय्यार हुई हैं, अब क्यों नहीं कहती कि हमारा बालक कुछ नहीं जानता ॥३६॥ माता यशोदाजी उनकी यह बातें सुनकर अत्यन्त ही व्याकुल हो गयीं,जब उनके अनेक यत्न करनेपर भी मैं न बँध सका तब उनको अत्यन्त ही आश्चर्य हुआ॥३७॥

इसी अवसरमें मुझे न बांधकर परिश्रमके मारे अत्यन्त व्याकुल होकर विचारने लगीं, नहीं जानती कि क्या हो रहा है जिसे मैं इसको नहीं बांधसकती॥ ३८॥ वह अत्यन्त खेदित और विचारयुक्त होकर इस प्रकार कहने लगीं, तब मुझे दया उत्पन्न हुई इसी कारण मैंने स्वयं अपनेको एकान्त भावसे बंधा लिया ॥३९॥ फिर वह मुझे ऊखलमें बांधकर घरके कामकाज करने लगीं और मेरी मायासे मोहित होकर मेरे बाँधनेको भूल गयीं ॥ ४० ॥ फिर और २ गोपियें भी अपने २ घरोंको चली गयीं॥४१॥ नारदजी बोले कि, हे भगवन्! हे देवेश! हे लोकनाथ! हे जगत्प्रभो! आपके भक्तोंको जो उचित

न शशाक तदा बद्धुं श्रमवारिपरिप्लुता ॥ न जाने किं भवत्यत्र जायते नास्य बन्धनम् ॥३८॥ एवं ब्रुवाणां तां दृष्ट्वा विषण्णां कृपयान्वितः ॥ गतोऽहं बद्धतां तस्या अपि चैकान्तभावतः ॥ ३९ ॥ उलूखलेन बद्ध्वा सा भक्ताऽऽसीद्गृहकर्म्मसु ॥ मद्बन्धनं विसस्मार मोहिता मायया मम ॥ ४० ॥ तदैवान्या गोपिकाश्च प्रययुर्भवनं स्वकम् ॥ ४१ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ भगवन्देव देवेश लोकनाथ जगत्प्रभो ॥ त्वद्भक्तानां नोचितं यत्तन्मया चेष्टितं हरे ॥ ४२ ॥ यत्कुबेरस्य तनयौ मया शप्तावनागसौ ॥ त्वद्भक्तानां क्रोधहानिः सदैवान्योपकारिता ॥ ४३ ॥ द्वेषो दम्भो मत्सरो वा असूया भ्रम एव च ॥ न भवेत्कर्हिचित्कृष्ण तच्च सर्वं ममाभवत् ॥ ४४ ॥ त्वद्भक्ताः साधवः शक्ताः सुहृदः सर्वदेहिनाम्॥अनन्यक्षमिणश्चैव तथा सर्वोपकारिणः ॥ ४५ ॥

नहीं है, मैंने उसीको किया है ॥ ४२ ॥ देखो! मैंने विना ही किये अपराधोंपर कुबेरके दोनों पुत्रोंको शाप दिया था; आपके भक्तोंको यह उचित है कि क्रोध न करें और सर्वदा ही दूसरोंका उपकार करते रहें ॥ ४३ ॥ द्वेष, दंभ, मत्सर, असूया और भ्रम इनसे रहित होना चाहिये, परन्तु हे कृष्ण! यह सभी मुझमें विद्यमान हैं ॥ ४४ ॥ आपके भक्त तो साधु (सरलस्वभाववाले) सब प्राणियोंके मित्र और परम

दयालु एवं परोपकारी होते हैं ॥ ४५ ॥ जबसे मैंने उनको शाप दिया था, तभीसे इसका पछतावा मेरे हृदयमें रहता है, मैंने किस कारणसे कुबेरके दोनों पुत्रोंको शाप दिया था अथवा क्यों उनको बिना अपराध शाप दिया है भगवन् ! सो आप कृपाकर कहिये ॥ ४६ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि, हे नारद ! कुबेरजीके दोनों पुत्र प्रीतिपूर्वक अपने पितासे पूछने लगे कि, सम्पूर्ण देवताओंके बीचमें कौन श्रेष्ठ है और मनुष्योंको किसका भजन करना उचित है ॥ ४७ ॥ किस देवताकी पूजा करनेसे मनुष्य निर्भय हो जाते हैं और किसका भजन करनेसे मनुष्य संसाररूपी बंधनसे शीघ्र ही छूट जाते हैं.

पश्चात्तापस्तदारभ्य ममाभूत्सततं हृदि ॥ किं मयाऽऽचरितं यक्षौ कथं शप्तौ शिवानुगौ ॥ तन्ममाचक्ष्व भगवन्नहं तत्कृतवान्कथम् ॥ ४६ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ कुबेरस्य सुतौ प्रीतं पितरं पृच्छतः स्वकम् ॥ कः श्रेष्ठः सर्वदेवानां भजनीयो जनैश्च कः ॥४७॥ निर्भयो जायते मर्त्यः कस्य देवस्य पूजनात् ॥ कं भजन्मुच्यते जन्तुः सद्यः संसारबन्धनात् ॥४८ ॥ इह भोगानवाप्नोति परत्रात्युत्तमां गतिम् ॥४९॥ कुबेर उवाच ॥ विष्णुः सर्वेश्वरः सर्वैः सेव्योऽसौ भक्तवत्सलः ॥ परमात्माऽखिलाधारो योगिध्येयाङ्घ्रिपल्लवः ॥५०॥ स्वभक्तेभ्यः सदा तुष्टः स्वात्मानमपि यच्छति ॥ निष्कामैश्च सकामैश्च सेवनीयः प्रभुः स हि ॥५१॥ सर्वेऽधिकारिणो वर्णा आश्रमाः शिशवः स्त्रियः ॥ अन्त्यजा पुल्कसा म्लेच्छा ये चान्ये पापयोनयः ॥ ५२ ॥

॥४८॥ और इस लोकमें सुन्दर भोगोंको भोगकर परलोकमें उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं ॥४९॥ कुबेरजी बोले कि, विष्णु भगवान् सभीके स्वामी हैं, इसी कारणसे वह भक्तवत्सल कृपानाथ सबके माननीय हैं, वही परमात्मा इस अखिल संसारके आश्रय हैं, योगी लोग उन्हींके चरणकमलोंका ध्यान करते हैं ॥५०॥ वह जब सन्तुष्ट हो जाते हैं तो अपने भक्तोंको आत्मदान कर देते हैं । वही सबके प्रभु हैं. निष्काम, सकाम सभी उनकी सेवा करते हैं ॥ ५१ ॥ संपूर्ण

अधिकारी, संपूर्ण वर्णके बालक, स्त्री, पुरुष, अन्त्यज (चाण्डाल) म्लेच्छ एवं अन्यान्यपापी॥५२॥यह सभी उनकी सेवा करते हैं, वह देवदेव और सबके ईश्वर हैं, इस कारण अविचल श्रद्धा और भक्तिके साथ (मनुष्य) उनका भजन करे, उनके सन्तुष्ट होनेपर मनुष्योंकी संपूर्ण कामनायें पूर्ण हो जाती हैं, यह कभी भी किसीके ऊपर क्रोधित नहीं होते ॥५३॥ इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे नारदशौनकसंवादे भाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥श्रीभगवान् बोले कि कुबेरजीके ऐसे उपदेशको सुनकर वे दोनों पुत्र अत्यन्त प्रीति और भक्तिके साथ मेरा पूजन करने लगे॥ १॥फिर वह एक

सर्वैः सेव्यो देवदेवः परेशो भक्त्या नित्यं श्रद्धयाऽनन्यवृत्त्या॥यस्मिंस्तुष्टे जायते सर्वमेव रुष्टे नाशं याति चैवं सदैव॥५३॥इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे नारदशौनकसंवादे श्रीकृष्णोलूखलबन्धनं नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इत्यादिष्टौ कुबेरेण तौ चापि प्रेमभक्तितः ॥ नानापूजाप्रयोगैश्च मदाराधनमीहतुः ॥ १ ॥ कदाचिदलकायां तौ पर्यटन्तावपश्यताम् ॥ महादेवगणश्रेष्ठं नन्दिनं भक्तवेषिनम् ॥ २ ॥ ऊचतुस्तौ कुतो नन्दिन्नागतस्ते प्रभुश्च कः॥ हे साधुवर पश्य त्वं मदाघूर्णितलोचनः ॥३॥ असत्सम्भाषणे जन्तुर्भ्रष्टो भवति निश्चितम् ॥ ह्रीः श्रीः कीर्त्तिस्तथा कान्तिः सर्वं वै याति संक्षयम् ॥४॥ नन्द्युवाच ॥ शृणुतं कुबेरतनयौ मम नाथो महेश्वरः ॥ यः स्वयं विश्वमखिलं सृजत्यवति हन्ति च ॥ ५ ॥

समय अलकापुरीमें जा रहे थे मार्गमें इन्होंने महादेवजीके गणोंमें श्रेष्ठ भक्तोंसे युक्त नन्दीको देखा॥२॥इसके पीछे उससे कहने लगे कि हे नन्दि! तुम कहांसे आ रहे हो कौन तुम्हारा स्वामी है तुम्हारा दृश्य साधुओंमें प्रथम गिनने योग्य है। तुम्हारे दोनों नेत्र रक्तवर्णके समान हैं॥ ३॥ असत्पुरुषोंके साथ संभाषण करनेसे मनुष्य निश्चय ही भ्रष्ट हो जाते हैं और उसके साथ लज्जा, कीर्ति, लक्ष्मी, कांति इन सबका भी नाश हो जाता है ॥४॥ नंदीने कहा कि हे कुबेरके

पुत्रो! तुम सुनो हमारे स्वामी देवाधिदेव महादेवजी हैं जो स्वयं सृष्टि और स्थिति एवं प्रलयके कर्ता हैं ॥५॥ मैं उन्हींका सेवक हूं,मेरे समान और भी अनेक सेवक हैं,महादेवजीके सेवक मेरे साथ सर्वथा आनंदित और निरन्तर निर्भय हो ॥६॥ अपनी इच्छानुसार भ्रमण करते हैं और वे कभी कर्मके बन्धनमें नहीं फँसते और उनको भक्ष्याभक्ष्य तथा पापका भी दोष नहीं होता॥७॥वे विश्वेश्वर भक्तोंकी सेवा करनेसे शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं नन्दीके ऐसे वचनोंको सुननेसे उनके चित्तमें भ्रम हो गया ॥८॥ तब वे हरिभक्तिको त्यागकर शिवजीके भक्त हो गये,पराये उपदेशसे ही मनुष्योंकी बुद्धि

वयं तत्सेवका नूनं बहवो मत्समाः परे ॥ यत्सेवकाः सदानन्दमयाः सततनिर्भयाः॥६॥ चरन्ति स्वेच्छया लोकान्कर्म्मपाशैर्न संयुताः ॥भक्ष्याभक्ष्ये तथा येषां पापे तेषां न दूषणम् ॥७॥ आशु तुष्यति विश्वेशः स भक्तैः सेवितो ध्रुवम् ॥ इति नन्दिवचः श्रुत्वा भ्रान्तचित्तौ ततस्तु तौ ॥८॥ हरिभक्तिं विहायाशु संजातौ शिवसेवकौ ॥ नूनं परोपदेशेन भ्रष्टा भवति धीर्धृता ॥९॥ भक्तोऽपि भ्रंशते शीघ्रमितरेषां च का कथा ॥ तत आरभ्य तौ मत्तौ कुबेरतनयावुभौ ॥ कुकर्म्मकरणोद्युक्तौ चेरतुर्बुद्धिविभ्रमात् ॥१०॥ एकदा शैलविपिने रम्ये मन्दाकिनीतटे ॥ स्त्रीगणैरनुगायद्भिः श्रिया मत्तौ विचेरतुः ॥११॥ स्त्रीणां सङ्गः प्रहृष्टानां तत्त्वविस्मृतिकारणम् ॥ किं पुनर्मदमत्तानां चित्तभ्रंशमुपेयुषाम् ॥ १२ ॥

भ्रष्ट हो जाती है॥९॥भक्तोंकी बुद्धि भी जब शीघ्र ही भ्रष्ट होने लगी तब फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है? इसीसे कुबेरजीके दोनों पुत्र उन्मत्त होगये ॥१०॥बुद्धिके भ्रमके वशसे ही वे दोनों कुमार कुकर्मको करने लगे,एक समय वे दोनों ऐश्वर्यके गर्वसे सुन्दर मन्दाकिनीके किनारे पर्वत और वनोंमें ॥ ११ ॥ स्त्रियोंको साथमें लिये फिरते हुए,स्त्रियोंके साथमें होनेसे व स्वभावसे ही तत्त्वको भूल गये थे, और वे दोनों सम्पूर्ण वनोंकी

कुञ्जोंमें विहारकरते हुए मन्दाकिनीके जलमें क्रीडा करने लगे फिर अपनी स्त्रियोंको साथ लिये हुए उन्होंने जलका फेंकना प्रारम्भ किया ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे मुने! तुमने उस समय वहां जाकर जो कहा था और किया था उसे स्मरण करो यदि स्मरण न हो तो मैं कहूंगा ॥ १४ ॥ नारदजी बोले कि हे श्रीकृष्ण! स्मरण आता है कि उन दोनों कुबेरजीके पुत्रोंको सत्संगतिका आश्रय था कुसंगतिसे दूषित ॥ १५ ॥ और मत्त होकर इनको धनका गर्व हुआ सो यह किस प्रकारसे हुआ अहो ऐश्वर्यसे उत्पन्न हुआ मोह मनुष्योंकी बुद्धिको एक बारही भ्रष्ट कर देता है ॥ १६ ॥ तब उनको अपने हृदयमें विद्यमान आत्माका दर्शन नहीं होता

विहृत्य वनकुञ्जेषु ततो मन्दाकिनीजले ॥ प्रचक्रतुर्जलक्रीडां सिषिचुस्तौ स्त्रियोऽभितः ॥ १२ ॥ ततो भवान्समायातो यदुक्तं यत्कृतं त्वया ॥ तत्स्मर्य्यते न चेद्वच्मि त्वयाऽहं सकलं मुने ॥ १४ ॥ श्रीनारद उवाच ॥ मयैतत्स्मर्य्यते कृष्ण कुबेरतनयावुभौ ॥ सत्सङ्गेन श्रिया युक्तावपि दुस्सङ्गदूषितौ ॥ १५ ॥ कुतो भूतमिदं चित्रं मत्तौ च धनगर्वितौ ॥ अहो श्रीमदमाहात्म्यं बुद्धिभ्रंशकरं परम् ॥ १६ ॥ न पश्यति जनो नूनमात्मानं हृद्यधिष्ठितम् ॥ कुसङ्गदूषिता बुद्धिर्नहि गच्छति शुद्धताम् ॥ १७ ॥ श्रियाविकारतां यातः परलोकं न पश्यति ॥ विशेषेण श्रिया मत्तः पतनाय भवेदलम् ॥ १८ ॥ एतौ कुबेरतनयौ विष्णुधर्मपरायणौ ॥ नियतं भ्रष्टतां प्राप्तौ कुसङ्गफलतः परम् ॥ १९ ॥ श्रीमदेऽतिप्रसक्तानां नूनं नरकयातनाः ॥ यतो भूतानि हन्यन्ते निर्दयैरजितात्मभिः ॥ २० ॥

बुद्धि कुसंगतिसे दूषित होकर कभी निर्मल नहीं होती ॥ १७ ॥ और ऐश्वर्यके वश विकारके उत्पन्न होनेपर परलोक दिखायी नहीं देता अधिकतर धनके गर्वसे मत्त होनेपर मनुष्य अवश्य ही पतित होते हैं ॥ १८ ॥ यह कुबेरजीके दोनों पुत्र पहले विष्णुभक्त थे, सो यह कुसंगतिके फलसे ही भ्रष्ट हुए हैं ॥ १९ ॥ धनसे गर्व करनेवालोंको अवश्य ही नरककी पीड़ा भोगनी होती है. कारण कि उस समय मनुष्य निर्दयी और अजितेन्द्रिय होकर प्राणियोंसे

द्रोह करने लगते हैं॥२०॥लक्ष्मीके मदसे उन्मत्त हुए मूढबुद्धिवाले मनुष्य निद्रा अथवा दुर्व्यसन आदि विषयोंको ही सार वस्तु जानते हैं॥२१॥और कृमि कीट भस्मसंज्ञित इस देहको अपना कहते हैं एवं सम्पूर्ण प्राणियोंसे द्रोह करके मनुष्य अपने शरीरका पालन करता है, उस समय वह कुछ भी विरक्त नहीं होता ॥२२॥ नरकमें जाकर वह अनेक दुःखोंको भोगते हैं और इनको जानते तक भी नहीं इस कारण जो मनुष्य धनसे उन्मत्त हैं उनके जीवनको धिक्कार है ॥२३॥ अब जो इस प्रकारकी बुद्धि मेरी कभी नहो ऐसा आप उपाय बता दीजिये, मैं उस समय यह चिन्ता करने लगा ॥

श्रियामत्ताश्चजानन्तिविषयंपरमार्थतः॥व्यवायाहारनिद्रादिष्वासक्तामूढबुद्धयः॥२१॥मन्यन्तेदेहमात्मीयं क्रिमिविड्भस्मसंज्ञितम्॥भूतद्रोहेण पुष्यन्ति न विरक्ता भवन्ति हि॥२२॥ न विदंत्यात्मदुःखानि नरकेषु महान्ति वै ॥ अतो धिग्जीवितं तस्य यस्य श्रीमदसम्भवः॥२३॥नैताहशी मतिर्भूयो भवेदिह कथञ्चन॥ एवमत्र मया कार्य्यमिति मे चिन्तितं हरे॥२४॥एतयोस्तरुजन्माशु न यत्र विषयोऽस्ति हि ॥ परं महावने रम्येऽतीते दिव्यशरच्छते ॥२५॥श्रीकृष्णदर्शनं प्राप्य लब्धभक्ती भविष्यतः॥श्रीकृष्णदर्शनं यस्मादेतयोर्भविता ध्रुवम्॥२६॥तरुयोनौ गतावेतौ नान्यत्कर्म्म करिष्यतः॥ऋतुधर्मसहौ मूढौ भूत्वा द्वौ यमलार्जुनौ॥२७॥

॥२४॥ तब इन दोनोंने ही अतिशीघ्रतासे वृक्षरूप होकर जन्म लिया यह देखकर मैं एकबार ही विषयरहित हो गया, फिर महारमणीय वनमें दिव्य शत वर्ष (देवताओंके सौ वर्षों) के बीत जानेपर ॥२५॥ श्रीकृष्णजीका दर्शन पाकर इनको भक्ति उत्पन्न होगी, कारण कि इनको निश्चय ही श्रीकृष्णका दर्शन होगा ॥ २६ ॥ वृक्षकी योनिमें जाकर फिर वह कुछ काम नहीं कर सकेंगे, वे दोनों यमलार्जुन होकर ॥ २७ ॥

पराये उपकारोंको करनेके निमित्त चिरकालतक खड़े रहेंगे, ऐसी चिन्ता करके मैं इनको शाप देकर सत्यलोकको चला गया ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, हे महामुने ! पूर्वभक्तिके प्रभावसे ही उनको मेरा दर्शन हुआ और सद्गतिको प्राप्त हुए ॥ २९ ॥ भोगके अन्तिम समयमें अवश्य ही महात्माओंका दर्शन हुआ करता है, मैंने तुम्हारे वचनोंको सत्य करनेके अर्थ शीघ्रही यमलार्जुन दोनों वृक्षोंके बीचमें ऊखलको अटकाया ॥ ३० ॥ विना पवन और विना वर्षाके उनको उसी समय गिरा दिया ॥ ३१ ॥ तब उन दोनों वृक्षोंमेंसे दो सुन्दर पुरुष निकले वे दोनों ही युवा और अत्यन्त

परोपकारिणौ भूत्वा स्थास्यतो बहुकालतः ॥ इति शप्त्वा गतोऽहं वै सत्यलोकमनामयम् ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पूर्वभक्तिप्रभावेण विष्णोर्मम महामुने ॥ भवतो दर्शनं जातं न यतोऽसद्गतिस्तयोः ॥ २९ ॥ भोगान्तसमयेऽवश्यं महतां दर्शनं भवेत् ॥ द्रुमयोरन्तरं नूनं दत्त्वोलूखलमाशु च ॥ ३० ॥ विना वर्षं विना वातं मया तौ पातितौ द्रुमौ ॥ ३१ ॥ तरुणौ रूपसम्पन्नौ सर्वभूषणभूषितौ ॥ दिव्याम्बरधरौ दिव्यपुष्पमाल्यैरलङ्कृतौ ॥ ३२ ॥ दण्डवत्पतितौ तौ तु कृताञ्जलिपुटावुभौ ॥ तावूचतुः कृष्ण कृष्ण महायोगिञ्जगद्गुरो ॥ ३३ ॥ त्वया सृष्टमिदं विश्वं यदेतत्सचराचरम् ॥ तस्मिन्नेवांशभागेनानप्रविश्यावभाससे ॥ ३४ ॥ त्वमेव पालयस्येतत्त्वय्येवान्ते लयं व्रजेत् ॥ मायागुणैर्भवत्येतत्त्तुभ्यमधिरोचत ॥ ३५ ॥

स्वरूपवान थे तथा सम्पूर्ण अलङ्कारोंसे भूषित मनोहर वस्त्रोंको धारण किये हुए दिव्यफूलोंकी मालासे शोभायमान ॥ ३२ ॥ वे दोनों पुरुष दण्डवत् प्रणाम कर हाथ जोड़ विनयभावसे मुझसे बोले कि हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! हे जगद्गुरो ! ॥ ३३ ॥ तुमने ही इस स्थावर जङ्गमात्मक संसारकी सृष्टि की है, तुम्हीं इसमें अपने अंशको फैलाकर अदृश्यभावसे ॥ ३४ ॥ इसका पालन करते हो, अन्तमें यह तुममें ही लय हो जाती है। मायाका गुण मायामें ही

इस प्रकारसे हुआ करता है॥३५॥तुम्हारे रोम रोममें अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड विराजमान हैं,ब्रह्मा और इन्द्रादि देवता प्रजापतिके साथ अखिललोक॥३६॥ सम्पूर्ण मनुष्य, पृथ्वीके समस्त राजा,एवं सभी तुम्हारी विभूति हैं,देवर्षि नारदजीकी कृपासे आज हमको तुम्हारा दर्शन हुआ है॥३७॥नहीं तो हमसे विषयमें आसक्त हुए चित्तवाले मनुष्योंको आपके दर्शनका होना कैसे सम्भव हो सकता है इसी कारण यह अखिल ब्रह्माण्ड आपके खेलनेका खिलौना है ॥३८॥यह समस्त ब्रह्माण्ड जो दिखायी देता है यह आपसे कुछ भी भिन्न नहीं है,अतएव हम दोनों भाई आपके चरणकमलोंका आश्रय करके॥३९॥

त्वद्रोमकूपे ब्रह्माण्डकोटयः परमाणुवत् ॥ ब्रह्मेन्द्राद्याश्च ये देवाः सप्रजापतयोऽखिलाः ॥३६॥ मनवो भुवि राजानो ये चान्ये त्वद्विभूतयः॥नारदानुग्रहादीश जातं नो दर्शनं तव ॥ ३७ ॥ अन्यथा विषये सक्तचित्तयोर्भविता कुतः ॥ यदेतदखिलं विश्वं क्रीडाभाण्डं तवेश्वर ॥ ३८ ॥ त्वत्तो न भिन्नं किमपि सर्वं ब्रह्माण्डगोचरम्॥अतश्चावां भगवतः पादाम्बुजसमाश्रयौ ॥ ३९ ॥ प्रार्थयावो वरं शश्वद्भवतो दर्शनं शुभम्॥भक्तिं देहि सदा देव निजनिष्ठं मनश्च नौ॥४०॥जिह्वा तवार्पितान्नेषु दृष्टिःसाधुजनेक्षणे ॥ त्वत्स्थानगमने पादौ गात्रं त्वद्भक्तसङ्गमे ॥ ४१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं सम्प्रार्थितस्ताभ्यामवोचं च कुबेरजौ ॥ यदुक्तं तत्तथैवास्तु स्वलोकं यात मा चिरम् ॥ ४२ ॥

यही वर मांगते हैं कि सर्वदा हमें आपका दर्शन होता रहे। हे देव! हमें आप भक्ति दीजिये,हमारा मन जिस प्रकार सर्वदा आपमें लगा रहे॥४०॥हमारी जिह्वा जिस प्रकार तुम्हारे दिये हुए अन्नमें आसक्त रहे और दृष्टि जिस प्रकार साधुओंके दर्शनमें व्याप्त,दोनों चरण आपके स्थानमें जानेको नियुक्त एवं शरीर आपके भक्तोंके साथमें रहे॥४१॥श्रीभगवान् बोले कि, उनकी ऐसी प्रार्थना करनेपर मैं उनसे (कुबेरजीके दोनों पुत्रोंसे)बोला कि तुम अपने

स्थानको शीघ्र ही यहांसे जाओ जो तुम कहते हो वही होगा॥ ४२॥पृथ्वीमें जो मनुष्य तुम्हारे साथी होंगे, वह अहैतुकी भक्ति पावेंगे इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥ ४३॥ कारण कि साधुओंकी संगति होनेसे परमपवित्र नैष्ठिकी भक्ति प्राप्त हो जाती है. भक्ति ही एक परमश्रेष्ठ लाभ है इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है॥ ४४॥ मैं भक्तिके द्वारा ही तुम्हारे वशीभूत हुआ हूं मेरे ऐसा कहनेपर वे दोनों भाई प्रणाम और मेरी प्रदक्षिणा करके॥ ४५॥ मेरी

युवयोः सङ्गमं येऽन्ये करिष्यन्ति धरातले ॥ तेषां चाहैतुकी भक्तिर्भविष्यति न संशयः ॥४३॥ साधुसङ्गाद्धि विमला भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ॥ भक्तिरेव परो लाभस्ततोऽन्यन्नास्ति किञ्चन ॥ ४४ ॥ भक्त्यैवाहं भवे वश्यो युवयोः सम्भवत्वलम् ॥ इत्युक्तौ तु प्रणम्याशु तथा कृत्वा प्रदक्षिणाम् ॥ ४५ ॥ ममाज्ञया संप्रयातौ कुबेरभवनं पुनः ॥ गोपास्तु निनदं श्रुत्वा द्रुमयोः पतमानयोः ॥४६॥ तत्रसुः शीघ्रमाजग्मुः पश्यन्तो मां सुविस्मिताः॥ कथमेतौ निपतितौ तरू चिरतरस्थितौ ॥ ४७ ॥ तत्र नन्दः समागत्य मुक्त्वा बालमुलूखलात् ॥ आनीयाङ्कमथो चुम्बन्वदनं मुदितः परम् ॥ ४८ ॥ अक्षतं च समालोक्य निजभाग्यमतर्कयत् ॥ गोपाः परस्परं प्रोचुरद्भुतं किमभूदिह ॥ ४९ ॥

आज्ञाके अनुसार कुबेरजीके घरको चले गये इधर यमलार्जुनके गिरनेपर गोपियें उस शब्दको सुनकर॥ ४६॥ अतिशीघ्र वहां आयीं और मुझे देखकर आश्चर्ययुक्त होकर कहने लगीं, कि यह चिरस्थायी वृक्ष कैसे गिर गये॥ ४७॥ इसी अवसरमें, पिता नन्दजीभी वहां आये और मुझे ऊखलसे खोलकर अपनी गोदमें ले मेरे मुखको चूमकर अत्यन्त ही प्रसन्न हुए॥ ४८॥ और बालकको प्रसन्न देखकर अपनेको भाग्यवान विचारने लगे, सब गोपियें आपसमें कहने

लगीं कि, यह कैसा अद्भुत कार्य हुआ ॥४९॥ यह किस प्रकारसे अकस्मात् ही दोनों वृक्ष गिर गये, यह बालक मृत्युके मुखसे बचा है, केवल विधाता ने ही इसकी रक्षा की है॥५०॥सम्पूर्ण गोपियें इस प्रकारसे आपसमें वृक्षोंके गिरनेकी मीमांसा कर रही थीं, इसी समयमें बालकोंने पवित्रबुद्धिवाले नन्दजीसे कहा॥५१॥कि कृष्णने ऊखलको खैंचकर इन दोनों वृक्षोंको गिरा दिया है, यमलार्जुनके गिरते ही उनमेंसे अग्निके समान प्रतापवाले दो सुन्दर

द्रुमयोः पतनं कस्मात्सहसा समपद्यत ॥बालकोऽसौ मृत्युमुखे पतितो विधिनाऽवितः॥५०॥इति मीमांसमानेषु गोपेषु पतितौ द्रुमौ ॥ तानूचुर्बालकास्तत्र नन्दादीञ्शुद्धबुद्धयः॥५१॥उलूखलं कर्षयता कृष्णेनेमौ निपातितौ॥ताभ्यां विनिर्गतौ देवौ कृष्णानुसदृशौ शुभौ ॥ ५२ ॥ स्तुत्वा नत्वा उपामन्त्र्य गतावात्मनिकेतनम् ॥ बालानां वचनं केचिज्जगृहुर्नेति केचन ॥ ५३ ॥ स्मृत्वा पूर्वकृतं कर्म केचित्सत्यं च मेनिरे ॥ सन्दिग्धचेतसः केचिद्बभूवुस्ते व्रजौकसः ॥ ५४ ॥ नन्दाद्या व्रजगोपाश्च यशोदाद्याश्च गोपिकाः ॥ पश्यन्तो मां कुशलिनं मोदमापुरसीमकम् ॥ ५५ ॥ नन्दो महामनास्तत्र द्विजानाहूय श्रद्धया ॥ ददौ दानानि सुभृशं ब्राह्मणेभ्यः समन्ततः ॥ ५६ ॥

पुरुष निकलकर॥५२॥तुम्हारे इस पुत्रकी स्तुति और प्रणामादि करके अपने स्थानको चले गये, बालकोंकी इस बातको किसीने माना और किसीने न माना॥५३॥और कोई२ मेरे प्रथम किये हुए चरित्रोंको स्मरण कर सत्य ही जानने लगे, कोई२ व्रजवासी सन्देहमें पड़ गये॥५४॥नन्दजीसे आदि लेकर समस्त व्रजवासी गोप और यशोदाजी मुझे सकुशल देखकर अत्यन्त ही आनन्द मनाने लगीं॥५५॥महाभाग नन्दजी श्रद्धाके साथ ब्राह्मणोंको

बुलाकर उनको अनेक प्रकारके दान देने लगे ॥५६॥ यशोदाजी भी पहलेके समान भयसे रक्षाका विधान करने लगीं ॥ ५७ ॥ मैंने जो बालकपनमें बड़े २ अद्भुत कार्य किये थे सो वह सम्पूर्ण तुम्हारे निकट वर्णन किये, जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस पुराणको सुने या सुनावेगा उसके ऊपर

यशोदा पूर्ववत्त्रस्ता रक्षाविधिमकारयत् ॥ ५७ ॥ इदं मया ते कथितं महाद्भुतं बाल्ये वयस्यैश्चरितं मया यत् ॥ शृणोति यः श्रावयते च भक्तिरनुग्रहो मे भवतीह तस्मिन् ॥ ५८ ॥ इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे वैयासिके नारदशौनकसंवादे यमलार्जुनमोक्षवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ॥ समाप्तश्चेदमादिपुराणम् ॥

मेरा अवश्य ही अनुग्रह रहेगा ॥ ५८ ॥ इति श्रीसकलपुराणसारभूते आदिपुराणे वैयासिके नारदशौनकसंवादे मुरादाबादनिवासि पं० श्यामसुन्दरलालत्रिपाठीकृतभाषाटीकायामूनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजक्षेमराजश्रेष्ठिना स्वकीये " श्रीवेङ्कटेश्वर"
(स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालये मुद्रितम् प्रकाशितञ्च । संवत् १९८६, शके १८५१.

विज्ञप्तिः ।

अत्र च महाभारतादीतिहासाः श्रीमद्भागवतादिपुराणानि सहस्रनामादिस्तोत्राणि तथा च व्याकरणन्यायादिशास्त्रनाटकाख्यायिकादिग्रन्थाश्च सीसकोत्तममहल्लघ्वक्षरैश्च मनोहरं मुद्रिताः योग्यमूल्येन क्रय्यास्सन्ति तत्तांश्च ग्राहका यथासूचीपत्रं मूल्यप्रेषणेन प्राप्नुयुः ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास,
" श्रीवेंकटेश्वर " स्टीम् प्रेस,
बम्बई.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
" लक्ष्मीवेंकटेश्वर " प्रेस,
कल्याण—मुम्बई.

❋ अत्रेयमभ्यर्थना. ❋

अस्माकं मुद्रणालये वेद-वेदान्त-धर्मशास्त्र-प्रयोग-योग-सांख्य-ज्योतिष-पुराणेतिहास-वैद्यक-मंत्र-स्तोत्र-कोश-काव्य-चम्पू-नाटकालंकार-संगीत-नीति-कथाग्रंथाः, बहवः स्त्रीणां चोपयुक्ता ग्रंथाः, बृहज्ज्योतिषार्णवनामा बहुविचित्रचित्रितोऽयमपूर्व-ग्रन्थः संस्कृतभाषया, हिन्दीमारवाडयन्तरभाषाग्रन्थास्तत्तच्छास्त्रार्थानुवादकाः, चित्राणि, पुस्तकमुद्रणोपयोगिन्यो यावत्यस्सामग्र्यः, स्वस्वलौकिकव्यवहारोपयोगिचित्रचित्रितालिखितपत्रवत्पुस्तकानि च; मुद्रयित्वा प्रकाशन्ते सुलभेन मूल्येन विक्रयाय। येषां यत्राभिरुचिस्तत्तत्पुस्तकाद्युपलब्धये एवं नव्यतया स्वस्वपुस्तकानि मुमु-द्रयिषुभिः सुलभयोग्यमौल्येन सीसकाक्षरैः स्वच्छोत्तमोत्तमपत्रेषु मुद्रिततत्पुस्तकानां स्वस्वसमयानु-मार्गणोपलब्धये च पत्रिकाद्वारा नैः प्रेषणीयोऽस्मि।

अधिकमस्मदीयसूचीपुस्तकानां भिन्नभिन्नविषयाणां प्रापणेन "श्रीवेङ्कटेश्वरसमाचार" पत्रिकाप्रापणद्वारा च ज्ञेयमिति शम्।

क्षेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम) यन्त्रालयाध्यक्षः—मुंबई.

॥ इति आदिपुराणं भाषाटीकोपेतं समाप्तम ॥